मूल्य पैंतालीस रुपये (45·00)

संस्करण 1985
राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित

YUVRAJ Badalte Kashmir Ki Kahani (Autobiography)
by Dr Karan Singh

युवराज

बदलते कश्मीर की कहानी

डॉ० कर्ण सिंह

राजपाल एण्ड सन्ज

HEIR APPARENT An Autobiography का हिन्दी अनुवाद
अनुवादक रामेश्वर प्रसाद मालवीय

भावी युवराज
विक्रम और अजय को

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट सराधयन्त सधुराश्चरन्त ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् व समनसस्कृणोमि ॥
अथर्ववेद, 3 30 5

हिन्दी सस्करण की भूमिका

मेरी आत्मकथा का प्रथम खण्ड अग्रेजी मे "एअर ऐप्परेन्ट" शीर्षक से 1982 के आरम्भ मे प्रकाशित हुआ। यद्यपि इस खण्ड मे मेरे जीवन के केवल पहले 22 वर्षों का वर्णन है, पाठको ने इसे पसद किया, जिसके फलस्वरूप इसके अनेक सस्करण निकल चुके हैं। प्रकाशन के तुरन्त बाद अन्य भाषाओ मे इसके रूपान्तर की माग आने लगी, फलस्वरूप इसका चार भाषाओ मे अनुवाद हो रहा है। मुख्यत हिन्दी के पाठको की इच्छा थी कि हिन्दी अनुवाद शीघ्र ही उपलब्ध हो।

मूल रचना और अनुवाद के बीच कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है, और यदि मैं स्वय अनुवाद करता तो सभवत वह मूल के अधिक निकट होता। समयाभाव के कारण यह सभव नही हो सका, तथापि मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी निदेशालय के अवकाश प्राप्त निदेशक, श्री रामेश्वर प्रसाद मालवीय द्वारा किया गया यह अनुवाद अब पाठको के सम्मुख है जिसको उन्होने बडे मनोयोग से किया है। आशा है, हिन्दी जगत इसे पसद करेगा।

अग्रेजी मे आत्मकथा का द्वितीय खण्ड भी प्रकाशित होने जा रहा है जिसमे 1967 तक का विवरण है, जब मैं जम्मू-कश्मीर को छोडकर केन्द्रीय मन्त्रिमडल मे सम्मिलित हुआ। यथासमय इसका हिन्दी अनुवाद भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत होगा, ऐसी मेरी कामना है।

नयी दिल्ली — कर्ण सिंह

1 जनवरी 1985

प्रस्तावना

बाईस वर्ष की अवधि एक आत्मकथा के लिए थोड़ी लगती है, लेकिन मुझे अपने प्रारंभिक जीवन में इतनी अधिक असाधारण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा है, कि पाठकों का एक किशोर के दो ससारो के बीच पल बढ़कर पुरुषत्व प्राप्त करने की इस कहानी मे सभव है, कुछ दिलचस्प बातें मिल जाए। इस खड की समाप्ति मैंने 1952 की उन विलक्षण राजनैतिक घटनाओं के साथ की है जो इसस एक वर्ष पहले मेरे जम्मू और कश्मीर के "सदरे रियासत" के रूप म चुने जाने के बाद घटित हुईं।

इस पुस्तक को लिखना प्रारभ करने के तुरत बाद ही मुझे पता चल गया कि यह साहस जोखिमो से खाली नही है। शुरू के बचपन की याददाश्तें अक्सर धुंधली होती हैं, जिनमे से कुछ टुकडे साफ होते हैं और जैसे-जैसे वक्त गुजरता जाता है, सारी परिस्थिति अधिकाधिक जटिल होती जाती है और ठीक ठीक अकित करने मे उतनी ही ज्यादा मुश्किल भी। तो भी, अपने अदर झाककर देखने की यह कवायद मुझे मूल्यवान और दिलचस्प लगी, क्योकि उसने मुझे बदलते हुए देश और काल के भीतर और अनिवार्य रूप से अपने स्वत के अतर मे भी देखने को मजबूर किया।

मुझे अपने प्रारम्भिक वर्षों के पुनर्निर्माण मे इस बात से बड़ी सहायता मिली कि मेरे पिताजी फाइलो और पत्र-व्यवहारो को करीने से रखने म बडी एहतियात बरतते थे। उनके दिवगत हो जाने के बाद इनमे से बहुत-सी मुझे मिल गइ, जिनमे उन्हें लिखे गए मेरे सभी पत्र, उनके उत्तरो की प्रतिलिपिया, और साथ ही 1947 के बाद भारत सरकार से किए गए उनके पत्र-व्यवहार की अनेक महत्वपूर्ण फाइलें सम्मिलित थीं। अपनी ओर से मैंने भी उन्हीं का तरीका अपनाया और उन सभी महत्वपूर्ण पत्रो की, जो मैंने लिखे और प्राप्त किए, प्रतिलिपिया सुरक्षित रखी। इस पुस्तक के पिछले *अध्यायो म मैंने इन्हीं दस्तावेजों मे से कुछ* विस्तार से उद्धरण दिए हैं, विशेष रूप से अपने राजनैतिक गुरु पडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा मुझे काफी अधिक सख्या मे लिखे गए पत्रो मे से।

मैं अपनी पुत्री ज्योत्स्ना चौहान और आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस के अपने सपादक का आभारी हू कि उन्होने टकित लिपि को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए, और चित्रसग्रह के चयन मे मुझे सहायता देने के लिए अपनी पत्नी का भी।

मैं जम्मू और कश्मीर सरकार का आभारी हूं कि उन्होंने अपने अभिलेखागार मे से मेरे जन्म और प्रारंभिक वर्षों सम्बन्धी कुछ फाइलों को देखने की अनुमति दी। यह मेरे लिए एक ज्ञाती अफसोस की बात है कि इस पुस्तक के प्रकाशन के कुछ ही पहले शेख अब्दुल्ला साहब इतकाल फरमा गए। इस खंड म जिस अवधि को अंकित किया गया है उसके दौरान और बाद मे भी हमारे राजनतिक मतभेद कितने ही तीव्र क्यो न रहे हो, हमने अपना व्यक्तिगत स्नेह सम्बन्ध आखिर तक बरकरार रखा। इसमे सदेह नही कि वह ऊचे कश्मीरियो में स एक थे, शाब्दिक और लाक्षणिक दोनो ही अर्थों में, और पिछली अध शताब्दी में कश्मीरी लोगो के विकास के लिए उन्होंने अनुपम योगदान किया। विभाजन के उथल पुथल के वर्षों में साप्रदायिक शक्तियो का विरोध करने में उन्होंने जो भूमिका निभाई, वह चिरस्मरणीय रहेगी।

मैंने यह पुस्तक अपने पुत्रों को समर्पित की है, जो उससे बहुत भिन्न वातावरण में बढ़ेंगे जिसका मुझे अपने बचपन में सामना करना पडा था, लेकिन जिन्हें फिर भी एक ऐसी दुनिया का मुकाबिला करना होगा, जो उससे कहीं तीव्र गति से बदलेगी। *सम्यक ससरति इति ससार'*—जसी कि यह प्राचीन सस्कृत की उक्ति है, जो बराबर बदलती रहे वही दुनिया है। याकि जसा जान मेसफील्ड ने लिखा है,

> Out of the earth of rest or range
> Perpetual in perpetual change
> The unknown passing through the strange
>
> (पहुच या विश्राति की धरती से बाहर
> सतत परिवतन में निरतर
> निकलना अनभिज्ञ का अज्ञात से होकर)

और फिर भी यह इसी तब्दीली से है कि जिन्दगी का जोखिम उठाने में लुत्फ आ जाता है, सत्य की बौद्धिक खोज में उत्कठा उत्पन्न हो जाती है और अनत आध्यात्मिक जिज्ञासा के सामने एक चुनौती खडी हो जाती है। यह ठीक ही कहा गया है कि सतत परिवतनशील जगत के पीछे एक चिरतन सत्य है, और मेरा विश्वास यह है कि उस सत्य को खोज निकालने, उसे हृदयगम करने और अन्त में उसके अनत आयामो का एक भाग बनकर लीन हो जाने में ही मनुष्य की वास्तविक गति निहित है। और इसलिए अपने प्रारम्भिक वर्षों की इस कहानी को मैं एक ऐसे लक्ष्य की खोज के श्रीगणेश के रूप में, जो अभी भी धुधला-सा दीख रहा है, एक ऐसी यात्रा के पहले कदम के रूप में, जिसका गतव्य अभी भी अज्ञात है, देखना चाहूगा।

कण सिंह

क्रम

प्रस्तावना	9
अध्याय एक	13
अध्याय दो	21
अध्याय तीन	37
अध्याय चार	49
अध्याय पाच	63
अध्याय छह	79
अध्याय सात	93
अध्याय आठ	110
अध्याय नौ	123
अध्याय दस	137
अध्याय ग्यारह	154
अध्याय बारह	171

एक

भूमध्यसागर पर स्थित समागम नगरी वेनीस हमेशा से ही रईसो के मिलने-मिलाने की दिलचस्प जगह रही है—यूरोप के भी और किसी जमाने मे हिदुस्तान के भी। प्रसिद्ध कोत दजूर के साथ साथ यात्रियो के लिए जो अनेक उल्लेखनीय स्थल बनाए गए उनमे होटल मार्तिनेज भी एक है। सन् 1931 के शुरु मे जम्मू और कश्मीर के शानोशौकत से भरपूर खूबसूरत महाराजा सर हरी सिंह अपनी लावण्यमयी पत्नी महारानी तारादेवी के साथ इस होटल की समूची तीसरी मजिल मे दाखिल हुए। महाराजा उस वप लदन मे हुई गोलमेज कार्फेस मे हिदुस्तान के देशी नरेशो का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। परतु जाडे के दिना म लदन कुहरे से ढका मनहूस और निहायत बेमजा था, जबकि वेनीस उल्लास से लबालब, खूब पोलो, शेम्पेन के दौर पर दौर और भूमध्यसागर से आने वाली मनमोहक हवा के झोके जिनकी उस सामतशाही की नजरो मे बडी वकत थी, लेकिन जो अपनी शान मे इस सत्य से बिलकुल बेखबर थी कि सारी दुनिया मे उसका जमाना अब जल्द ही लदने जा रहा है।

होटल मार्तिनेज आज भी मौजूद है—एक चोकोर खूबसूरत इमारत, जहा से भूमध्यसागर का सुहावना दश्य भलीभाति दिखाई देता है। तीसरी मजिल के उत्तरी हिस्से म सुइट न 318 19 20 मे नवयुवती महारानी गर्भावस्था के अतिम चरण मे थी। उसकी उम्र केवल इक्कीस वप की थी और उसकी सुश्रूपा मे परिचारिकाओ की एक टोली थी, जिनमे कुछ हिदुस्तान स आई थी और बाकी फ्रास से—उस जमाने मे यूरोप मे नौकर मिलना उतना नामुमकिन नही था। आखिरी वक्त कुछ उलझन पन्न हो गई थी, प्रसव पीडा मे असाधारण विलब हुआ परिचारिकाए महाराजा के निजी चिकित्सक कनल जे०एच० ह्यूगो और सुप्रसिद्ध प्रसूति विशेषज्ञ सर हेनरी सिम्पन न दिन रात एक किए थे जबकि महाराजा अपने साथियो और सेवको के साथ दिन मे पालो खेलने मे और रात देर तक शेम्पेन के गिलास खाली करने मे मुब्तिला थे। अत मे निर्धारित घडी आ ही पहुची, 9 माच, 1931 को इस धरती पर मेरा जन्म हुआ, वजन म नौ पौंड और पूरे जोर के साथ चीखते हुए—राम कहानी शुरू हुई।

मेरे जन्म की खबर पाकर जम्मू और कश्मीर के सभी लोगा मे, बिना धम, जाति या सप्रदाय के भेदभाव के हर्षोल्लास की सीमा न रही। इसका एक कारण तो यह था कि उस समय हिदुस्तान मे राजसी व्यवस्था की प्रतिष्ठा बरकरार

थी और एक युवराज का जन्म उल्लास मनाने का अवसर माना जाता था। लेकिन मेरे मामले में कारण कुछ और गहरा मालूम होता था। मेरे पिता को अपने चाचा महाराजा प्रताप सिंह की मृत्यु के पश्चात, जिन्होंने राज्य का चालीस वर्षों तक शासन किया, सन 1925 में राजगद्दी प्राप्त हुई। उस समय रूसी साम्राज्य की बढ़ती हुई ताकत से भयभीत होकर अंग्रेज सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण गिलगिट और स्कर्दू के प्रान्त पर अपना पैर मजबूत करने बढ़ आये थे। ये प्रांत साम्राज्य के निकटवर्ती थे और महाराजा गुलाब सिंह और वजीर जारावर सिंह के नेतृत्व में उनके महान सेनाध्यक्षों की चतुराई और सूझबूझ के फलस्वरूप जम्मू और कश्मीर राज्य में मिला लिए गए थे। वस्तुतः महाराजा प्रताप सिंह के राज्यकाल में ब्रिटिश राजनीति विभाग ने किसी विदेशी सत्ता से साठ गांठ का अभियोग लगाकर उन्हें राज्यच्युत करने की एक गहरी साजिश तैयार की थी और उन्हें एक रीजेंसी कौंसिल को अधिकार सौंप देने के लिए मजबूर कर लिया था। वे सचमुच राज्यच्युत हो भी गए होते लेकिन कलकत्ता की 'अमृत बाजार पत्रिका' ने एक सुप्रसिद्ध लेख द्वारा जिसका शीर्षक था "कंडेम्ड अनहर्ड" (बिना सुने दंडित), इस षड्यन्त्र का भंडाफोड़ कर दिया। इसने ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक बवंडर मचा दिया और राजनीति विभाग को अपने कदम लौटाने पड़े।

मेरे पिता ने पहले तीन बार शादियां कीं, दो बार सौराष्ट्र में और एक बार पड़ोसी पहाड़ी राज्य चम्बा में किन्तु पहली पत्नी शिशु को गर्भ में लिए ही संसार से विदा हो गई, और शेष दो विवाह निस्संतान ही रहे। लोगों को मन में यह आशंका होने लगी थी कि यदि सिंहासन का कोई उत्तराधिकारी न रहा तो—मेरे पिता स्वयं भी अकेली ही संतान थे—सर्वसत्ताधारी वाइसराय एक दिन 'खाली पाओ, हड़प लो" के कुख्यात सिद्धान्त की आड़ लेकर राज्य को सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन कर लेगा। इस कारण जब पिताजी ने एक बार फिर विवाह करने का निर्णय किया और इस बार पुराने पंजाब के कांगड़ा जिले में ब्यास नदी के तटवर्ती एक दूरस्थ गांव की लड़की से, तो नई उम्मीदें जगीं। और जब से ऐसा सुना गया कि नई महारानी को गर्भ है, तब से तो कौतूहल और भी बढ़ने लगा।

मां को प्रसूति के लिए यूरोप ले जाने के पिताजी के निर्णय के कई अर्थ लगाए गए। कुछ ने समझा कि यह उन्होंने इसलिए किया ताकि मां और शिशु को पिछले शासकों की अवशेष, दर्जनों महारानियां, रानियां, परिचारिकाओं और सेविकाओं से भरे जनानखाने की कुचेष्टाओं से बचाया जा सके। दूसरों ने अंदाज लगाया कि फ्रांस को इसलिए चुना गया कि वहां सर्वत्र विद्यमान ब्रिटिश साम्राज्य के एजेंट जिनमें उस जमाने में सूर्य अस्त नहीं होता था, अपनी कारस्तानी नहीं कर पाएंगे। जो हो, युवराज के जन्म ने, यदि उस समय के दस्तावेजों और वर्णनों

पर यकीन किया जाए तो, राज्य के लोगो मे उत्साह की ऐमी लहर उठा दी कि वे लगभग पागल हो गए। सरकारी घोषणाए की गइ। 10, 11 और 12 मार्च को तीन दिन तक जानवरो का वध करने, मछली मारने और शिकार करन की मनाही कर दी गई और इन तिथियो को राज्य मे सावजनिक अवकाश घोषित कर दिया गया। मदिरा, मस्जिदो और गुरुद्वारो मे भेंट-प्रसाद चढाए गए और सभी स्कूलो के बच्चो को मिठाइया बाटी गइ और उनसे कहा गया कि व युवराज की दीर्घायु के लिए ईश्वर से प्राथना करें। बिल्कुल अप्रत्याशित जगहो मे अभी भी मेरी मुलाकात अक्सर ऐसे लोगा से हो जाती है जिहे अपने बचपन मे मिठाई मिलने की याद बनी हुई है। मेरे जम की घोषणा श्रीनगर मे सेना और लोक निर्माण मत्री जनरल जनक सिंह ने की थी और जम्मू मे मेरे पिता के ही एक मत्री मि० वेकफील्ड ने।

जनरल जनक सिंह ने 17 माच को एक टिप्पणी लिखी थी, जिसमे निम्न-लिखित पैरा शामिल था

"9 माच का वह पहला उज्ज्वल दिवस था जब कश्मीर का मौसम ठड की खराब ऋतु की लबी अवधि के बाद साफ हुआ। इसी दिन गाधी इर्विन समझौते का सुखद समाचार लेकर समाचार-पत्र श्रीनगर पहुचे। कश्मीर के लोगो के विचार मे इन घटनाओ से शुभ लक्षणो का सकेत मिला और उनको विश्वास हुआ कि युवराज का भविष्य उज्ज्वल होगा।'

केनीस मे छह सप्ताह व्यतीत करके पूरी पार्टी "केसर ए हिन्द" नामक पी एड ओ के जहाज द्वारा हिन्दुस्तान वापस चल दी, जो अप्रैल 1931 के अन्त मे बम्बई के तट पर आ लगा। इस तरह हिन्दुस्तान से जिस बिन्दु पर मेरा पहला सपक हुआ वह कश्मीर नही, बम्बई था और आश्चय की बात है कि अगले तीस वर्षों म बम्बई को ही मरे जीवन मे एक महत्वपूण भमिका निभानी थी। मेरे पिता का स्वागत करने के लिए गेटव आफ इडिया पर जम्मू और कश्मीर से आए हुए कर्मचारिया और दरबारिया का एक बडा दल और अनेक देशी राजे महाराजे एकत्र हुए थे। इन राजा महाराजाओ मे, जसा कि वाद म मेरे पिता बडे चाव से बताया करते थे, बीकानर के स्व० महाराजा गगा सिंह जी भी थे। ऐसा लगता है कि मैंने उनकी मशहूर मूछो पर एक नजर डाली और मेरे मुह से बडी जोर की चीख निकल गई जो तभी खत्म हुई जब वे केबिन से बाहर चले गए। आने वाला म मेरे पिता के जिगरी दोस्त, पालनपुर के नवाव ताले मोहम्मद खान, जिनके नाम से हमारे श्रीनगर के घर का नामकरण किया गया था और भारत कोकिला सरोजिनी नायडू भी थी। बम्बई से पार्टी रेलगाडी द्वारा जम्मू गई जहा 3 मई को

हमारा भव्य स्वागत होने को था। मेरे पिता और मा ने एक खुली घोडा-गाडी मे शहर का चक्कर लगाया जबकि मुझे अपनी अंग्रेज नस मिस डोरिस ट्रैचेल के साथ एक मोटरकार म पीछे पीछे ले जाया गया। पाच दिन बाद श्रीनगर म यह सारी रस्म फिर स दोहराई गई। फाइलो से और अनेक एसे लोगो से जिनसे मैं बाद म मिला और जो उस वक्त मौजूद थे मुझे मालूम हुआ कि दावता, स्वागत समारोहों भोजो रोशनियो, मुफ्त सिनेमा शो, सगीत के कायक्रमो, मिठाइ बाटने और ऐसे अनक तरह के जश्नो का चकाचौध कर दने वाला सिलसिला कइ दिनो तक चलता रहा। मेरा औपचारिक नामकरण सस्कार 11 मई का सपन्न हुआ और मिस वेकफील्ड न बडी गम्भीरता से घोषणा कि "श्री युवराज कण सिंह जी बहादुर मेरा नाम होगा।

ऐतिहासिक दष्टि से सभवत इस जम्मू और कश्मीर म डोगरा शासन का शिखर बिन्दु कहा जा सकता है। उत्सवो के समाप्त होते न होते राज्य भीषण राजनतिक उथल पुथल म डब गया और बात जो बिगडी तो फिर वसी बनन की नौबत नही आई। विचित्र बात तो यह है कि सयोगवश मेरे जन्म के साथ ही एक स्कूल का अध्यापक, जिसे अब तक कोई नही जानता था, राज्य के राजनतिक जीवन म प्रकट हुआ जिसकी प्रतिक्रिया आज भी जारी है। उसका नाम था – शेख मोहम्मद अब्दुल्ला। एक मत तो यह है कि यह उथल-पुथल और शेख की कार गुजारिया अंग्रेजो न करवाई थी इसलिए कि एक तो मेरे जन्म से उनकी 'खाली पाओ हडप लो की नीति त्यथ हो गई और दूसरे मेरे पिता ने साल के शरू म हुई गोलमेज कान्फ्रेंस म जो अनुपम देशभक्तिपूण भाषण दिया था, जिसम उन्होने अंग्रेजो से आग्रह किया था कि वे हिन्दुस्तान के लोगो की महत्त्वाकाक्षाओ का आदर करें, उसके लिए वे मेरे पिता को सबक सिखाना चाहते थे। अपने भाषण के दौरान उन्होन कहा था कि 'हिन्दुस्तानी और जिस धरती न उन्हे जन्म दिया और पाला पोसा उसके प्रति वफादार होन के नाते अन्य देशवासियो के साथ नरेशगण भी, एकमत होकर इस बात की हिमायत करते ह कि ब्रिटिश राष्ट्रमडल म हिन्दुस्तान का भी दरजा सम्मान का और बराबर का हो।'

अस्तु जहा तक मेरी स्मति जाती है तभी से मेरे जन्म के बाद होने वाले उत्सवो और समारोहो के मुखद सस्मरण मुझे सुनाए जाते रहे हैं जिनके साथ कभी कभी मेरे भावी जीवन के विषय मे कुछ अजीब रहस्यमयी भविष्यवाणिया भी जोड दी जाती रही हैं। कुछ समय बाद मुझे ऐसा लगने लगा कि क्या सचमुच मैं अपन जीवन म ऐसा कुछ कर पाऊगा जो मेरे जन्म स उद्वलित खुशियो और आशाओ आकाक्षाओ को साथक बनाएगा? जिन लोगो ने खुशिया मनाइ, उनम स यदि कुछ न भी केवल औपचारिक स्वामिभक्ति से नही बल्कि और गहरी भावनाओ को लेकर एसा किया हो, तो यह एक ऐसा ऋण होगा जिसे पूरा करने

मे मेरे भावी जीवन के बीसियो साल लग जाएगे।

पुरानी पीली पड रही फाइलो को देखने से मुझे पता चला कि मेरे बचपन के जितने धार्मिक सस्कार किए गए, उनमे बारीक से बारीक बात पर पूरा ध्यान दिया गया। यह पिताजी की स्वभावगत विशेषता थी। कायक्रम खूब साफ सुथरे छपाए जाते और छोटी से छोटी हर बात उनमे स्पष्ट रूप से दर्शाई जाती। अन्न प्राशन (प्रथम बार अन्न ग्रहण करना) 8 फरवरी 1932 को और मुडन 7 दिसम्बर 1933 को हुआ। सन 1947 तक प्रत्येक वर्ष मेरे जन्मदिवस को सावजनिक अवकाश माना जाता था, सभी किलो से 17 बदूको की सलामी दागी जाती, शिकार करना, मछली पकडना और जानवर मारना वर्जित होते, कदियो को रिहा किया जाता, गरीबो को भीख दी जाती और श्रीनगर तथा जम्मू के सभी महलो और सावजनिक इमारतो मे रोशनी की जाती। धार्मिक समारोह मनाए जाते, जहा मुझे ले जाया जाता और मेरे पिता, मा और अन्य सम्बन्धी वहा उपस्थित होते।

पिछली बातो में जो मेरी स्मृति में सबसे पहले आती है, वह यह कि जम्मू में हमारा जो छोटा महल है—अमर महल—और जिसमें अब एक सग्रहालय और पुस्तकालय है, उसके बाहर आकाश में मैं निहार रहा हू और कोई मुझे उडती हुई एक चील दिखा रहा है, जो आकाश की अनत नीली विशालता में एक छोटे काले बिंदु जैसी लग रही है। इसके बाद एक और विचित्र, किंतु स्पष्ट स्मति जो मुझे है, वह उसी परिसर की एक छोटी इमारत के शीशे में अपनी ही शक्ल देखने की, मानों मैं स्वय को पहली बार देख रहा होऊ। तीन वष की अवस्था होने पर मुझे अपनी मा से अलग कर दिया गया और मेरे लिए गर्मी के दिनो मे श्रीनगर म और ठड की ऋतु म अलग-अलग घरा मे रहने की स्वतत्र व्यवस्था कर दी गई। मुझे अपनी मा से प्रतिदिन केवल एक घटे के लिए और पिता से सप्ताह मे तीन बार मिलने की अनुमति थी। जाहिर है कि यह कोई आदर्श पारिवारिक वातावरण नही था और इसकी वजह थी मेरे माता पिता के बीच गहरा मतभेद होना। मेरी मा कागडा के एक गाव की लडकी थी, मेरे पिता हिंदुस्तान के पाच सौ से अधिक देशी राज्यो सबसे बडे राज्य के राजा थे। मरी मा गहरी धर्मिष्ठ थी, मेरे पिता अपने जीवन के अन्त तक वस्तुत नास्तिक बने रहे। मेरी मा भावनामय, समाजप्रिय और बालकों के प्रति स्नेहशील थी, मेरे पिता सख्त, कठोर और सतर्कतापूर्वक चुन गए दरबारियो और चद दोस्तो की मडली की सोहबत म ही उठते-बठते थे। मेरी मा बातचीत म पटु थी, मेरे पिता का आतक इतना था कि उनकी उपस्थिति मे साधारण बातचीत वस्तुत असभव थी। मेरी मा अधविश्वासी, अपने भावो को प्रदर्शित करने वाली और सवेदनशील थी, मेरे पिता चुस्त-दुरुस्त, सूक्ष्म और सतक और अलग थलग रहने वाले व्यक्ति थे। इस

मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक असतुलन की वजह से काफी तनाव और परस्पर विरोध पैदा हो गया था।

स्वभावत मेरी प्रारभिक सहानुभूति लगभग पूरी तरह अपनी मा के साथ ही रही। मुझे मा स मिलने की लौ लगी रहती और मा मुझ पर लट्टू रहती और मेरे आने की घडिया गिनती रहती। उन्हे इस बात से बडा आघात पहुचा था कि उनसे मुझे इस बिना पर अलग किया गया कि कही वे मुझे बिगाड न दें, और जब मुझमे मिलने का निर्धारित घटा पूरा हो जाता, तो अक्सर उनकी आखें आसुओ से छलछला आती। वर्षों तक की उनकी अतर्पीडा के एहसास म मुझे गहरा दुख पहुचता रहा और मैं प्राय रात को खुली आखो उनकी याद करते करते धीरे धीरे सिसकता रहता। सुन्दर चेहरा बडी बडी अभिव्यजनाशील आखें, जिनका, पिता के एक दोस्त की जबानी, प्रयोग करना उन्हे खूब आता था। मेरे लिए तो वर्षों तक वे सौन्दर्य और स्नेह की प्रतिमूर्ति ही बनी रही। जब मैं उनके पास ले जाया जाता तो पहले वे मुझे अपने प्रार्थना कक्ष मे ले जाती और मेरे हाथों मे वहा रखी हुई देवी देवताओ की तसवीरो के आगे भेंट चढाने के लिए कुछ फूल और सिक्के रख देतीं। तब हम उनकी नौकरानियो या भतीजे, भतीजियो के साथ बैठकर खेलत क्योकि मेरे हम उम्र केवल ये ही सबधी थे, परिवार में पिता की ओर से कोइ नजदीकी रिश्तदार थे नही।

कभी-कभी जम्मू की सुहानी सध्या म हम सभी अमर महल के बडे बरामदे मे इकट्ठे होते, जहा से शिवालिक पर्वतमाला का भव्य दृश्य दिखलाई देता—वैष्णो देवी के वे त्रिकूट पर्वत जो क्षितिज रेखा पर छाए रहत और नीचे तवी तरगिणी घूमती बलखाती मदाना की ओर बढती जाती। वहा मिट्टी के नन्हे दीप जलाए जाते और आगे-आगे मा और पीछे पीछे हम सब अपनी मातभाषा डोगरी म भजन गाते गात मिट्टी के गमले मे उगाए तुलसी के पवित्र पौधे की परिक्रमा करते। वर्षों बाद मैंने इन्ही मे स एक भजन का, जो महिमामयी ज्वाला माता को समर्पित है, अग्रेजी मे अनुवाद किया था जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है—

ओ ज्वाला माई तू बीच पहाडा के
मन की मुरादें हमारी पूरी कर द

सुनहला सुनहला चोला अग विराजे,
और माथे पर केसरी तिलक लगाए,
पचरगी सालू शीश विराजे,
जिसकी किनारो म चमकीले सुनहले गोटे जडे,

ओ ज्वाला माई तू बीच पहाडो के
मन की मुरादें हमारी पूरी कर दे

दूर-दूर देशो से ओ माई,
यात्री आते तेरी स्तुति गाते,
तेरे दरबार मे माथा झुकाते,
अपनी सारी तृष्णा मिटाते,
ओ ज्वाला माई तू बीच पहाडो के
मन की मुरादें हमारी पूरी कर दे

ब्रह्मा वेद पढे तेरे द्वारे,
शकर ध्यान लगाए बीच पहाडो के,
जो ही भक्त तेरे गुन गावे,
वही मनवाछित फल पावे
ओ ज्वाला माई बीच पहाडो के
मन की मुरादें हमारी पूरी कर दे

यद्यपि उस समय शब्दो का पूरा अर्थ मेरी समझ मे नही आया था फिर भी दविक और सासारिक, लौकिक और पारलौकिक के लयबद्ध सम्मिश्रण का मुझ पर गहरा प्रभाव पडा था। मेरी मा को लोक सगीत स प्रेम था। उनकी आवाज़ बडी बुलद थी और वे ढोलकी के साथ अपनी सेविकाओ और अय रिश्तेदारो, स्त्रियो और मिलने के लिए शहर से आई महिलाओ के साथ मिलकर घटो सहगान किया करती थी। डोगरी पहाडी गीतो की शुरू के बचपन की इही यादो से ही मुझमे सगीत के प्रति स्थायी प्रेम भावना विकसित हुई क्योकि शेष जीवन मे सगीत मेरी अतश्चेतना का एक प्रमुख और मूल अगर रहा है।

जबकि मा के साथ मेरी शुरू म प्रतिदिन की और बाद मे सप्ताह मे तीन बार की मुलाकातो की मैं उत्सुकता से प्रतीक्षा करता था, पिता के साथ जो मुलाकातें हाती थी उनसे मुझमे डर पदा होता था। वे मुझे प्यार तो काफी करते थे लेकिन उसका प्रदशन नही करते थे और मेरी तस्वीर हमेशा अपने सोने के सिगरेट केस मे रखे रहत थे। परतु उनका व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा इतनी महान और आतककारी थी कि उनकी उपस्थिति मे कहने को कुछ सूझ पडना ही कठिन था। मा से हुई भेंटो मे जो सुखद सहजता थी उसका यहा नितात अभाव था और इसका एहसास मुझे वर्षो बाद ही धीरे धीरे हो पाया कि मेरे पिता का जो कठोर बहिरग था वह वास्तव मे एक तरह का रक्षक कवच जैसा था जिसका विकास उन्होने

अपने व्यक्तिगत जीवन की परिस्थितिया के कारण किया था। अगरखा और तलवार के दरबारी वातावरण और पारिवारिक माजिशो के बीच पाले पोसे गए घर के अकेले ही बालक वयस्क होने के पहले उन्हे सचमुच बडी त्रासदायी परिस्थितियो म से गुजरना पडा होगा। और इसके तुरन्त बाद ही अपनी इग्लैड की पहली यात्रा म वे दुर्भाग्य से एक कुत्सित षड्यन्त्र के शिकार हो गए, जिसकी वजह से उनकी काफी बदनामी हुई यद्यपि वे उसके लिए उत्तरदायी नही थे। जब मेरा जन्म हुआ, मेरे पिता की आयु छत्तीस वष की थी और उन्हे राजगद्दी पर बैठे छह वष हो चुके थे। मेरा लालन पालन किस तरह किया जा रहा है, इसमे उनकी हमेशा ही बडी नजदीकी और सतक दिलचस्पी रही, लेकिन चूकि उनका स्वभाव ही प्रदशन करने का नही था मेरा उनस सबध उतना स्वच्छन्द नही बन पाया जितना कि मा से। कुछ समय ऐसा अवश्य आया जब यह पुष्पित पल्लवित हो सकता था, परन्तु भवितव्यता और इतिहास के अदमनीय थपेडो ने आडे आकर इसकी सभावना को ही समाप्त कर दिया।

दो

ग्यारह वर्ष की उम्र तक, जब तक मैं पब्लिक स्कूल मे दाखिल नही हुआ, मेरी देखभाल के लिए कोई पन्द्रह कर्मचारियो का एक अलग तामझाम तो था ही, इसके साथ ही एक के बाद एक अंग्रेज अभिभावक भी मेरी देखरेख के लिए लगाए जाते रहे। सबसे पहले एक मिसेज़ विन्ढेम थी, जिनके पति कर्नल विन्ढेम सहायक रेज़ीडेन्ट थे। मुझे उनकी याद एक वृद्धा महिला के रूप मे ही है, जो एक चौडा-सा टोप पहना करती थी, और कर्नल साहब की याद तब की है, जब उन्होने एक बार मुझे सिगार का एक धातु का खाली डिब्बा दिया था, जिसके भीतर फडफड करती अल्यूमिनियम की एक पन्नी लगी थी — एक ओर चादी जसी चमकदार और दूसरी ओर उजले लाल रग की। विन्ढेम दम्पति के बाद रिची दम्पति आए। रिची साहब मेयो कालेज, अजमेर, मे मास्टर थे और शायद स्काटलड वासी थे, क्योकि मुझे उनकी एक ही बात की ठीक याद है, जब वे हम लोगो को कुछ मन मोहक स्काट लोक धुनें और प्रयाण गीत सिखाया करते थे। और मिसेज रिची तो बस ऐसी थी जसे कोई नागदैत्य हो, जिनका हम सभी—उनके पति भी—डरते डरते आदर करते थे।

करीब करीब इसी वक्त, यानी सन 1935 के आसपास, जब मैं चार वर्ष का था, दो साथी मेरे साथ रहने के लिए आए, जो पिताजी के निकट राजपूत दरबारियो के पुत्र थे। वे थे—दिग्विजय सिंह ('डिग्बी'), रायबहादुर कर्तारसिंह के पुत्र, जो एक वरिष्ठ और चतुर प्रशासक थे और जिन्होने राज्य के प्रशासन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, और दिग्पाल सिंह ('बिल्टी'), जिनके पिता, मेजर फकीर सिंह कई वर्षों तक पिताजी के प्रिय स्टाफ अधिकारी रहे। जब वे मेरे साथ रहने के लिए आए तब मुझे पिताजी के बडे अनुरोध से निर्देश बार बार बताए गए, कि यदि मैं उन्हे कभी एक चाटा भी मारू तो उसका जवाब वे मुझे दो चाटे मार कर दें। लकिन जो हुआ उससे तो यही लगा कि दरअसल इस चेतावनी की जरूरत ही नही थी, वे दोनो मुझसे उम्र मे बडे भी थे और ज्यादा ताकतवर भी, इसीलिए इन निर्देशो को अमल मे लाने की कभी नौबत नही आई।

इस वक्त तक मुझे 'टाइगर' उपनाम मिल चुका था। हुआ यह, कि एक दिन घुटनो के बल रेंगता हुआ मैं उस कमरे मे चला गया जहा पिताजी और उनके करीबी दोस्त, जोधपुर नरेश, महाराजा उमद सिंह जी बैठे हुए थे। उमेंद सिंह जी के मुह से निकल पडा कि चारा पाचो पर चलते हुए मैं शेर के जसा लग रहा

ह और बम नभी मे टाइगर' उपनाम मेरे साथ जुड गया। मेरे पिताजी और उनके मित्र मुझे टाइगर' ही कहा करते थे और वर्षों बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू और उनकी पीढ़ी के और लोग भी मुझे इसी नाम से पुकारने लगे। यह एक विचित्र सयोग है कि बीसियो साल बाद मुझे ही 'प्राजेक्ट टाइगर"—शेर सरक्षण परियोजना—का अध्यक्ष बनाया गया जिसका उद्देश्य इस भव्य पशु को लुप्त होने से बचाना था और भारतीय वन्य जीवन परिषद के चेयरमैन के रूप मे सिंह के स्थान पर शेर को भारत का राष्ट्रीय पशु बनाने म भी मेरा ही हाथ था।

हम तीनो—टाइगर, डिग्बी और बिल्टी – कई वर्षों तक अपनी ही दुनिया मे साथ-साथ रहे। श्रीनगर मे हम शकराचार्य पहाडी पर स्थित उस सुरम्य कुटीर मे रहे जो पिताजी के नजदीकी दोस्त पालनपुर के ताले मोहम्मद खान के नाम पर तब 'ताले मजिल' कहलाती थी और जहा से नायाब दोहरा नजारा दिखलाई देता है। एक तरफ डल झील है जिसके पीछे ऊचे नग्न पर्वतो की मीनार खडी है, ऊपर हरमुख शिखर है—निरतर बर्फ से ढका और मानो उन पर्वतो के कधो पर झाकता हुआ सा, उधर दूसरी ओर पूर्व मे गुलमर्ग से पश्चिम मे बनिहाल तक फैली हुई हिमाच्छादित पीर पजाल माला का पूरा विस्तार। जम्मू मे हम "कर्ण निवास' नामक एक छोटी-सी इमारत म रहे जो वहा के बडे महलो म मे एक के साथ कर्मचारी आवास के रूप म जोड दी गई थी। वहा परिचारको की एक बडी सख्या थी, जिनके साथ हम फुटबाल खेला करते थे। इसके अतिरिक्त कभी-कभी पिताजी के गोवानी बावर्ची फर्नेन्डीज, लोबो और डिसूजा—बेडमिन्टन खेलने चले आते थे। हमारे खाने पीने के, पढने लिखने के और मनोरजन के नियम बडे सख्त थे। हम कोई भारतीय व्यजन या मिठाई खाने को नही दिए जाते थे और इसलिए हमे उसी अग्रेजी खाने से काम चलाना पडता था जिसे उस वक्त के अग्रेज अभिभावक और उनकी पत्नी पसद करती थी। हमारा सबसे उम्दा खाना चाय के वक्त होता, जब मक्खन लगी 'स्कोन' और स्पज फिगर' होती, हटले एण्ड पामर्स की बनी लजीज शार्ट ब्रेड होती और चादी की तश्तरियो म परोसी अनि वार्य सैंडविच होती। वास्तव म नाश्ते और चाय के वक्त जो खाना दिया जाता था, ऐसा लगता था कि केवल उसी म अग्रेजी पाक चातुर्य (जैसा भी था) थोडी-बहुत अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति की सामर्थ्य रखता है।

हमे पढाने के लिए एक भारतीय शिक्षक थे—श्री अमरनाथ खोसला, जो हम अग्रेजी, गणित और अन्य विषय पढाया करते थे। उनकी हाथ की लिखावट बडी अच्छी थी, और प्रति मास वे हम तीनो की पूरी ब्योरेवार रिपोर्ट बनाया करते, जिसम हमारी पढाई लिखाई खेल कूद और सामान्य व्यवहार का उल्लेख रहता। यह रिपोर्ट हमारे अभिभावक को और उनके माध्यम से पिताजी को भेजी जाती। मास्टर जी—हम उन्हे इसी नाम से सबोधित करते थे—एक दिन काले सगमरमर

या एक फलक लाए जिसमे दुबले पतले, धोती पहने-ओढे आदमी की मुक्तासीप से जड कर बनाई हुई एक आकृति थी। उन्होने बताया कि ये भारत के महान नेता गाधी जी हैं। लेकिन उन्होने उसे हमे सिर्फ दिखाया भर, उसे हमारे पास छोडा नही, इस डर से कि कही उसके कारण अभिभावक से उनकी गहरी अनबन न हो जाए। हम एक उदबोधक, लेकिन जरा भद्दा सा मजाक भी बताया गया, कि यदि हिन्दुस्तान के सारे आदमी एक साथ पशाब कर दें तो वह सारे अग्रेजो को हिन्दुस्तान से बहाकर समुद्र मे डालने के लिए काफी होगा। किसी वजह से हम तीनो ही अग्रेज विरोधी थे, हालाकि खुले तौर पर हमने कभी इसे जाहिर नही होने दिया। मुझे खूब अच्छी तरह याद है, जब मैं साढे आठ साल का था और सितम्बर 1939 मे रेडियो सुन रहा था, तो उसमे खबर आई कि दूसरा विश्व महायुद्ध छिड गया है। उसके पश्चात हम सभी गुप्त रूप से जमनो के पक्ष का समथन करते रहे और जब भी अग्रेजो के पिछडने की खबर आती, हम खुशी से नाचने कूदने लगते। केवल एक ऐसा नौकर था—रघुनाथ सिंह—जो यह हुज्जत करता कि शुरू की थोडी बहुत हानि के बावजूद अग्रेज कभी हार ही नही सकते। इससे हमे बडा गुस्सा आता। हम सब मिलकर उसे ताना देते, पर वह अपनी बात पर अटल रहता और चर्चिल की भाति अतिम विजय म उसका दढ विश्वास कभी न डिगता। बाद म मुझे पता चला कि वह हिन्दुस्तानी फौज के एक रेजीमेट मे कुछ समय रहा है।

कालान्तर मे रिची दम्पति का स्थान कैप्टेन और मिसेज रफोड ने लिया जो अग्रेजो मे हमे सबसे अच्छे लगे। कप्टेन (रैगी) रैफोड, जो पहले राज्य म जन गणना कमिश्नर थे, प्रथम विश्व युद्ध मे अपनी एक भुजा गवा बठे थे, लेकिन अपने ठूठ को इतने प्रभावशाली ढग से इस्तेमाल करते कि आश्चय होता और वे बहुत बढिया निशानेबाज भी थे। कैथरिन रफोड एक मनमोहक और चुपचाप कुशलता पूवक अपना काम करनेवाली महिला थी और उनके बच्चे, जोन और डगलस, जो दोना ही हमसे काफी बडे थे, इग्लैंड मे पढते थे और छुट्टियो मे प्रतिवष आया करते थे। रैफोड के कायकाल मे हमने बेडमिन्टन फुटबाल और हाकी सीखना शुरू किया। हमे क्रिकेट की शुरूआत भी कराई गई और हम ब्रेडमैन, हमॉण्ड और ऐसे दूसरे सुप्रसिद्ध नायको को पत्र डाला करते। इसके बावजूद क्रिकेट मेरा प्रिय खेल नही बन सका। कभी कभार की बात अलग है, पर मुतवातिर इस खेल मे मेरी दिलचस्पी कभी नही रही, जो मुझे लगता कि बडे अजीब ढग से लम्बा किया जाता है। गाहे बगाहे हमे खरीद फरोख्त के लिए प्राय गुलमर्ग जाने दिया जाता, जहा उस वक्त गर्मी मे भीड की भीड, बडी सख्या मे आए हुए अग्रेज लागो की जरूरता का पूरा करने के लिए नई से नइ विदशी चीजें लाई जाती और उनसे लैस दूकानें चमकती दमकती रहती। ठड मे जब हम जम्मू म रहते ता खरीदारी

के लिए नियमित रूप से हर पन्द्रह दिन मे अपने अभिभावक के साथ सियालकोट जाया करते जो मोटर से केवल एक घटे के रास्ते पर था। वहा हम गुलाम कादिर के डिपाटमण्ट स्टोर म चाय पीते और उसी के सामने कोने की एक छोटी सी किताबो की दूकान स कामिक खरीदते। इग्लैंड से भी हम तीन कॉमिक मगाया करते थ— टाइगर टिम' (मेरा), 'डोनाल्ड डक' (डिक्की का) और 'पक' (बिन्टी का)।

मेरे पिताजी उत्तम घुडसवार थे और हालाकि डीलडौल भारी होने के कारण चोटी के घुडसवारो मे तो नही शामिल हो सके, लेकिन पोलो मे पाच के हैडीकेप के सामान्य स्तर तक पहुच गए थे। उनकी ख्वाहिश थी कि मैं अच्छा पोलो खिलाडी बनू और तीन वर्ष की उम्र से ही करीब करीब रोज ही मुझे घुडसवारी करने पर मजबूर किया जाता, शुरू मे काठ के घोडे पर फिर एक छोटे घोडे पर, फिर धीरे धीरे बडे जानवरा पर। कई बार मैं गिरा, और एक बार तो ऐसा भय कर हादसा हुआ कि जम्मू के पोलो मदान म मेरे घोडे ने छलाग लगानी शुरू कर दी स्तम्भित होकर मैं उमसे लटका रहा, जब तक कि वह थककर चूर नही हो गया और तब जाकर वह खडा हुआ। उन वर्षों मे मैंने विश्व मे बढिया से बढिया माना जाने वाला पोलो देखा क्योकि जयपुर की मशहूर टीम, जिसका 35 का मार्क का हैडीकप था। (सभवत अधिकतम 40 मे स), प्रतिवर्ष श्रीनगर आया करती थी, हम विशेष जनाना दशक मडल से अपनी मा दादी और सफेदपोश अन्य वद्धा महिलाओ के साथ खेल देखा करते। ये उन थोडे अवसरो म से थे जब मुझे अपनी वयोवद्ध महिला सम्बधियो से मिलने का मौका मिलता, यद्यपि हर दूसरे या तीसरे महीने मा उनसे मिलाने मुझ जनाने महला म ले जाया करती।

एक घटना जिसकी मुझे याद है मई 1935 मे क्वेटा के भयकर भूकप की है। कई हफ्ता तक हम ताले मजिल म भीतर रात गुजारने नही दिया गया और हम बाहर बगीचे म सोना पडता था, जिसका हमे बडा कौतूहल था। एक ऐसा अवसर भी आया जब मेरे टासिल निकाल देना जरूरी हो गया। जम्मू मे कर्ण निवास के एक कमर का ऑपरेशन थियेटर मे बदल दिया गया, और प्रसिद्ध सजन कनल हापर नेल्सन आपरेशन करने के लिए लाहौर स आए। मुझे याद है जब क्लोरोफाम का मास्क मेरे मुह पर रखा गया तब मैं छटपटाने लगा और बाद म, पिताजी मेरे पास आए —व मेरे पास बहुत कम ही आते थे—एक जिगसॉ (चित्रखड) पहेली लिए मेरे बिस्तर पर बठे, हर्षित और आश्चयचकित कि मैं आइसक्रीम खा रहा हू इसीलिए कि वह आपरेशन के बाद मेरे गले के लिए लाभ कर समझी गई थी।

भारतभूमि के साथ मेरा सम्पर्क बम्बई म ही हुआ था और अब यह विशाल नगरी मेरे शुरू के अनुभव प्राप्त करने का एक ही महत्वपूण स्थल भी बनी। यद्यपि

मेरे पिताजी को अपने प्रारभिक जीवन मे पोलो खेलने का बडा चस्का था, लेकिन बाद मे उनकी घुड दौड मे गहरी रुचि हो गई और इसकी वजह से उन्ह अनिवाय रूप से बम्बई आना पडता, जहा भारत मे सबसे अच्छी घुडदौड होती थी। परिणाम यह हुआ कि गर्मी के छह महीने तो वे श्रीनगर मे गुजारते, लेकिन ठड म केवल दो महीने जम्मू म रहत और चार महीने बम्बइ मे। पहली बार 1940 मे, जब हम बम्बइ गए तो वे कारमाइकेल राड पर स्थित एक किराए की इमारत मे ठहरे, जिसका नाम था "निशात हाउस"। इस यात्रा की बस मुझे इतनी ही याद है कि हमे "प्योर गोल्ड' नाम एक सुस्वादु सतरे का पेय पीने को मिला करता, जिसकी हम स्ट्रॉ के जरिए बडे ऐश के साथ चुस्की लिया करते, और यह भी कि वापस लौटन के एक दिन पहले हम तीना का घुमा फिराकर इसके लिए खूब डाट पडी थी कि हमने अपने बठक खाने का, सोफा और कार्पेट पर सब जगह स्याही लुढका लुढकाकर, सत्यानाश कर डाला था। अगले वष पिताजी ने जगह बदल ली और 94, नेपियन सी पर पलटो के एक ब्लाक म चले गए जो उन्होने खरीद लिया था। वे स्वय छठी, सबसे ऊपर की मजिल पर रहते थे और मेरे लिए उन्होने पहली मजिल रखी थी, जिसकी छत पर एक बगीचा था—जो उन दिनो एक अनूठी चीज समझी जाती थी।

वहा हम अपने अभिभावक के साथ कुछ महीने रहे। तब तक अंग्रेज अभिभावको को छुट्टी दे दी गई थी और उनकी जगह कनल कैलाश नारायण हक्सर नियुक्त किए गए थे। यह एक खुला रहस्य था कि मेरे पिताजी उनका राजनतिक सलाहकार के रूप मे इस्तेमाल करना चाहते थे, और इसके लिए उनकी युवराज के अभिभावक के रूप मे नियुक्ति करके एक पारदर्शी सी युक्ति उन्होने अपनाई थी इससे मेरे पिताजी की एक ऐसी विचित्र मनोवृत्ति उमडकर सामने आती है, जो अततोगत्वा उनके राजनतिक जीवन की इतिश्री का बायस बनी—किसी पर भी अधिक समय तक विश्वास कर पाने की उनकी असमथता। वे अपने प्रधान मन्त्रियो का चयन बडी सावधानी से करते, लेकिन नियुक्ति के तुरन्त बाद ही व माना उसके प्रतिसतुलन के लिए, किसी और को तयार करना शुरू कर देते। अपवादस्वरूप श्री एन० गोपालस्वामी आयगर को छोडकर, जो 1934 से 1939 तक छह वष राज्य के प्रधानमत्री रहे, यह उन सभी व्यक्तियो के साथ घटित हुआ, जो उनके बाद इस पद पर नियुक्त होते गए—राजा महाराज सिंह, बी० एन० राउ, कनल के० एन० हक्सर, पडित रामचन्द्र काक और जनरल जनक सिंह—एकदम 1947 के सकट तक।

कनल हक्सर विशालकाय व्यक्ति थे—बाला भरी भौहे सुनहला चश्मा और चलने मे फौजी लचक—सब मिलाकर उनका व्यक्तित्व बडा रोबदार लगता था। पर अपने इस कठोर बहिरग के बावजूद वे मुझे बहुत चाहते थे और अक्सर बडे

प्यार से अपने घुटने पर बैठा लिया करते। मुझे लगता है कि मेरे पिताजी भी उनसे थोडा डरते थे और, हालांकि उनकी अनुपस्थिति म वे उनका मजाक उडाते, लेकिन जब कमरे मे कनल साहब होते तो थोडी सावधानी बरतते। उधर कर्नल हक्सर मेरे पिताजी के प्रति वफादार होत हुए भी ऐसा नही था कि जो कुछ वे करे सभी का समथन करें। एक दिन मुझे याद है, जब हम पिताजी से एक मुलाकात के बाद मोटर पर वापस जा रहे थे तो उन्होने जरा तुरशी के साथ मुझसे कहा, "टाइगर वडी सावधानी से देखो, जिससे बडे होने पर तुम यह समझ सको कि क्या नही करना चाहिए। कनल हक्सर की सबसे बडी बेटी श्यामा वत्सल का बच्चो पर चमत्कारी प्रभाव था, और उन्ही की प्रेरणा पर मैंने अपनी पहली 'किताव लिखी थी—कविताओ और लघु निबधो का एक अठपेजी हस्तलिखित सकलन।

मैं अपने पहले स्कूल—कैथेड्रल हाई स्कूल—म बम्बई मे ही 1940 मे भेजा गया—डिग्बी और बिल्टी साथ थे। उस समय यह स्कूल मुख्यतया अग्रेज, पारसी ऐंग्लो इण्डियन लडको के लिए ही था और हम सिंह प्रथम, सिंह द्वितीय और सिंह ततीय के नाम से ही जाने पहचाने जाते थे। इस विचित्र नामो से वडी ऊब लगने लगी थी और यद्यपि मैं एक और ग्रीष्मकालीन सत्र म वापस उस स्कूल म गया, लेकिन मैं यह कह नही सकता कि उस सम्मान्य सस्था से मुझे वास्तव मे कोई ठोस लाभ हुआ हो। पीलू मादी ने जो बाद मे दून स्कूल म भी थे, जब मैं वहा गया, यह लिखा है कि जुलफिकार अली भुट्टो कैथेड्रल म उनके सहपाठी थ, जिसके अथ यह हुए कि हम भी उस समय वहा रहे होगे, यद्यपि स्कूल मे भुट्टो की मुझे याद नही है। टीचर सभी अग्रेज थे, यहा तक कि उर्दू टीचर भी, जिनमे ऐसा लगता कि उस खूबसूरत जुबान का जुमला भी ठीक से बोल पाने की लियाकत नही थी।

कुछ साथ के नरेशो के अलावा पिताजी के अधिकाश मित्र घुडदौड के ही क्षेत्रो से लिए गए थे, लेकिन विदेशियो का एक छोटा वग भी था जिसकी मुझे अच्छी तरह याद है। फासीसी जौहरी, विक्टर रोजेन्थल, जिसकी जिंदगी आश्चयजनक उतार चढावो और रगीनियो से भरी थी और जिसने जिन्दगी म विपुल धन कमाया भी और गवाया भी, तराशी हुई दाढी और जिन्दा मिजाज वाला एक आकषक आदमी था। वह पिताजी को बीसियो वर्षों से जानता था और ज्यादातर वही उनके हीरे जवाहरात और विदेशी पूजी निवेश की देखभाल किया करता था। वह गर्मियो म नियमित रूप से कश्मीर आया करता था और हमेशा मेरे लिए बढिया बढिया तोहफे लाता—मोपासा और ओ० हेनरी की पुस्तकें, जिन्हे मैं बडे चाव के साथ पढता प्लास्टिक के बाल ब्रशो का एक सेट, स्विस चाकलेटो के बक्से। मैंने जो उसका वणन फ्रांसीसी बताकर किया, वह इसलिए कि वह परिस म रहता था

और हम सभी यह समझते थे कि वही उसकी राष्ट्रीयता होगी। यह तो बहुत वर्षों बाद मुझे पता चला कि वह दरअसल रूसी था और अपनी दाढी समेत रूस से करीब करीब उसी समय बाहर चला आया था जब लेनिन उसमे दाखिल हुए। फ्रेडी और बेरिल स्टाइलमन, नामक अग्रेज दम्पत्ति हमारे माता पिता के अच्छे दोस्त थे। वह एक ब्रिटिश फम क्लिलिक निक्सन्स मे था और बेरिल बडी खूबसूरत और जीवत महिला थी। करीब पिताजी की ही उम्र की, जहा तक मुझे याद हैं, वही एक ऐसी हस्ती थी, जो उन्हे छेड पाती थी और बिलकुल सहज रूप से उनसे बातें कर सकती थी—ऐसा करिश्मा जो उन दिनो अलौकिक माना जाता था।

हिन्दुस्तानियो मे, एम०एच० अहमदभाई और उनकी बेगम रुखसाना अक्सर आया करते थे, सिफ इसलिए नही कि उनकी पृष्ठभूमि भी घुडदौड की थी, इसलिए भी कि वे एक ऊचे दर्जे के गायक थे। गाते समय अपने अतिरजित हाव भाव के बावजूद 'महमूद सेठ" उन उत्कृष्ठ शौकिया गवया मे से थे जिन्ह मैंने सुना है। ठुमरियो मे उन्ह महारत हासिल थी और उनके साथ मिलकर पिताजी प्राय सगीत की महफिलें आयोजित किया करते, जिनमे हिन्दुस्तान के चोटी के कलाकार हिस्सा लेते केसरबाई केरकर सिद्धेश्वरी बाई, बेगम अख्तर और मेनका शिरोडकर। पिताजी खुद तो नही गाते थे, लेकिन बढिया गायकी की अच्छी परख उनके काना को थी। लगभग यही समय था जब उन्हाने मुझे शास्त्रीय सगीत सीखना शुरू कराया—एक ऐसा काय जिसके लिए मैं उनका चिर ऋणी रहूगा। मेरे पहले शिक्षक बलराम सिह रावत थे जो नेपाल की तराई के रहने वाले थे। वे कोई बडे सगीतकार तो नही, लेकिन एक कुशल शिक्षक थे और दो वष मे ही मैंने कई राग सीख लिए। आगरा के मशहूर घराने के उस्ताद विलायत हुसन दो गर्मियो म मुझे तालीम देने के लिए तशरीफ लाए। लगभग तीन वष बाद मेरे पिताजी न एच० एम० वी० से मेरे गीतो के कुछ रिकाड (78 आर० पी० एम०) निजी उपयोग के लिए बनवाए, जिन्ह वे बडे गव के साथ अपने दोस्ता को बारी बारी से भेजा करते थे।

जिन प्रमुख प्रभावो स मैं अपने जीवन मे प्रभावित हुआ, उनमे सगीत भी एक रहा है। सबसे पहली धुन, जिसकी मुझे याद आती है, मैंने तब सुनी थी जब मैं चार या पाच वष का था, बाल कृष्ण की स्तुति का एक लोकप्रिय भजन "सुना दे, सुना दे, सुना दे कृष्णा, तू बासुरी की तान सुना दे कृष्णा।" कुछ वर्षों बाद श्रीनगर म एक नया सिनेमाघर खुला जिसका नाम था "अमरीश थियेटर'। (इसके मालिक, पडित कृष्ण बल, उसे मेरे नाम से खोलना चाहते थे लेकिन पिताजी ने उन्हे अनुमति नही दी, इसलिए उन्होने अपने सबसे छोटे लडके का नाम उसे दे दिया)। मैं उसके उद्घाटन पर अपने माता पिता के साथ गया था,

जिसके लिए मशहूर नर्तकी और अभिनेत्री साधना बोस कलकत्ते से आई थी। जहा तक मुझे याद है, उस मौके पर उन्होने जो नृत्य किया, उसमे अधिकतर एक बडे नगाडे के ऊपर अनेक प्रकार की अल्प परिधान मूर्तिनुमा मुद्राए प्रस्तुत की थी। एक और नत्य भी था जिसमे एक पुरुष ने नीली पोशाक (सागर) और एक लडकी ने हरी पोशाक (नदी) पहिनकर एक छोटी सी मनमोहक नत्य नाटिका प्रस्तुत की थी। उसकी धुन ऐसी थी, जिसकी याद मुझे मैं जब तक जिऊंगा, तब तक बनी रहेगी। वह औडव राग भूपाली म थी। उस धुन को सुनते ही मुझे एसा लगा माना मरे अन्दर अजीब तरह से एक फ वारा छूट पडा हो और सगीत मेरी अगुलिया क सि । से वह चला हो। हफ्ता बाद तक मरी नसो म सुन्दर स्वर स्पन्दन करते रह। बाद म बलराम सिंह जी से मैंने इसी राग मे अनेक गीत सीखे और दो और ऐसी ही खूबसूरत रागा—दुर्गा और मानकौंस मे भी। मेरे अदर किसी नई धुन का बीज पडते ही अकुरित होकर तब तक विकसित होता जाता जब तक मुझ यह महसूस न होने लगता कि मेरा सपूण व्यक्तित्व ही उसकी लय म तरगित हा रहा है। मरे पिताजी अचूक निशानेबाज थे राइफल के भी और छर्रेदार बदूक के भी, और बत्तख तथा कश्मीरी तीतर "चकोर" के शिकार मे उन्हान अन्तर्राष्ट्रीय रिकाड कायम किए थ। उनकी शिकारी पार्टिया की योजना बहुत बारीकी से बनाइ जाती और हर महमान के लिए कारतूस और लाल अगूरी शराब मे लस पैक किया हुआ लच उपलब्ध किया जाना। श्रीनगर के पश्चिम मे होकरसर और हिगम की उथली झीलो म सुबह-सुबह बत्तख का शिकार शुरू किया जाता। हम सब एक बडे जुलूस मे मोटरो पर चलकर झील किनारे इक्ट्ठे होते और निर्धारित समय पर अपनी नावा मे बठ उन्हे खेते हुए अपने अपन चाद मारी क लक्ष्य पर पहुचते। वहा सारा दिन तरह तरह की बत्तखो को मारने म गुजरता जिनम कभी कभी जगली हस भी होते। एक खास सलूक के रूप म पिताजी शिकार करते समय कभी-कभी मुझे अपने पीछे बठने देते और जब व एक चिडिया गिराते तो मैं अपन सोने के गणक को खटका देता। व बबले एण्ड स्काट की तीन दुनाली बदूको का इस्तेमाल करते थे और उनके दोनो तरफ एक एक बदूक भरने वाला खडा रहता था। पहली बदूक दागन के बाद वे उसे बाए खडे व्यक्ति को द दत और दाहिन वाले से भरी बदूक ले लेते। जब तक व इस दूसरी बदूक को दागत तब तक पहले वाली भर ली जाती और यह क्रम घटा चलता रहता। मुझे ऐस अनक अवसरा की याद है, जब बत्तखा की पक्ति झील की ओर आते दिखलाई देती और जसे ही बदूक की मार क भीतर आती, पिताजी दो चिडिया पहली बदूक स मार गिरात, जब तक वे सिर पर आती तब तक दूसरी बदूक स दो और गिरा दते और जब तक व मार स बाहर निकलें निकलें तब तक तीसरी स दो और भी गिरा दते। मैं उनकी इस निपुणता की भरपूर प्रशसा करता।

बड़े जानवरो के शिकार मे भी वे बड़े कुशल थे। कश्मीर के आसपास की छोटी तराइयो मे और जम्मू क्षेत्र मे ऊधमपुर के समीप उन्होने शिकार के लिए कुछ बढिया आरक्षित क्षेत्र विकसित कर लिए थे। मैं कई मौका पर उनके साथ था, जब उन्होने काले रीछ, जगली सुअर, तेंदुआ और—अफसोस है कि—उम भव्य कश्मीरी हिरन, हगुल, का भी शिकार किया जो अब लगभग लुप्तप्राय है। अक्टूबर की सुबहो मे हवा ठडी, ताजी और साफ होती, भूरे लाल और सुनहले रगो मे पहाडिया दमकती होती और शिकार की पुश्तनी दिलकशी रगो मे खून को ज्यादा तेज दौडा देती। शिकार के अलावा कश्मीर मे ट्राउट मछली पकडना भी विश्व मे महत्वपूर्ण गिना जाता है। एक शताब्दी पहले मेरे परदादा महाराज रणजीत सिंह ने रानी विक्टोरिया को कश्मीरी पश्मीना बकरा का एक जोडा भेंट मे भेजा था। जो आदमी उन्हें लेने आया था, उसने लौटकर मलका-मुअज्जिमा को यह रिपोट दी कि कश्मीर के पहाडी चश्मे ट्राउट के लिए बेहद मुफीद है। फिर क्या था, उस आलादिल मलिका ने ट्राउट अगुलिमीना से भरा एक हौज वापसी तोहफे के रूप मे भेज दिया। वे कश्मीर मे इतनी अच्छी पनपी कि बहुत जल्द अपने पूवजो मे भी आगे बढ गईं। इग्लड मे एक पाउड से ऊपर की मछली अच्छा शिकार मानी जाती है, मैं जानता हू कि कई रोज पिताजी ऐसी मछलिया निकाल फेंकते थे जो दो से कम की होती। बडी से बडी उन्होने 14½ पौं० की मछली पकडी थी, लेकिन हावन मछली पालन क्षेत्र मे भूरी ट्राउट आश्चयजनक रूप से बढ़कर 27 पौं० तक की हो जाती।

मछली पकडने के लिए जब पिताजी पहलगाम से नीचे बहनेवाली लिद्दर नदी पर स्थित त्रिक्कड और नमबल की यात्रा करते थे तो उनके साथ जाने मे बडा मजा आता था। झरना वस्तुत बगीचे के बीच म से ही बहता था और कोई चाहे तो सुबह जल्दी उठकर नाश्ते के लिए मछली पकड सकता था। सारा दिन हम लोग मछली पकडते बाहर घूमा करते और शाम को ही अपने निवास स्थल का वापस लौटते। यदि पिताजी, की पकड मे अच्छी मछलिया आ गइ तब तो खुशी फैल जाती, लेकिन अगर उनका दिन खराब चला गया, या कोई बडी मछली हाथ से निकल गई, तो फिर उनका मिजाज बहुत बिगड जाता। नतीजा अक्सर यह होता कि किसी बदनसीब नौकर या शिकारी की शामत आ जाती और आधी रात को वह निकाल दिया जाता। तब तक हम चुपचाप बैठे पट्रोमक्स लपा और बाहर बहते हुए झरने की आवाज सुना करते, बोलने की हिम्मत किसी की न पडती।

दरअसल, पिताजी के स्वभाव का यह लक्षण वैसा ही था जसा आमतौर पर सामती वग मे पाया जाता है, हानि या हार को वे खुशी खुशी बर्दाश्त नही कर पाते। शिकार म हो या मछली पकडने मे, पोलो हो या घुडदौड, थोडा-सा भी

धक्का लगा नहीं कि उनका मिज़ाज मलिनता के गर्त मे गिर जाता और फिर कई दिन तक ऐसे ही बना रहता। और इसकी अनिवार्य परिणति होती जिसे 'मुकद्दमा' के नाम से जाना जाने लगा था, स्टाफ के किसी बेचारे युवा सदस्य या किसी नौकर की अयोग्यता या दुर्व्यवहार के सबध म लम्बी जाच। जसे जसे मैं बडा होता गया, इन क्रूर तहकीकातो से मुझे चिढ होती गई और जहा मेरा जन्म हुआ उस परिवेश स मेरी उत्तरोत्तर बढती हुई असगति को इससे और भी बढावा मिला। यहा थी सत्ता—औदार्यहीन, शक्ति—करुणाविहीन।

डचिगाम, जो श्रीनगर से केवल बारह मील पर स्थित है, पिताजी के मन पसद अड्डो मे से एक था। हारवन के जलाशय के आगे, जहा यह माना जाता है कि चौबीस शताब्दी पहले द्वितीय अतर्राष्ट्रीय बौद्ध सगीति हुई थी, सडक एक गहरी तराई म मुडती है। आरक्षित वन के प्रवेश से चार मील दूर एक साफ की हुई जगह है जिसमे पिताजी की मशहूर शिकारगाह निर्मित की गई थी। शिकार के इस आरक्षित वन मे काले रीछो और जगली सुअरो की भरमार थी और शरद ऋतु म नीचे उतरती हुई हिमरेखा के साथ साथ भव्य हगुल भी नीचे आ जाता। लॉज की इमारत सादी, पर सुरुचिपूर्ण थी, उसमे अटैच्ड बाथ वाले छह बैडरूम थे और एक ड्राइग तथा डाइनिंग रूम, और दीवारें बिस्कुटी रग के रेशमी कपडे से ढकी थी। वहा स बडा भव्य दृश्य दिखलाई देता था, तीन तरफ आकाश मे ऊची उडान भरते हुए सघन वनाच्छादित पर्वत, और लॉज के ठीक पीछे एक नीची पहाडी, घास स ढकी और बीच बीच म काले शिलाखडो से चिह्नित और एक श्रेष्ठ प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती हुई। उद्यान म अखरोट के चार बडे पेड, रग बिरगे गुलाब की क्यारिया और बहुत से हरे भरे लॉन थे।

मौसम मे हम कम से कम आधे दजन बार यहा आते। पिताजी कभी कभार एकाध रीछ या सुअर मार लेते—एक बार उन्होंने लाज के बरामदे से एक रीछ मारा था—लेकिन ज्यादातर पिकनिक ही होती थी। उनका शिकारी एक गठीला, धूप खाया हुआ कश्मीरी था, नाम रहमान वानी जिसका चेहरा खुदे हुए ग्रेना इट पत्थर जैसा और मूछें प्रभावशाली लाल रग की थी। कभी कभी हमारे साथ मा, उनकी हाजिरी म रहने वाली वज़ीरनी सीता और विविध सबधी और परि चारिकाए आती थी और हम उनके साथ अहाते मे गुलाब की झाडियो के बीच लुकाछिपी का खेल खेला करते। विशाल वृक्षो मे स बहती हवा के गीत, तराई म बहनेवाले झरने का सुकोमल आग्रह के साथ फूट निकलना, आकाश का नीलापन और वन की हरियाली जिनम सदव सामजस्यपूर्ण विषमता होती सब मिलाकर डचिगाम को एक जादुई स्वरूप प्रदान करते। वहा जाते ही आपको एक अलग-सा आयाम मिलता, एक ऐसा ससार जहा आदमी की एक तरह से कोई हस्ती ही न होती और सार तत्व काल और दिशाओ को खूबसूरती के साथ बाध रखते।

एक और चमत्कारी जगह थी—डल झील मे एक टापू पर बनी हमारी कुटीर, जहा पहले मेरे दादा का कबूतर खाना था। इसी वजह से वह कश्मीरी मे "कोतरखाना" कहलाती थी, और हालाकि बाद मे उसे "लेक पवीलियन" और "लक्ष्मी कुटीर" नाम दिए गए, लेकिन जो पहले वाला नाम चला सो चला। इस कुटीर से वास्तव मे पहाडो का एक विस्मयकारी दश्य दिखलाई देता है, एक विशाल रगमडल जैसा एक सौ अस्सी डिग्री विस्तार म फला हुआ। पहाडो मे रहना मुझे हमेशा से पसन्द रहा है, हालाकि उन पर चढने की ख्वाहिश कभी नही रही। मैं तो बस उन्हे देखते रहना चाहता हू, जिससे उनके आह्लादकारी अस्तित्व का एहसास मेरी चेतना मे बना रहे। उनका धीर गभीर सतुलन दैनिक जीवन की हडबडी और हल्लागुल्ला, द्वेष और षडयत्र के विपरीत, एक सुखद विपर्यास प्रस्तुत करता है। मुझे दुनिया के कोने कोने की सैर के मौके मिले हैं और मैंने पाया कि जितनी विशाल पर्वतमालाए हैं—हिमालय, आल्पस, एडीज—इन सभी मे यह विशेष गुण है कि वे मानव चेतना को विस्तार प्रदान करती है।

यह कश्मीर की स्तब्धकारी प्राकृतिक छटा ही थी, जिसने पहले-पहल मुझे सिखाया कि मैं उस रहस्य के गर्भ मे प्रवेश कराने वाले गहनतर प्रश्नो को पूछू जिसे 'जीवन' कहते हैं। अपने प्रारभ के वर्षों मे मेरी धार्मिक भावनाए मा के पारपरिक भक्तिवाद तक ही प्राय सीमित थी—विशुद्ध किन्तु किंचित मर्यादित। मैं जब सिंहावलोकन करता हू, तो यह स्पष्ट पाता हू कि कश्मीर का निरा भौतिक सौंदर्य—उसके पहाड और तराइया, वन और सरिताए, धान के खेत और टेढे मेढे पहाडी रास्ते—ये सब मेरे सौंदय बोध को कुशाग्र करन म, मानव मन के उन कोमल और बारीक पहलुओ के प्रति मुझे अधिक सवेदनशील बनाने मे सहायक हुए, जो पल पल के जीवन के दुराग्रही थपेडो से रौदकर प्राय मिट्टी मे मिला दिए जाते है। सौदयपूर्ण प्राकृतिक वातावरण मे बडे होना एक ऐसा विशेषाधिकार है जो दुलभ है और जिसका मूल्याकन नही किया जा सकता। यह अजीब बात है कि भारत मे हमारा रुख प्राकृतिक सौन्दय के प्रति इतना उदासीन होता है कि परिणामस्वरूप बच्चे इस आयाम से प्राय बिलकुल ही अनजान बने रहत हैं। दरअसल ये मेरे अग्रेज अभिभावक ही थे, और बेरिल स्टाइलमन जैसे लोग, जो *सुहावने दश्या और सूर्यास्त को देखते ही अनवरत भाव विभोर हो जाते।* तब इसका हम मजा लेते और अन्दर ही अन्दर यह समझकर अपने को उनसे बेहतर मानते कि भारत इग्लैड से जाहिरा तौर पर कही ज्यादा खूबसूरत है। लेकिन धीरे धीरे अपनी कुदरत के इस नूर को मैं नई और ज्यादा खुली आखो से निहारने लगा।

एक राजकुमार को सामाजिक बोध आसानी से नही हो जाता। मैं अपनी ही स्वत सपूर्ण दुनिया म रहता था, जहा यह मान लिया गया था कि नौकर तो रहग

ही—और क्यो चद लोग शासक हा और दूसर शासित, यह प्रश्न कभी उठाया ही नही गया पूछने की तो कौन कह। फिर भी मुझे एक लाभ था जो मेरी स्थिति मे दूसरा का नही होता। मेरी मा गाव की एक गरीब परिवार की लडकी थी और उन्ह राजशाही साज सामान और तडक भडक चाहे जितना भी अधिक पसन्द क्या न रहा हो वे हमशा गरीबो की जरूरता को पूरा करने और उनके दुख दद का दूर करने को अपना पावन कर्तव्य मानती थी। महारानी के रूप मे न्यतीत अपने तीस वर्षो म सदैव उन्हाने न केवल अपने गरीब सबधिया की, बल्कि सैकडा जरूरतमद और विपत्तिग्रस्त सामान्य लोगो की भी सहायता करने मे काफी पसा खच किया। कितनी लडकिया की उन्होने शादिया कराइ, गरीबो के लिए कितने मकान बनवाए और कपडे और मिठाइया तो वे निरतर बाटती ही रहती थी—इनकी गिनती करना सम्भव नही है। वे मुझे हमेशा समझाया करती कि गरीबा की सेवा करना और उनकी मदद करना तुम्हारा कत्तव्य है। "यदि तुम धनियो की सहायता करोगे, वे कहा करती, ' ता वे तुम्हारा पैसा तो ले लेंगे, परतु जब तुम नही दोग तो तुम्हार खिलाफ हो जाएगे। गरीबो को मदद दोगे तो वे उसकी सराहना करेंगे, तुम्हारे लिए ईश्वर से प्राथना करेंगे और तुम्ह आशीर्वाद भी देंग।" एक तरह से यह मेरा समाजवाद से नही तो कम से कम वितरणात्मक न्याय से पहला परिचय था। वे मुझे यह भी उपदेश देती कि जो भी तुम्हे अभिवादन कर उसका उत्तर तुम हाथ जोड कर दो, लोगो से उनके परिवारो की कुशलता क बारे म पूछो जा भी तुम्हारे पास आ जाए, अमीर हो या गरीब, सभी से मिलो जुलो। 'तुम्हारे पिताजी लोगो से कभी नही मिलत, ' वे शिकायत करती, 'और यही गडबडी है। वे तो बस चापलूस दरबारियो और पिठ्ठुआ से घिर बठे रहत हैं और बाहर क्या हो रहा है इसका दरअसल उन्हें पता ही नही चल पाता।'

जम्मू और कश्मीर राज्य की सेना स हिन्दू और मुस्लिम दोनो मे स लिए गए ए डी सी की श्रेणियो के अलावा पिताजी के पास कुछ खास मुस्लिम दरबारी भी थे। उनके सरगना थे नवाब खुसरु जग, जो हैदराबाद के एक खानदानी आदमी थे और जिनकी सवाए निजाम न पिताजी को सौंप दी थी। 'महबूब' कई बरस तक पिताजी क नजदीकी दास्त भी रह और उनके फौजी सचिव भी। उनकी बुलन्द आवाज और दरबारी शिष्टता के कारण उनकी मौजूदगी प्रभावशाली होती, वे उत्तम घुडसवार थे और, जैसा लडके ह त हुए भी हम तक मालूम था, वे बडे औरत पसन्द आदमी थे। साहिबजादा नूर मोहम्मद खान, जा बलूचिस्तान के थे और जिनका व्यक्तित्व बडा रोबीला था, पिताजी के स्टाफ म कई बरस रहे। फिर सरदार अब्दुल रहमान इर्फेन्दी—'भाई-जान' —थे जो पिताजी क करीबी दास्त थ और जा गुपकार रोड स्थित हमारे श्रीनगर महल क द्वार के बिलकुल

पास ही रहते थे। वे अफगानिस्तान से आए शरणार्थी थे, नवाब अमानुल्ला के रिश्तेदार थे, जिन्हे गद्दी से उतार दिया गया था और देश छोडने को मजबूर कर दिया गया था। इफेंदी की दूसरी पत्नी एक विशालकाय महिला थी जिनका पश्तो उर्दू मिश्रित लहज़ा बडा दिलचस्प था, वे मा के साथ टेनिस खेला करती थी। इफेंदी की सास की शख्सियत, जो 'कोको जान' कहलाती थी, भूलने लायक नही थी। जब मैंने उन्हे देखा तो वे करीब अस्सी बरस की थी, लेकिन तब भी वे हमेशा महफिल की जान हुआ करती थी। लगता है कि उन्होने अपनी जवानी मे अफगान दरबार मे काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी। हिन्दू और मुस्लिम दरबारियो मे कोई भेदभाव नही था, बल्कि, मुस्लिम दरबारियो के साथ कुछ बेहतर सलूक ही किया जाता रहा। जहा तक दफ्तर के काम का ताल्लुक है, उसका प्रबध एक छोटे कद के, लेकिन बहुत ही कुशल कार्यकर्ता, दीनानाथ जलाली द्वारा सम्हाला जाता था, जो कश्मीरी पडित थे और पिताजी के साथ पच्चीस बरस रह हैं (यह एसी बात है जो विश्वास योग्य नही जान पडती), और एक और उनसे कुछ ऊचे सहयोगी थे, शभू नाथ वान्चू।

कश्मीर जैसा अब है वैसा तब भी पर्यटको का एक आनन्दस्थल था, और भारतीय नरेशो और दूसरे महत्वपूर्ण व्यक्तियो की एक विशिष्ट मडली वहा हर गर्मी मे आया करती थी, जिनमे से कुछ पिताजी के मेहमान होते थे। मुझे राजकुमारी नीलोफर की याद है, जिसकी खूबसूरती मन पर अपनी छाप छोड जाती थी और जो निजाम हैदराबाद के दूसरे बेटे से हुई अपनी शादी से उस वक्त खुश नही थी, और उसकी चचेरी बहिन, राजकुमारी दुर्रिशेश्वर की भी, जो निजाम के बडे लडके, बरार नरेश की पत्नी थी और उतनी आकर्षक नही थी। महाराजाओ, राजाओ और नवाबो का एक पूरा रगबिरगा मजमा इकठठा होता। खासकर पालनपुर के नवाब और उनकी हसीन आस्ट्रेलियाई बेगम काफी नज़दीक थे। इनमे से कुछ नरेशो से मैं मिलता और मुझे उनके पैर छूने पडते और उन्हे "अक्ल" कहकर सबोधित करना पडता। ऐसे ही एक अवसर पर मेरी मनमोहक मुलाकात एक ऐसे आदमी से हुई जो बज्र बहरा था और जिससे बातचीत पट्टी पर लिखकर करनी पडती थी। वह थे जीद के महाराजा, जो अपनी विशाल कुक्कुरशाला के लिए मशहूर थे। उस वक्त ही मेरे दिमाग मे यह बात आई कि वे अपने कुत्तो पर जो पैसा बहाते हैं, उसको यदि अपने लोगो की भलाई के लिए खर्च करते तो कही ज्यादा फायदेमन्द होता।

अग्रेज उतने अधिक दिखलाई नही पडते थे। ब्रिटिश हिन्दुस्तान की तरह जहा उनकी उपस्थिति सर्वव्यापी थी, देशी राज्यो मे वे प्राय ज्यादा नही दीखते थे। यह हमारे राज्य मे और भी इसलिए था कि मेरे पिताजी सचमुच उन पर विश्वास नही करते थे, यहा तक कि ठड मे उन्हे अपनी रेज़ीडेन्सी, जम्मू की बजाय

पंजाब में सियालकोट ले जाने के लिए राजी करते। गर्मी के महीनों में ब्रिटिश रेजीडेन्ट श्रीनगर में बाग पर उस घर में रहते थे जिसे बाद में सरकारी दस्तकारी एम्पोरियम में बदल दिया गया। लेकिन हम उन्हें शायद ही कभी देख पाते और मुझे ऐसे एक भी मौके की याद नहीं जब मैं महल में कभी उनसे मिला होऊं। लेकिन हर वर्ष वे एक फैंसी ड्रेस पार्टी आयोजित किया करते थे जिसमें मैं, डिकी और बिल्टी के साथ जाया करता था। रेजीडेन्ट की पत्नी अन्य विदेशी महिलाओं और गैर कश्मीरी कर्मचारियों की पत्नियों के साथ कभी कभी मां से मुलाकात करने आया करती थीं। इनमें से मुझे पारसी चीफ जस्टिस, सर बरजोर दलाल की पत्नी लेडी दलाल की याद है, जो छोटे कद की सम्भ्रान्त महिला थीं और जब भी आतीं, मुझे छोटी छोटी पार्सलें दिया करतीं, जिन्हें मैं बड़े चाव से संजोता।

कश्मीरी मुसलमानों से हमारा सम्पर्क केवल मालियों और शिकार और मछली पकड़ने में सहायक रखवालों तक ही सीमित था। एक बार पिताजी ने गुलाम अहमद से, जो एक प्रसिद्ध जौहरी और कालीन निर्माता था और उनका बड़ा सरधी सलाहकार था कहा कि वह मुझे शहर घुमा लाए। वह मुझे ले गया और मुझे झेलम पर खड़ी उन जर्जर इमारतों को देखकर ऐसा लगा कि नदी में वे अब गिरीं, तब गिरीं, और उन्हें देखकर मुझे जो अचरज हुआ वह अब तक याद है। 'ये हैं तुम्हारे लोग,' अहमद ने कुछ नाटकीय से ढंग से मुझे बताया। इस मुआइने का मेरे ऊपर कुछ इस तरह बेचैन करने वाला असर पड़ा कि उसके बाद कई दिनों तक शहरवासियों की याद मेरे मस्तिष्क में रह रहकर कौंध जाती। उनकी गन्दगी, उनकी दरिद्रता और महल की सुव्यवस्थित भव्यता में जमीन आसमान का अन्तर था, वस्तुतः उनकी दुनिया ही अलग थी।

उस वक्त की राज्य की राजनैतिक गतिविधि अथवा देश में सर्वत्र फैल रहे विशाल स्वातंत्र्य आन्दोलन की हमें कोई जानकारी नहीं थी। 'ट्रिब्यून' और 'सिविल एंड मिलिटरी गजट' दोनों ही लाहौर में प्रकाशित होते थे और घर में आते थे। लेकिन मैं उस समय दस बरस का भी नहीं था और इस छोटी उम्र में उन्हें पढ़ने और समझने काबिल नहीं था। आल इंडिया रेडियो से बार बार बजने वाली संगीत धुन (हर्ष है कि आज भी उसे बदला नहीं गया) बचपन की उन बातों में से एक है जो मुझे याद है और हम कभी कभी खबरें सुना करते थे, खासकर लड़ाई शुरू होने के बाद। लेकिन हमें ठीक-ठीक अंदाज नहीं था कि दरअसल हो क्या रहा है। हम तो एक निराली ही दुनिया में रहते थे जो बाहर की आर्थिक और राजनैतिक वास्तविकताओं से बहुत दूर थी। आरामदेह परिवेश के बावजूद बचपन में मैं सचमुच कभी खुश रहा होऊं, ऐसा मुझे याद नहीं आता। अपने अंदर गहरे कहीं मुझमें एक स्वयंभूत डर सा महसूस होता, जिसकी परिभाषा तो नहीं की जा सकती थी लेकिन जिसका एहसास बहुत साफ साफ होता था। यह शायद

इसलिए हो कि माता पिता की ओर से स्थिति सतोषजनक नही थी, या कि मा से मेरा जबरदस्ती अलग किया जाना हा । जो हो, उसने मेरे प्रारभिक जीवन के एक काफी बडे हिस्से को विगाड दिया ।

मैंने पहले उल्लेख किया है कि किस तरह 1940 और 1941 की शीत ऋतु म बम्बई मे मैं कैथेड्रल हाई स्कूल भेजा गया था। उन्ही वर्षों की गर्मियो मे मैं राजबाग, श्रीनगर मे स्थित प्रेज़ेटेशन कान्वेन्ट स्कूल जाने लगा था। शहर क बीच होकर अमीरा कदल पुल पर से, जो झेलम के ऊपर बन सात ऐतिहासिक पुलो मे से पहला पुल है, जाना न पडे, इसलिए मुझे नदी किनारे पेस्टनजी और अहदू की दूकानो (जा दुकानें ता क्या वास्तव मे सस्थाए बन गई थी) के पास तक मोटर से जाना पडता। वहा से शिकारे पर नदी पार करता और उस पार स्कूल के बिल्कुल पास ही किनारे पर उतरता। इमी बीच कार घूमकर पुल पर से इस पार आ जाती और मेरी प्रतीक्षा करती। अब जब मैं पीछे सोचता हू तो लगता है कि चूकि डोगरा शासन के खिलाफ शेख अब्दुल्ला के नेतत्व मे नेशनल कान्फ्रेंस का आन्दोलन जोर पकड रहा था, इसलिए पिताजी ने यही मेरे लिए अधिक सुरक्षित समझा होगा, कि शहर मे स मुझे मोटर से जाना न पडे, यद्यपि कारण रूप मे ऐसा कभी बताया नही गया। प्रेज़ेटेशन का वेन्ट बडा साफ सुथरा था और मदर पीटर के नेतत्व मे आयरिश ननो के एक सम्मान्य दल द्वारा बडी कुशलतापूवक चलाया जाता था। हमारी क्लास टीचर सिस्टर एनशिएटा थी और मिशन के हसमुख अध्यक्ष फादर शैंक्स भी समय समय पर स्कूल आया करते थे। वे सभी आयरिश थे और अलग लहजे से बोला करते थे। पढाई लिखाई के अलावा जिसमे मैं हमेशा ही पहला नम्बर आता था, (अफसोस कि पूरी तौर पर यह मात्र योग्यता के आधार पर नही होता था) वहा सगीत, खेल कूद और बहुत सी और भी मन मोहक गतिविधिया थी। वर्जिन मेरी और जीसस की सुन्दर तस्वीरें दीवालो पर टगी थी और जो नर्नें थी वे तो बस शालीनता और वास्तविक विनयशीलता की प्रतिमूर्ति थी। मुझे याद है, जब मैं एक नाटक मे पहली बार स्टेज पर आया— वह नाटक राबिन हुड के बारे मे था और वार्षिक समारोह के अवसर पर प्रस्तुत किया जाने के कई दिनो पहले से हम उसकी तयारी करते रह थे तब पहले मुझे किग रिचाड की भूमिका दी गई, लेकिन आखिरी क्षण बदल कर मुझे राबिन हुड बना दिया गया। मैं समझता हू, पिताजी ने सोचा होगा कि चूकि मैं राजकुमार हू, मुझे यह नही मान लेना चाहिए कि हमेशा मुझे राजाओ की भूमिका ही करनी हागी।

मेरे पिताजी केवल कुछ ही बातो म आधुनिक थे। मैंने पहले बताया कि वे और, उस वक्त जोधपुर के जो महाराजा थे, वे वर्षों तक जिगरी दास्त रह थे। हर साल उमैद सिंह जी और उनकी प्रखर इच्छा शक्ति सपन्न पत्नी अपने बच्चा —पाच लडको और सूसन नामक लडकी—सहित कश्मीर आया करते थे। मुझे

सदेह है कि शायद मेरे साथ सूसन की सगाई की कुछ बात रही होगी, क्योंकि इसके बाद जो विचित्र घटनाए हुइ उनके पीछे यही एक कैफियत हो सकती है। किसी बात पर, जिसका मुझे कभी पता नही चल सका, दोनो महाराजाओ की दोस्ती टूट गई। मेरे पिताजी, जो सामती परपरा म पक्के थे, इन बातो मे बहुत कट्टर थे। *उनके लिए बीच की कोई स्थिति नहीं थी, व्यक्ति या तो उनके एकदम निकट हो सकता था या बिल्कुल बाहर।* और इसलिए केवल जोधपुर वालों की *प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होने शीघ्र ही मेरी सगाई एक दूसरी राजकुमारी, रतलाम के* तत्कालीन शासक महाराज सज्जन सिंह जी की लडकी से आनन फानन कर डाली। आधुनिक पाठक यह जानकर हैरान होंगे कि दस से कुछ ही ज्यादा की उम्र मे भी कही कोई गभीर सगाइया की जा सकती हैं, लेकिन वह यह याद रखें कि यह घटना चालीस क दशक के प्रारभ की और एक देशी राज्य की है जब वहा युवराज की सगाई को एक बडा समारोहपूर्ण उत्सव माना जाता था। गुलाब भवन के लान पर पूरे साज सामान के साथ एक दरबार हुआ जिसका वर्णन करते हुए रायटर ने लिखा 'वह रग और भव्यता के ऐसे उत्तम प्रदर्शनो मे स था, जिसके लिए हिंदुस्तान के दरबार प्रसिद्ध हैं। मैं रत्नजटित जरी के कपडे पहने था और मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं इस प्रकार लोगो के बीच मे गया तो मन म एकदम भद्दा महसूस कर रहा था। रतलाम का एक दरबारी विजय बहादुर उनके दल का प्रमुख था। उसने एक गिन्नी, जो मुझे भेंट मे देनी थी, गिरा दी, और धीरे स मेरे कान म कहा कि मैं झूठ मूठ उसके खाली रूमाल मे से गिन्नी लेने का दिखावा करू ताकि इस खामी की किसी को खबर न हो। मैंने बडी सजीदगी के साथ ऐसा ही किया क्योकि मैं उसकी तौहीन नही करना चाहता था।

रतलाम की राजकुमारी चद्रकुवर जो "शानी" कहलाती थी, और उसका छोटा भाई, अपनी एक अभिभाविका, किन्ही मिसेज स्टेवड, के साथ कश्मीर आए और कुछ महीने वहा बिताए। वह बहुत भली मालूम दी लेकिन मैं तब तक उस उम्र को नही पहुचा था कि लडकियो म सही दिलचस्पी ले सकू। कुछ वर्षों बाद, जब मैं अमेरिका म था, हमने एक दूसरे से पत्र-व्यवहार करना शुरू किया। लेकिन परिस्थिति स्पष्टतया बेतुकी थी और इस पहेली की विडबना तब और भी अधिक उलझ गई जब जैसा कि मैं बाद म लिखूगा मेरे पिताजी ने उतने ही भावावेश के साथ यह सगाई भी तोड दी। दोनो म से किसी भी मौके पर मेरी कोई सुनवाई नहीं थी लेकिन यह स्पष्ट है कि इस मामले म जिस ढग से बर्ताव किया गया उसे लज्जास्पद ही कहा जाएगा जो रतलाम परिवार के प्रति—और विशेष रूप स शानी के प्रति, नितान्त अन्यायपूर्ण माना जाएगा और जिससे हम भी कोई सम्मान प्राप्त नही हुआ। मुझे मालूम हुआ कि बाद म शानी ने उत्तर प्रदेश म किसी से शादी की और कई वर्षों बाद एक मोटर दुर्घटना म वह मारी गई।

तीन

कनल हक्सर का एक पोता, विवेक नेहरू, देहरादून के दन स्कूल मे था। यह स्कूल इग्लड के प्रसिद्ध पब्लिक स्कूलो के नमूने पर 1935 मे स्थापित किया गया था और भारत मे अपने ढग का पहला स्कूल था। कनल हक्सर ने मुझे भी वहीं भेजने के लिए पिताजी को राजी कर लिया। इसके पहल हिदुस्तान व देशी नरेशो के राजकुमार या तो इग्लैंड के स्कूलो मे जाया करते थे या फिर अजमेर, राजकाट, इदौर और अय स्थाना मे स्थित उन स्कूला म, जा राजकुमारो के स्कूल या कालेज कहलाते थे। इनम भारतीय अभिजात वर्ग के लडके पढते थे जिह निजी नौकरा व खच के लिए वहुत सारे पैसो की सुविधा सुलभ होती थी। इसलिए मुझे दून स्कूल भेजन का जो निणय लिया गया वह काफी सूझ बूझ का और प्रगतिशील निर्णय था, जिसका मेरे भविष्य जीवन पर दूरगामी प्रभाव पडा, यदि मुझे व चार वष दून मे न विताने पडते, जिह बहुत आराम के वप नही कहा जा सकता, तो कुछ वर्षों बाद सामती जीवन से प्रजातत्री जीवन मे जो मुझे महत्व पूण परिवतन करना पडा, वह मेरे लिए और भी मुश्किल होता। लेकिन उस वक्त आसार कोई खास मनपसद नही लग रहे थे। जब मैं जाने लगा तो मा खूब रोई, यहा तक कि बेहोश होकर अपनी महिला सगिनिया के हाथो मे गिर गई। स्कूल मे जो अज्ञात जीवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा था, उसके प्रति मेरे मन मे आशकाए थी। कनल हक्सर ने मुझे बार बार बताया था, वहा मुझे अपना बिस्तर स्वय सवारना होगा, अपने जूते मे खुद पालिश करनी होगी और पाच रुपये महीने के जेब खच म ही सतुष्ट रहना होगा। प्रारभिक ग्यारह वष सरक्षित और नितान्त सुविधापूण परिस्थिति म बिताने के बाद यह तो साफ ही था कि यह परिवतन सुखद नही होगा। कनल हक्सर स्वय मुझे साथ लेकर देहरादून गए और सितम्बर 1942 मे मैं स्कूल मे भर्ती हो गया। जसी उम्मीद थी, मुझे कश्मीर हाउस मे रखा गया और रोल नम्बर 259 दिया गया।

स्कूल मे पहले कुछ सप्ता मे तो मेरी हालत वडी खराब रही। घर की याद बहुत सताती थी, सोने से पहले हर रात जितना छिपा सकता, उतने छिपे छिपे रोया करता। हर मजिल पर एक दजन कमरे थे, हर कमरे म चार लडके थ और हाउस की दो मजिलो मे से प्रत्येक मजिल पर दो पशाबखाने होत थे। अधेरे म मुझे कभी अच्छा नही लगा और नम चादरा, रूखे नीले कम्बला और नीचे लटकी मच्छरदानियो से तो मुझे नफरत ही हो गई थी। भाग्य से, दूसरे लडको ने

मुझसे शारीरिक दुर्व्यवहार कभी नहीं किया, लेकिन मैं एक राजकुमार हूँ, इस बात ने मुझे उनका कोई विशेष प्रिय बनाया हो ऐसी बात भी नहीं थी। एक बड़ी कठिनाई इसलिए पैदा हो गई कि जिन महीनों में प्रवेश से पहले मैं घर में रहा उन महीनों घर में मुझे जो विशेष शिक्षण दिया गया, उसकी वजह से मेरे हमउम्र लड़कों को आमतौर पर जिस कक्षा में रखा जाता है, उससे मुझे दो कक्षा आगे रखा गया। यद्यपि मेरे माता पिता ने इस मेरी उत्कृष्ट बौद्धिक क्षमता का परिचायक मान कर इसका स्वागत किया लेकिन मुझे इसने एक ऐसी स्थिति में डाल दिया जिसमें मेरी कक्षा के प्रायः सभी लड़के उम्र में मुझसे दो वर्ष बड़े थे, जबकि मेरी उम्र के लड़के मुझसे दो कक्षा नीचे थे। परिणाम यह हुआ कि न तो मैं अपनी कक्षा के सहपाठियों के साथ संगत बैठा पाता और न अपने हमउम्र वर्ग के साथ। इसके साथ ही यह बात भी थी कि मैं थोड़ा सकोची और अनमुखी स्वभाव का था और जिस प्रकार मेरा लालन पालन हुआ, उससे पब्लिक स्कूल की उखाड़ पछाड़ वाली जिन्दगी के लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं था।

खाना जिसमें ज्यादातर ऐसी सब्जियां होतीं जो मुझे खासकर नापसद थीं, जैसे शलगम पत्तागोभी और भिंडी एकदम खाने लायक नहीं होता था। सब मिलाकर इसका असर यह होता कि वस्वानी से छुटकारा ही न मिलता। यह लोकधारणा कि पब्लिक स्कूल सम्पन्न वर्ग के दुलारे लड़कों के ऐशो आराम की जगह हैं एकदम भ्रान्त धारणा है। वस्तुतः, कम से कम जब मैं वहाँ था, तब पूरा वातावरण मशक्कत से भरा और कठोर था। यद्यपि माता पिता को जो पत्र मैं लिखता उनमें यह सावधानी बरतता कि मेरी इस दशा का संकेत उन्हें न मिले (पिता को लिखे गए मेरे पत्रों की फाइलें मुझे उनके देहान्त के बाद प्राप्त हुई), फिर भी मेरे स्मृति पटल पर यह स्पष्ट रूप से अंकित है कि किस प्रकार सत्र के पहले ही दिन से मैं दिन गिनने लगता कि कब उसका अन्त हो और हर बार छुट्टियां खत्म होने पर जब घर से चलता तो मन के भीतर नाउम्मीदी और मजबूरी सी महसूस होती।

स्कूल की दिनचर्या पढ़ाई लिखाई के काम से भी और खेल कूद व शौक शगुल से भी भरी थी। यद्यपि इस दिनचर्या में ऐसी कोई अनहोनी बात नहीं थी, फिर भी मैं उसका यहाँ संक्षेप में इसलिए वर्णन कर देता हूँ क्योंकि मेरे पिछले जीवन से वह सर्वथा विपरीत थी और उसके अनुकूल बनने में मुझे काफी मशक्कत करनी पड़ी। वहाँ जो चौकीदार रहता था वह एक विशाल घंटे को सुबह ठीक छह बजे बजा देता था, जिसकी आवाज पर हम उठ जाना पड़ता था। छोटा हाजरी—एक कप दूध और एक पाव डबलरोटी को लेने के बाद प्रमुख मैदान में कवायद होती। बाकी कवायद तो मैं किसी तरह निपटा लेता लेकिन हफ्ते में एक बार जब खास तौर पर जिमनेजियम जाना पड़ता तो मेरी नानी मर जाती, वहाँ म

जाने क्यो बाक्स पर सामने की कुलाटी खाने मे बिला वजह मुझमे डर समा गया। उसके लिए जब भी मैं बाक्स पर चढता, कि बस बर्फ सा जम जाता और हरचद मुझे कुलाटी खिलाने की कोशिश की जाती, मगर मैं टस से मस न होता। हर बार मैं अपने को उस नामुराद बाक्स पर बैठा हुआ एक भद्दी परिस्थिति मे पाता और मेरी इस उलझन भरी स्थिति पर सारी कक्षा के लडके ठी ठी करते। यहा तक कि हमारे विकट हैड मास्टर मि० ए० ई० फुट के कहने का भी कोई असर नही हुआ, और अपने पूरे स्कूली जीवन मे मैं इस टोटके से पार नही पा सका। कवायद के बाद, जिसे सारा स्कूल एक साथ करता था, लडके अपने अपने हाउसे वापस चले जाते थे। ऐसे चार हाउस थे—कश्मीर, हैदराबाद, जयपुर और टांटा और हमारा अधिकाश समय इन्ही हाउसो म व्यतीत होता था। मुह हाथ धो, कपडे बदल, नाश्ता किया और फिर हम एसेम्बली और कक्षाओ के लिए स्कूल की इमारत को चल दिए, जहा प्रत्येक अध्यापक के लिए एक एक कमरा रखा गया था। सवेरे की कक्षाओ के बाद हम दोपहर के भोजन और थोडे विश्राम के लिए अपने हाउस लौटते और फिर अपराह्न की कक्षाओ मे जाते। चाय के बाद खेल कूद होते, जिनम प्रत्येक लडके को भाग लेना अनिवाय था, फिर स्नान के लिए वापस हाउसा मे, शाम का गृहकाय (किसी विचित्र कारणवश इसे "मन-बहलाव का वक्त" कहा जाता), रात का भोजन और फिर बिस्तर मे।

स्कूल मे पढाई लिखाई का स्तर ऊचा था, लेकिन पढने लिखन मे मैं काफी होशियार था और अपनी छोटी उम्र के बावजूद उस स्तर को पूरे सतोषजनक रूप से प्राप्त करने मे मुझे कठिनाई नही हुई। सीनियर कम्ब्रिज मे, जिसकी परीक्षा के लिए स्कूल हम तैयार करता था, पूरे नौ विषय थे। पढाई का स्तर सामान्य रूप से सतोषजनक था, लेकिन कुछ थोडे से अध्यापको ने मुझे स्थायी रूप से प्रभावित किया। सबसे अधिक स्मरणीय थे मि० वी० एस० चारी (बाद मे भारतीय विदेश सेवा के सिद्वार्थाचारी), जो मेरा सबसे अच्छा विषय अग्रेजी पढाते थे और उसमे उत्कृष्ट थे। उन्होने ही अग्रेजी कविता स मेरा पहला परिचय करवाया और घटा खतम होने की सूचना देने वाली घटी बज जाने पर भी हममे मे कोई भी हिलता नही था, जब तक कि वे स्वय अपना पढाना पूरा नहीं कर लेते थे। लडके सभी अध्यापको से इसी प्रकार अच्छा बर्ताव नहीं करते थे, और इसने मुझे यह बडे काम का पाठ पढाया कि व्यक्ति दूसरा का सम्मान तभी प्राप्त कर सकता है, जब वह स्वय अपनी दक्षता और गौरव बनाए रखे। ज्यादा नरमी और ढुलमुलपने का हरसूरत मे नाजायज फायदा उठाया जाता है खासकर गुडा और आवारा किस्म के लोगा द्वारा।

पब्लिक स्कूलो मे शारीरिक चुस्ती बनाए रखने की एक धुन सवार रहती है। उसी के अनुरूप टीम के और व्यक्तिगत खेलकूदा म भी बढ चढकर महारत

हासिल करने पर काफी जोर दिया जाता था। प्रत्येक खेल में चारों हाउस एक दूसरे से प्रचंड प्रतिस्पर्धा करते और वार्षिक देहरादून जिला खेलकूद प्रतियोगिता में सारा स्कूल भाग लेता। मैं शतरंज को छोड़कर, जिसका कप्तान मैं दो वर्ष तक रहा, स्कूल की किसी और टीम में कभी नहीं रहा। जो खेल मुझे सबसे कम पसंद था, वह थी क्रास कन्ट्री दौड़, एक भयानक मशक्कत, जिसमें स्कूल के चारों ओर टीलों और खाइयों में से हम मीलों दौड़ना पड़ता, बाजू दुखते होते और फेफड़े फटने को होते। स्कूल में बहुत प्रकार के शौक शुगल की भी व्यवस्था थी, जिनमें से हम दो चुनने पड़ते। मैंने संगीत और बढ़ईगीरी चुना, यह दूसरा इसलिए कि और सब भी इसे ही करते जान पड़ते थे। प्रत्येक लड़के का एक रिपोर्ट कार्ड होता था जिसे उसके अध्यापक हर महीने भरते थे। सजा देने का तरीका बड़ा दिलचस्प और असाधारण था। शारीरिक सजा वर्जित थी, और सख्त से सख्त जो सजा दी जाती थी (सचमुच गंभीर अपराधों के लिए स्कूल से निकाले जाने को छोड़कर), वह थी पीला कार्ड। इसके मानी थे कि स्कूल के नोटिस बोर्ड पर घोषणा चिपका दी जाती कि एक महीने तक आप मिठाई की दुकान से वंचित (एक बहुसचित विशेषाधिकार), अगली दो बार कोई सिनेमा नहीं (जहां कभी कभी हम ले जाया जाता था) और इसी तरह और भी। लाल कार्ड या पढ़ाई लिखाई में निरंतर खराब होने पर और उसके साथ साथ कुछ जिम्मेदारियों का बोझ भी डाल दिया जाता। नीला कार्ड हाउस के प्रीफेक्टों द्वारा मामूली कदाचारों के लिए दिया जा सकता था। सारे स्कूली जीवन में मुझे बस एक बार पीला कार्ड मिला और वह भी इसीलिए कि इतिहास की परीक्षा के दौरान मेरे बगल में जो लड़का बैठा था, उसने मेरे गलत उत्तर की नकल कर ली, जिसके परिणामस्वरूप हम दोनों ही पकड़े गए।

हर सत्र के मध्य में तीन दिन का अवकाश मिलता था, जिसमें हम सब दून की तराई में जो बहुत से आकर्षक स्थल हैं, उनमें से अनेकों स्थलों के अभियान को जाते थे—दोईवाला, लच्छीवाला रायवाला। ज्यादा साहसी बड़े लड़के पर्वतारोहण के लिए चले जाते थे, लेकिन मेरी हिम्मत की सीमा तो बस पासवाली नदी में सैर करने जाने या पिकनिक स्थलों में इधर उधर चक्कर लगाने तक ही थी। जब मैं स्कूल गया तो तैरना बिल्कुल नहीं जानता था और पानी और उसमें कूदकर डुबकी लगाने में मुझे डर लगता था जिसे दूर करने में कुछ बरस लगे। एक पब्लिक स्कूल में डरते रहना कोई खास फायदेमंद गुण नहीं माना जाता और जब मैं पीछे देखता हूं तो मुझे यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी वजह से मैं स्कूल का उतना मजा नहीं ले पाया जितना कि ले सकता था। बदकिस्मती से कश्मीर हाउस के जो पहले हाउस मास्टर थे जैक गिब्सन, वे उसी सत्र में नयी की सेवा में चले गए जिसमें मैंने प्रवेश लिया, और मेरे आखिरी सत्र में ही वहां से लौटे।

मि० फुट, जो हेडमास्टर थे, अलग रहते और ऐसे थे कि उनके पास जाने की हिम्मत ही न होती थी और यो भी स्कूल की रचना कुछ इस तरह की थी कि एक लडके के जीवन का वास्तविक केन्द्र हाउस को ही बनाया गया था। नतीजा यह हुआ कि एक तो उम्र की वजह से दोस्तो के एक बडे तबके की सगति के सतोष से मैं वचित रहा और उधर एक उत्कृष्ट हाउस मास्टर के सानिध्य का लाभ भी मुझे नही मिल पाया। तिस पर मेरे पिताजी ने मेरे स्कूल मे रहते किसी का मुझसे भेंट करने की मनाही कर दी थी, और ऐसा कोई भी व्यक्ति नही था जिससे मैं अपनी समस्याओ और दुविधाओ के बारे मे चर्चा कर पाता।

लेकिन स्कूल मे एक सुनहली किरन भी थी—वर्ष मे दो बार दिए जाने वाले अवकाश—ढाई महीने का ग्रीष्मावकाश और छह हफ्तो का शीतावकाश। जब मैं दून गया तो घर का मेरा तामझाम समेट दिया गया, डिग्बी और बिल्टी को अपने अपने घर भेज दिया गया और मैं छुट्टियो के दिन अपने माता पिता के साथ बिताने लगा। 1943 से 1946 के ये वर्ष वे वर्ष थे जब अपने बचपन मे मुझे निकटतम सामान्य पारिवारिक वातावरण प्राप्त हुआ और सयोग से इन्ही वर्षों मे मेरे माता पिता के बीच भी अपेक्षाकृत अच्छे सामजस्य का एक दौर रहा। हमारे ग्रीष्मावकाश श्रीनगर मे गुजरते। वहा हम सब मुख्य महल मे रहते जो गुलाब भवन कहलाता है, और जिसमे अब ओबेराय पैलेस होटल है, यह खूबसूरत दोमजिला इमारत, एक आयताकार जमीन के तीन तरफ बनी हुई है और वहा से डल झील का अनुपम दृश्य दिखाई देता है। वह पिताजी की वास्तुकला मे गहरी अभिरुचि का परिचय देती है। समकालीन अनेक नरेशो के महल लम्बे चौडे, विक्टोरिया के जमाने के दैत्याकार थे। इसके विपरीत हमारे निवास की रेखाए साफ सुथरी और बहिरग सुलझा हुआ था और पृष्ठभूमि के पर्वतो से उसका अच्छा तालमेल बैठता था। जगल इमारत के एकदम पीछे तक चला आया था। पिताजी ने एक बार मुख्य लान पर से ही एक तेंदुए का शिकार किया था, और बीकानेर के स्व०महाराजा शार्दूल सिंह ने तो अपने स्नानागार की खिडकी से ही एक रीछ को मारा था—'एक नग्न शरीर के विरुद्ध दूसरा' बाद के वर्षों मे किसी मित्र ने फब्ती की थी।

सामने के लॉन सावधानी से डाली पत्ती से सवारे गए थे, और रग बिरगे फूलो की क्यारिया कश्मीर की लहराती हवा मे अपने उजले रगो मे खूब चमकती थी। और बीसियो वर्ष बाद आज के मुकाबिले उस वक्त कश्मीर की हवा मे बेशक लहर भी कही ज्यादा थी। महल भी सुरुचिपूर्ण ढग से, यूरोप और चीन की अत्युत्तम कलाकृतियो और प्रत्येक कमरे और दालान मे दीवाल से दीवाल तक बिछे कालीनो से सजाया गया था। एक मिसेज सूदरलैंड थी, जिनके माध्यम से इग्लैंड से बहुत फर्नीचर समय समय पर आया करता था। वे एक अग्रेज की

विधवा थी जो मेरे जन्म के आसपास ऐसे संगीन वक्त म राज्य में पुलिस के इंस्पेक्टर जनरल थे, जब शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व मे मुस्लिम कांग्रेस ने अपना पहला डोगरा विरोधी आंदोलन छेड़ा था। कालीनो के अलावा, जो कश्मीर के बने थे बाकी सारा साज सामान कपडा और फिटिंग यूरोप का बना था। मेरे माता पिता दक्षिणी खड की पहली मजिल के बीच से जुडे पार्श्व भागा म थे, जबकि मेरे पास नीचे की मजिल म कमरा का एक सुन्दर सेट था, जहा से झील का सीधा दृश्य दिखाई देता था। लेकिन अपने घरो क शान्त लालित्य और सौन्दर्य का एहसास जिन्हे मैंने अब तक साधारण समझ रखा था, मुझे तब होने लगा जब मैंने दून स्कूल क चारो ओर का मनहूस वातावरण देखा।

अब यह स्पष्ट हो गया कि मेरे पिताजी भी मेरी छुट्टियो का इंतजार करते थ। हम मछली पकडने बाहर का सैर करते, शिकार के साथ-साथ पिकनिक के लिए डचिगाम जाते, और सामने के लान म किसी चिनार के पेड क नीचे बठकर खूब रमी, चौसर और लूडो खेलते। उस समय प्राय विक्टर रोजेंथल और स्टाइलमन परिवार भी श्रीनगर म रहते, जिससे हमारी मौज म चार चाद लग जाते। घटा हम लच और डिनर पार्टिया की सूचिया बनाने मे, कौन कहा बैठेगा, क्या बनेगा इसी म गुजार देते। मा और पिताजी दोना ही बढिया खाना बनाना जानते थ और हफ्ते म कम स कम एक बार खाना बनाने की पार्टी हुआ करती थी। हम सब बाहर लॉन पर या मुख्य खड के बीच वाले संगमरमर के द्वार मडल के नीचे बठ जाते और तब खाना बनाना शुरू होता। वर्दी पहने पीला साफा बाधे नौकर एसबेस्टस क करीब छह इच ऊचे और पाच इच लम्बे, तीन इच चौडे छोटे स्टड ले आते। इन पर कोयले की अगीठिया रख दी जाती जिन पर, पकाई जाने वाली चीज के अनुसार छोटे या बडे चाँदी के पतीले रखे जाते। सभी उपादान सही-सही तौलकर और करीने से सजाकर मुडन वाली टेबुलो पर लाकर रखे जाते। मा और पिताजी को मिलाकर तीन या चार लोग खाना बनाने म लग जाते और बाकी लोग देखते और गप शप करते। मुख्य चखने वाले थे वजीर तेज राम, जो पिताजी से उम्र म कुछ ही बडे और मजे हुए दरबारी थे और वे और फकीर सिह महन्त म डिनर क नियमित मेहमान थे।

छोटे गिलासो म व्हिस्की दी जाती, लेकिन तीन दोहरे पेगो का जो पिताजी का नियमित कोटा था, उससे ज्यादा लेते मैंने उन्हे शायद ही कभी देखा हो। यह तब था जब वे थोडा ढीले होकर आराम करते, और यदि कोई स्टाफ की समस्या नही लगी हो गई तो वातावरण अपेक्षाकृत तनाव से मुक्त रहता। खाने, साथ साथ पीने, साथ-साथ गपशप की ये पार्टिया घटो चलती और डिनर तब तक नही परोसा जाता जब तक रात क करीब ग्यारह न बज जाते। मैं पढ़ने दो घटे बैठता, फिर नौ बजे एक ट्रे म मेरा डिनर लाया जाता और मैं खा लेता, जबकि और लोग

पार्टी चलाते रहते। डिनर के बाद और कुछ मिनटों तक मुझे वहा बने रहने की इजाजत थी, और तब साढे नौ बजे मैं माता पिता के चरण छूकर और बाकी टोली को नमस्कार करके निकल आता। मैं अपने कमरे म चला जाता। उधर लान के पार पार्टी की धीमी आवाज हवा म तैरती और मैं सतोष के साथ बिस्तर पर सो जाता।

मेरे हम-उम्र दोस्त तो कोई थे नही, लेकिन समय समय पर मेरे ममेरे भाई-बहिनो को आकर मेरे साथ खेलने की इजाजत थी। लडकियो से मैं मा के प्रकोष्ठा म मिलता, जबकि लडके मेरे कमरे मे आ जाते या फिर हम बगीचे मे खेलते। सबसे बडा लडका था नसीब चद जो मुझसे कुछ ही वप बडा था, मेरा बडा प्रिय था और मेरे लिए सच्चे दोस्त के समान था।

गर्मी की छुट्टियो मे कभी कभी सरकारी समारोह भी हुआ करते, जिनसे पिताजी को चिढ थी। वे बडे विचित्र व्यक्ति थे, कई मानो मे कुशाग्र बुद्धि और गुण-सपन्न लेकिन सावजनिक मामलो मे शरमाते और घबरात। वास्तव म वे प्राय अपने दोस्तो से कहा करते कि वे तो बस मेरे इक्कीस वप के होने की राह देख रहे है, ताकि राज्य की जिम्मेदारियो को सौंप सकें और तब अपनी मनचाही कर सकें —शिकार, मछली पकडना, खाना बनाना और इमारतें बनवाना। यह अजीब विडम्बना है कि वह सचमुच इक्कीस वप की ही उम्र थी, जब मैंने उनसे उनका जो भी अधिकार बाकी था, ग्रहण किया, लेकिन ऐसी परिस्थितियो मे, जिनकी उस समय कल्पना भी नही की जा सकती थी।

मेरे पिताजी ने सावजनिक जीवन के लिए मुझे प्रशिक्षण देना जल्दी ही प्रारभ कर दिया था। मेरा पहला सावजनिक भाषण ग्यारह वर्ष की उम्र मे हुआ था, जब मैंने श्रीनगर में वार्षिक प्रदशनी का उदघाटन किया, जो व्यवसाय और उद्योग मेला, मनोरजन और सामान्य पव का सम्मिश्रण थी और एक वार्षिक समारोह बन गई थी। उदघाटन मेरे ग्रीष्मावकाश के दौरान हुआ था, इसलिए उदघाटन करना मेरे लिए एक नियमित घटना बन गई थी। मुझे ठीक याद है, जब मैं अपना पहला भाषण पढ रहा था, अदर मेरा दिल धक धक कर रहा था, लेकिन बाहर से जिस किसी तरह मैं यह दिखाने की कोशिश करता रहा कि मैं खुशी से चूर हू। भाषण हो जाने पर कर्नल हुक्सर मुझे डचिगाम ले गये, जहा पिताजी गव के साथ मेरा इतजार कर रहे थे। वे बहुत दिखावा करने वाले व्यक्ति नही थे, लेकिन किसी एक क्षण म उनकी भावनाओ को आकना मुश्किल भी नही था। कुछ वर्षों बाद, 1945 मे गोपाल स्वामी आयगर ने इस घटना का स्मरण करते हुए मा को एक पत्र मे लिखा था "टाइगर तो अब एक अच्छा खासा नौजवान हो गया होगा मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं राज्य मे था और उसने अपना पहला सावजनिक भाषण दिया था, सही साफ उच्चारण और जिस आत्म विश्वास के

साथ वह विशाल श्रोता समूह के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, उसके लिए उसको कितनी अधिक प्रशसा की गई थी !"

ग्रीष्मावकाश श्रीनगर मे व्यतीत किए जाते, जबकि शीतकालीन छुट्टिया बम्बई म बिताई जाती, जहा माता पिता वप म कई महीनो के लिये जाया करते थे। बम्बई म हमारा सारा जीवन घुडदौड के इद गिद घूमा करता। पिताजी वर्षों घुडदौड के मदान के एक प्रमुख सरक्षक रहे है और उनके पास दौड के उत्तम घोडो की एक शृखला रही है। उनके घोडा के अस्तबल रसकास के पास महालक्ष्मी क्षेत्र म थे और हर शाम पिताजी अस्तबलो को जाते और घोडो को अहाते के भीतर चक्कर पर चक्कर लगाते निरखा करते। कभी चौकडी भरता तो कभी एकाएकी तेज दौड रेस की छोटी किताबें, तो कभी बडी वाली कभी घुडसवारो से, तो कभी प्रशिक्षको से गप्प मारना, विरोधी स्वामियो के प्रति हल्का सा ढका मुदा विद्वेष और अततोगत्वा शनिवार या रविवार को घुडदौड का दिन। ऐसा लगता कि जैसे सारा सप्ताह इसी एक घटना की तैयारी के लिए था। पिताजी के दो घोडे तो दौड म हर हालात म शामिल होते ही थे और अक्सर चार चार भी हो जाते। उनके सिदूरी और सुनहले रग बम्बई म घुडदौड के हर शौकीन की जुबान पर थे, और वर्षों तक व बहुत सी बडी से बडी ख्यातनामा घुडदौडो को जीतकर एक अगुआ मालिक बन रहे। व घोडो के बहुत अच्छे पारखी थे और बम्बई म घोडो की वार्षिक बिक्री के वक्त जवान घोडो को छाटने म काफी मेहनत करते थे। इसी की तत्सगत परिणति स्वरूप उन्होने जम्मू के कुछ मील बाहर नागबनी म अपना एक अश्वजनन क्षेत्र शुरू किया जहा मृत्यु के समय उनके पास देश के कई उत्कृष्ठ साड घोडे और बच्चे देने वाली घोडिया इकट्ठी हो गई थी। यह स्पष्ट था कि पिताजी घुडदौड म राज्य के शासन की बनिस्बत कही ज्यादा खुश थे, जिस काम को उन्होने अधिकतर सावधानी से प्राय जम्मू और कश्मीर के बाहर म चुने गये अपने प्रधानमत्री और एक छोटी मत्रिपरिषद् के जिम्मे छोड रखा था। वास्तव म, यद्यपि उन्हे सर्वाधिकार प्राप्त था, लेकिन उनका अपना आचार कुछ कुछ एक सवधानिक नरेश जसा ही रहा और उन्होने अपने मत्रिपरिषद् के शासन म शायद ही कभी हस्तक्षेप किया हो। इस विषय म व भारत के अपने अधिकाश समकालीन नरेशो स काफी आगे थे।

मेरे लिए तो छुट्टिया एक ऐसी घटना थी जिसका मैं बडी उत्सुकता से इतजार करता। स्कूल के सत्रो के विपरीत, जो खत्म होने को ही न आते, व बडी तेजी से फ्राक मारते बीत जाती। मैंने काफी पहले यह सीख लिया था कि समय हर समय समान गति से नही चलता कम से कम एक स्कूली लडके के लिए जिसे घर की याद सताती हो। दरअसल आमतौर पर स्कूल म होना मुझे नापसद था लेकिन यह मुझे बिल्कुल साफ नजर आता है कि अगर मैं घर पर ही रह जाता, बाकि

उन सामत सस्थाओ मे से किसी मे जाता, तो शायद बेहद बिगड जाता और उन चुनौतियो के मुकाबिल के लिये कतई नाकाबिल साबित होता, जिनसे मैं इस वक्त बेखबर था, लेकिन जिनका सामना मुझे कुछ ही साल बाद करना था।

मेरा एक ही गिला है, और वो ये कि मेरे पिताजी की सख्ती की वजह से और एक उत्कृष्ठ हाउसमास्टर न होने से मेरे पास ऐसा कोई सशक्त व्यक्ति नही था जिस पर उन सजनशील वर्षों मे मैं निभर कर सकता, एसा कोई, जो मेरी उस बचैन असुरक्षा की आतरिक रिक्ति को, जिसने मुझे परेशान कर रखा था, भर सकता। मुझे याद है कि किस प्रकार एक बार पडित रामचद्र काक ने (जो कर्नल हक्सर के बाद मेरे अभिभावक नियुक्त हुए) यो ही टिप्पणी कर दी थी कि उन्हे युवराज के रूप मे मेरे भविष्य के प्रति बडी आशाए और विश्वास है और उससे महीनो मुझे कितना अधिक सबल मिला था। पडित काक कई मायनो मे एक उल्लेखनीय आदमी थे, गर्वीले, और जिन सिद्धातो पर उनका विश्वास था उनके अनुपालन म कभी न झुकने वाले। व मुझे बताते कि वह सर्वोच्च गुण जिसका व्यक्ति को अपने मे विकास करना चाहिए, वह है "सतुलन"--किसी भी परिस्थिति मे, वह चाहे कितनी ही अस्थिर करने वाली क्यो न हो, शात निर्विकार भाव बनाए रखना। और कुछ ही वर्षों बाद उन्हें जिस सकट का सामना करना पडा उसमे उन्होने स्वय उसका प्रदशन करके दिखा दिया।

इसी बीच मैंने अपने दूसरे दशक मे प्रवेश कर लिया था और मानव शरीर ने अपना शाश्वत रहस्य प्रकट करना प्रारभ कर दिया था, जसा वह चिरतजन काल से करता आया है, वही, किन्तु सतत नूतन। वे एक नवयुवक के लिए विस्मयकारी वष होते है, पौरुष की प्रथम प्रयोगात्मक परीक्षा, मानव शरीर के अब तक के अकल्पनीय आयामो की स्तब्धकारी खोज। इस प्रकार की जागृति के लिए कश्मीर एक अनुपम स्थल है, ठडी लहराती हवा, दूर बत्तखो की सुमधुर कूक, हल्के नीले आकाश को चीरकर विशाल चिनार वक्षो के ऊचे उठे हुए शीश और एक नवयुवक पुरुषत्व के सोपान पर—आश्चयचकित, आतकित, आतुर।

जब मैं बहुत छोटा सा था तभी से मैंने पढने की आदत बना ली थी, और जब तक मैं स्कूल की पढाई खत्म करू तब तक तो किताबो का कीडा ही बन गया था। उस वक्त बरोनेस आर्जी के रोमाचकारी स्कार्लेट पिम्पर्नेल उपन्यास और पी० जी० वोडहाउस की उल्लासभरी जीवन्स कहानिया, मेरी दिलपसद थी। इसके अलावा डिकिन्स, स्कॉट, हार्डी और इग्लैंड के अन्य उत्कृष्ट ग्रन्थ, फ्रान्स के मोपासा, ड्यूमा और विक्टर ह्यूगो, रूस के टाल्स्टाय, चेखाव और गोर्की। कविता मुझे हमेशा म पसद रही है और एक वक्त ऐसा था जब पालग्रेव की 'गोल्डन ट्रेजरी से मुझे दर्जनो कविताए मुहजबानी याद थी। मुझे जल्दी ही पता चल गया कि मरी

स्मरण शक्ति और बहुत से लडकों की बनिस्बत ज्यादा तेज है, विशेषकर कविता के मामले मे। मैं समझता हू इसकी वजह कविता की लयकारी है, जिसका सगीत से भी बहुत नजदीक का सबध है। मेरी अभिनय मे भी रुचि थी, और हाउस के और स्कूल के नाटको मे मैं सक्रिय भाग लिया करता था। मेरी एक बडी उपलब्धि थी जब मैंने 'ट्वल्थ नाइट' की ओलिविया का पाट अदा किया। खुशी इस बात की है कि यह मैंने आवाज फटने के काफी पहले ही कर लिया था। बाद मे मैं उन नाटको का निर्देशन करने लगा जिनमे मुझसे छोटे लडके हिस्सा लेते थे।

उस समय फिल्मे भी मेरे जीवन का महत्वपूर्ण अग थी। ऐसे प्राच्य कल्पना चित्रो के अलावा जिनमे जान हाल, मारिया मॉटेज और साबू थे, कुछ उल्लेखनीय भारतीय फिल्मे भी थी जैसे विजय भट्ट की प्रसिद्ध ऐतिहासिक फिल्मे 'भरत मिलाप' और 'राम राज्य" जिन्होने एक समूची पीढी के लिए रामायण को पुनर्जीवित कर दिया 'सिकन्दर' जिसमे सोहराब मोदी, पृथ्वीराज थे, "पुकार" जिसमे नसीम और सोहराब मोदी थे, "शकुतला' जिसमे जयश्री और चद्रमोहन थे, 'राजपूतानी' जिसमे बिपिन गुप्ता ने राणा प्रताप का शानदार चित्रण किया, 'चन्द्रगुप्त' जिसमे चाणक्य की अविस्मरणीय भूमिका मे नायमपल्ली था और बहुत से और भी। अति सवेदनशील युवा मस्तिष्को पर फिल्मो के चिरस्थायी प्रभाव को वयस्क लोगो द्वारा जितना दिया जाना चाहिए उससे प्राय बहुत कम महत्व दिया जाता है जिसके अनिष्टकारी परिणाम अपनी गवाही आप दे रहे हैं।

कुछ थोडी कमजोरियो के बावजूद मैं अपनी पढाई मे काफी अच्छी सफलता प्राप्त कर सका और जैसे जैसे प्रमुख परीक्षा पास आती गई, मैं उत्तरोत्तर अच्छा होता गया और अधिक आत्म विश्वास प्राप्त करता चला गया। मैं सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा मे दिसबर 1945 मे बठा, जिस वर्ष द्वितीय विश्व महायुद्ध समाप्त हुआ। केन्द्र हमारे स्कूल मे ही था, लेकिन निरीक्षक बाहर से आये थे। उन दिनो हिन्दी को छोडकर बाकी सब परचे इग्लैड मे ही तैयार किए जाते थे और कापिया भी वही जाची जाती थी। इस वक्त तक पहले जो मुझ मे अटकाव थे उनमे से बहुत से दूर हो गए थे और सचमुच स्कूली जीवन का वास्तविक आनद मुझे पहली बार प्राप्त होना शुरू हुआ था। उस समय दून स्कूल मे एक और आगे की परीक्षा भी दिलाई जाती थी, यू० पी० बोर्ड आफ एजूकेशन की इटरमीडिएट परीक्षा। इसके दो ग्रुप थे, इटर साइस और इटर आर्ट स और जो लडके ज्यादा तेज थे वे प्राय अनिवार्य रूप से साइस चुनते थे। लेकिन मुझे यह स्पष्ट था कि सार्वजनिक जीवन के लिए जिसमे मेरा जाना सुनिश्चित जाना पडता था आर्ट स जिसमे अर्थशास्त्र नागरिक शास्त्र और इतिहास सम्मिलित थे अधिक उपयुक्त था। इसलिए सीनियर कैम्ब्रिज के बाद जब मैं 1946 के पहले सत्र के लिए लौटा

और मैंने इटरआट स मे प्रवेश लिया तो मुझे एकबारगी ऐसा लगा कि मैं तो सारी क्लास से बासो उमर हू, क्योंकि सभी तेज लडको ने, जैसा पहले ही सोचा गया था, साइन्स चुन ली थी। सीनियर कैम्ब्रिज के परिणाम उस सत्र के दौरान ही घोषित किए गए और मैंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। मैंने घर तार भेजा – मेरा पहला तार—और शीघ्र ही बधाई के तारो के ढेर लग गए, न केवल पिताजी के, वरन उनके अनेक स्वामिभक्त प्रजाजनो के भेजे हुए। स्कूल के कार्यालय मे एक साथ इतने तार कभी नही आए थे और इसने काफी सरगर्मी पदा कर दी। मैं स्वीकार करता हू कि एक तरह से मैं स्वय अपने से खुश था, विशेषकर इसलिए कि उम्र के दो वष के व्यवधान को मैं तोड सका और अपनी क्लास के उम्र म बडे लडको से बेहतर सावित हो सका।

इस उपमहाद्वीप म परिवतन की जो बयार बह रही थी, उससे हमारे स्कूल को एक हद तक विलग रखा गया था। उसकी वजह से करीब करीब अपने आखिरी वर्ष तक हमे उन राजनतिक गतिविधियो की शायद ही कोई खबर रही हो, जो जोर पकडती जा रही थी और सालभर मे ही एक ऐसे भारत का सृजन करने जा रही थी, जो आजाद तो होगा पर दो टुकडो मे बटा हुआ। यद्यपि पहले हमन क्रिप्स मिशन क बारे मे पढा और फिर केबिनेट मिशन के बारे मे, जिसका नेतृत्व एक योग्य सज्जन द्वारा किया गया था, जिसे लाड 'पैथेटिक" (दयनीय) लारेन्स कहने मे हमे बडा मजा आता था, लेकिन हमे उन जबदस्त ताकतो की कोई वास्तविक जानकारी नही थी जो आधुनिक इतिहास में एक नय युग का सजन कर रही थी। हमारी सहानुभूति, स्वभावतया ही गाधीजी के साथ थी, लेकिन स्कूल म जो लडके थे वे अधिकतर हिन्दुस्तानी सरकारी कमचारियो या सेना क अफसरो या रईस व्यापारियो के बच्चे थे, जिनसे यह आशा नही की जा सकती थी कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेंगे।

करीब करीब ठीक इसी वक्त मुझे जवाहरलाल नेहरू की 'आत्मकथा मिली। मैं रोमाचित हो उठा। यह देखो, एक बुद्धिमान और सवेदनशील व्यक्ति है जो ऐशो-आराम के बीच पैदा हुआ, लेकिन जिसन लाखा-करोडो की आशाआ-आकाक्षाओ के साथ अपने को वेइतिहा जोड लिया। उस खास मौके पर उस किताब को पढना वस्तुत एक रहस्य का उद्घाटन था। उसन पहली बार मुझ एतिहासिक शक्तियो की ताकत का, परिवतन की अपरिहार्यता का और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की गरिमा का बोध कराया। उसके तत्काल बाद ही मैंने उनकी "डिस्कवरी आफ इडिया' (भारत की खोज) भी पढ डाली जिसन मेरे सामन एक नए मानसिक ससार के कपाट खोल दिए। यो मुझे अपने भारतीय होने का एक सामान्य गव तो था ही, लेकिन अपने इतिहास का इतना विशद और वभव सपन्न पटल मेरी आखो के आगे पहले कभी नही खुला था, और न ही मैंने उस

और मैंने इंटर आर्ट स मे प्रवेश लिया तो मुझे एकबारगी ऐसा लगा कि मैं तो सारी क्लास से बासो उमर हू, क्योंकि सभी तेज लडको ने, जैसा पहले ही सोचा गया था, साइ स चुन ली थी। सीनियर कैम्ब्रिज के परिणाम उस सत्र के दौरान ही घोषित किए गए और मैंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। मैंने घर तार भेजा – मेरा पहला तार—और शीघ्र ही बधाई के तारो के ढेर लग गए, न केवल पिताजी के, वरन उनके अनेक स्वामिभक्त प्रजाजनो के भेजे हुए। स्कूल के कार्यालय मे एक साथ इतने तार कभी नही आए थे और इसने काफी सरगर्मी पदा कर दी। मैं स्वीकार करता हू कि एक तरह से मैं स्वय अपने से खुश था, विशेषकर इसलिए कि उम्र के दो वष के व्यवधान को मैं तोड सका और अपनी क्लास के उम्र मे बडे लडको से बेहतर सावित हो सका।

इस उपमहाद्वीप म परिवतन की जो बयार बह रही थी, उससे हमारे स्कूल को एक हद तक विलग रखा गया था। उसकी वजह से करीब-करीब अपने आखिरी वर्ष तक हमे उन राजनैतिक गतिविधियो की शायद ही कोई खबर रही हो, जो जोर पकडती जा रही थी और सालभर मे ही एक ऐसे भारत का सृजन करने जा रही थी, जो आजाद तो होगा पर दो टुकडा मे बटा हुआ। यद्यपि पहले हमने क्रिप्स मिशन के बारे मे पढा और फिर केबिनेट मिशन के बारे म, जिसका नेतृत्व एक योग्य सज्जन द्वारा किया गया था, जिसे लार्ड "पैथेटिक' (दयनीय) लारे स कहने मे हमे बडा मजा आता था, लेकिन हमे उन जबदस्त ताकतो की कोई वास्तविक जानकारी नही थी जो आधुनिक इतिहास मैं एक नये युग का सजन कर रही थी। हमारी सहानुभूति, स्वभावतया ही गाधीजी के साथ थी, लेकिन स्कूल मे जो लडके थे वे अधिकतर हिदुस्तानी सरकारी कमचारियो या सेना के अफसरा या रईस व्यापारियो के बच्चे थे, जिनसे यह आशा नही की जा सकती थी कि वे राष्ट्रीय आदोलन मे सक्रिय भाग लेंग।

करीब करीब ठीक इसी वक्त मुझे जवाहरलाल नेहरू की 'आत्मकथा' मिली। मैं रोमाचित हो उठा। यह देखो, एक बुद्धिमान और सवेदनशील व्यक्ति है जो ऐशो आराम के बीच पैदा हुआ, लेकिन जिसने लाखो-करोडो की आशाओ-आका क्षाओ के साथ अपने को वेइतिहा जोड लिया। उस खास मौके पर उस किताब को पढना वस्तुत एक रहस्य का उदघाटन था। उसन पहली बार मुझे ऐतिहासिक शक्तियो की ताकत का, परिवतन की अपरिहार्यता का और राष्ट्रीय मुक्ति-आदोलन की गरिमा का बोध कराया। उसके तत्काल बाद ही मैंने उनकी "डिस्कवरी आफ इडिया" (भारत की खोज) भी पढ डाली जिसन मरे सामने एक नए मानसिक ससार के कपाट खोल दिए। यो मुझे अपन भारतीय हाने का एक सामान्य गव तो था ही, लेकिन अपने इतिहास का इतना विशद और वैभव सपन पटल मेरी आखा के आगे पहले कभी नही खुला था, और न ही मैंने इस

स्मरण शक्ति और बहुत से लडको की बनिस्बत ज्यादा तेज है, विशेषकर कविता के मामले म। मैं समझता हू इसकी वजह कविता की लयकारी है, जिसका सगीत से भी बहुत नजदीक का सबध है। मेरी अभिनय मे भी रुचि थी, और हाउस के और स्कूल के नाटको म मैं सक्रिय भाग लिया करता था। मेरी एक बडी उपलब्धि थी जब मैंने 'ट्वेल्थ नाइट' की ओलिविया का पाट अदा किया। खुशी इस बात की है कि यह मैंने आवाज फटने के काफी पहले ही कर लिया था। बाद मे मैं उन नाटको का निर्देशन करने लगा, जिनम मुझसे छोटे लडके हिस्सा लेते थे।

उस समय फिल्म भी मेरे जीवन का महत्वपूर्ण अग थी। ऐसे प्राच्य कल्पना चित्रो के अलावा, जिनमे जान हाल, मारिया मान्टेज और साबू थे, कुछ उल्लेखनीय भारतीय फिल्म भी थी, जसे विजय भट्ट की प्रसिद्ध ऐतिहासिक फिल्में 'भरत मिलाप' और "राम राज्य" जिन्होने एक समूची पीढी के लिए रामायण को पुनर्जीवित कर दिया, 'सिकन्दर' जिसम सोहराब मोदी पृथ्वीराज थे, पुकार" जिसमे नसीम और सोहराब मोदी थे, "शकुन्तला' जिसमे जयश्री और चद्रमोहन थे, "राजपूतानी" जिसम विपिन गुप्ता ने राणा प्रताप का शानदार चित्रण किया, 'चद्रगुप्त' जिसमे चाणक्य की अविस्मरणीय भूमिका मे नायमपल्ली था और बहुत से और भी। अति सवेदनशील युवा मस्तिष्का पर फिल्मो के चिर स्थायी प्रभाव का वयस्क लोगा द्वारा जितना दिया जाना चाहिए उससे प्राय बहुत कम महत्व दिया जाता है जिसके अनिष्टकारी परिणाम अपनी गवाही आप दे रहे है।

कुछ थोडी कमजोरियो के बावजूद मैं अपनी पढाई म काफी अच्छी सफलता प्राप्त कर सका और जसे जसे प्रमुख परीक्षा पास आती गई, मैं उत्तरोत्तर अच्छा होता गया और अधिक आत्म विश्वास प्राप्त करता चला गया। मैं सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा मे दिसबर 1945 मे बठा, जिस वष द्वितीय विश्व महायुद्ध समाप्त हुआ। केन्द्र हमारे स्कूल म ही था, लेकिन निरीक्षक बाहर से आये थे। उन दिनो हिन्दी को छोडकर बाकी सब परचे इग्लड मे ही तैयार किए जाते थे और कापिया भी वही जाची जाती थी। इस वक्त तक पहले जो मुझ म अटकाव थे उनम से बहुत से दूर हो गए थे और सचमुच स्कूली जीवन का वास्तविक आनद मुझे पहली बार प्राप्त होना शुरू हुआ था। उस समय दून स्कूल म एक और आगे की परीक्षा भी दिलाई जाती थी, यू० पी० बोर्ड आफ एजूकेशन की इटरमीडिएट परीक्षा। इसके दो खड थे, इटर साइन्स और इटर आर्ट्स और जो लडके ज्यादा तेज थे व प्राय अनिवाय रूप से साइन्स चुनते थ। लेकिन मुझे यह स्पष्ट था कि सावजनिक जीवन के लिए जिसम मेरा जाना सुनिश्चित जाना पडता था आर्ट्स म जिसम अथशास्त्र नागरिक शास्त्र और इतिहास सम्मिलित थ अधिक उपयुक्त था। इसलिए सीनियर कम्ब्रिज के बाद जब मैं 1946 के पहले सत्र के लिए लौटा

और मैंने इटरआट स मे प्रवेश लिया तो मुझे एकबारगी ऐसा लगा कि मैं तो सारी क्लास से वासो उमर हू, क्योकि सभी तेज लडको ने, जैसा पहले ही सोचा गया था, साइ स चुन ली थी। सीनियर कैम्ब्रिज के परिणाम उस सत्र के दौरान ही घोषित किए गए और मैंने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। मैंने घर तार भेजा – मेरा पहला तार—और शीघ्र ही बधाई के तारो के ढेर लग गए, न केवल पिताजी के, वरन् उनके अनेक स्वामिभक्त प्रजाजनो के भेजे हुए। स्कूल के कार्यालय में एक साथ इतने तार कभी न ी आए थे और इसने काफी सरगर्मी पैदा कर दी। मैं स्वीकार करता हू कि एक तरह से मैं स्वय अपने से खुश था, विशेषकर इसलिए कि उम्र के दो वष के व्यवधान को मैं तोड सका और अपनी क्लास के उम्र मे बडे लडको से बहतर साबित हो सका।

इस उपमहाद्वीप म परिवतन की जो बयार बह रही थी, उससे हमारे स्कूल को एक हद तक विलग रखा गया था। उसकी वजह से करीब-करीब अपने आखिरी वष तक हमे उन राजनैतिक गतिविधियो की शायद ही कोई खबर रही हो, जो जोर पकडती जा रही थी और सालभर मे ही एक ऐसे भारत का सजन करने जा रही थी, जो आजाद तो होगा पर दो टुकडो मे बटा हुआ। यद्यपि पहले हमने क्रिप्स मिशन के बारे मे पढा और फिर केबिनेट मिशन के बारे मे जिसका नेतृत्व एक योग्य सज्जन द्वारा किया गया था, जिसे लाड "पथेटिक" (दयनीय) लारे स कहने मे हमे बडा मजा आता था, लेकिन हमे उन जबर्दस्त त कतो की कोई वास्तविक जानकारी नही थी जो आधुनिक इतिहास मैं एक नये युग का सजन कर रही थो। हमारी सहानुभूति, स्वभावतया ही गाधीजी के साथ थी, लेकिन स्कूल मे जो लडके थे वे अधिकतर हि दुस्तानी सरकारी कमचारियो या सेना के अफसरो या रईस ्यापारियो के बच्चे थे, जिनसे यह आशा नही की जा सकती थी कि वे राष्ट्रीय आ दोलन मे सक्रिय भाग लेंगे।

करीब करीब ठीक इसी वक्त मुझे जवाहरलाल नेहरू की 'आ मकथा मिली। मैं रोमाचित हो उठा। यह देखो, एक बुद्धिमान और सवेदनशील ्यक्ति है जो ऐशो-आराम के बीच पदा हुआ, लेकिन जिसने लाखो-करोडो की आशाओ-आका-क्षाओ के साथ अपने को वेइतिहा जोड लिया। उस खास मौके पर उस किताब को पढना वस्तुत एक रहस्य का उदघाटन था। उसने पहली बार मुझे ऐतिहासिक शक्तियो की ताकत का, परिवतन की अपरिहायता का और राष्ट्रीय मुक्ति-आ दोलन को गरिमा का बोध कराया। उसके तत्काल बाद ही मैंन उनकी 'डिस्कवरी आफ इडिया" (भारत की खोज) भी पढ डाली जिसन मेरे सामने एक नए मानसिक ससार के कपाट खोल दिए। यो मुझे अपन भारतीय हाने का एक सामा य गर्व तो था हो, लेकिन अपने इतिहास का इतना विन और वभव सप न पटल मेरी आखो के आगे पहले कभी नही खुला था, और न ही मैंन उस

समृद्ध विविधता और प्राय विलक्षण एकता को कभी सराहा था, जो मानव इतिहास के उषाकाल म ही भारत की विशिष्टता रही है। जवाहरलाल जी की रेना पुस्तको ने मुझ एक नइ चेतना दी, और सामतशाही के विरुद्ध पहले से ही मेरे मन मे जो वितष्णा बढती जा रही थी उसे और भी पुष्ट कर दिया। मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि पुरानी सामतशाही व्यवस्था अब शीघ्र ही ढहने को है और हर हालत मे पिताजी का जो जीवन था, वह मेरे लिए नही है। उसका विकल्प क्या होगा यह मुझे ज्ञात नही था, लेकिन आतरिक रूप से उस परिवतन के लिए मैं तयार था।

चार

तूफान दरअसल करीब-करीब खत्म होने को था। सदियो के पाश्चात्य उपनिवेशवाद का अब अत होने को था, और अब तक जो लोग पराधीन रहे उनका स्वतत्रता आदोलन, जो मानव इतिहास के लम्बे पटल पर अपने ढग का सबसे बडा आन्दोलन था और जिसका अग्रणी भारत था, उसकी परिणति विजय म होने जा रही थी। हमारी विशाल और पुरातन भूमि म गहरे कही हलचल हो रही थी। भारत फिर उठ रहा था, नवीकरण का चमत्कार फिर से घटित होने को तयार था। मानव द्वारा लडे गए युद्धो मे सबसे विनाशकारी युद्ध अभी-अभी समाप्त ही हुआ था। मेरे पिताजी विन्स्टन चर्चिल की युद्ध परिषद के सदस्य के रूप मे युद्ध के दौरान इग्लैंड गए थे। यह स्पष्टतया उन विशद प्रहसनो मे से एक था, जिसमे साम्राज्यवादी अग्रेज दक्ष थे और जिनका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के सदस्यो को राज्य के मामलो मे निणयो को प्रभावित करने का कोई वास्तविक अधिकार दिए बिना प्रतीकात्मक रूप से कुछ कहने का मौका भर देना था। वे लदन मे उस समय थे जब जर्मनो द्वारा भीषण बमबारी की गई थी। उन्होने हमे बताया था कि हवाई हमले के सायरन बजने पर भी कोई भी व्यक्ति थियेटर की अपनी सीट छोडकर बचाव की जगह मे नही जाता था। इसके पहले वे मध्य पूव मे राज्य की सेनाओ से मिलने गए थे और लौटने पर लोगो ने उनका भव्य स्वागत किया था।

मा भी युद्ध के दिनो मे बहुत क्रियाशील रहती थी। उन्होंने एक युद्ध सहायता समिति बनाई थी और वे तथा श्रीनगर की प्रमुख महिलाए बुनाई, सिलाई, युद्ध क्षेत्रो मे रहनेवाले सैनिको के लिए अचार तयार करने के लिए नियमित रूप से मिला करती थी। वस्तुत उन्होने इतना अच्छा काम किया था कि उन्हें "द क्राउन आफ इडिया" से पुरस्कृत किया गया, एक ऐसा अलकार जो विशिष्ट महिलाओ के लिए ही सुरक्षित था और पहले दो या तीन भारतीयो को ही मिला था। उस सारे मामले से ही वे स्वभावतया रोमाचित हो उठी थी, विशेषकर इसलिए कि उसी वष की शाही सम्मान सूची म पिताजी को भी एक अलकरण मिला था जो आधिकारिक अनुक्रम मे थोडा नीचे था। सामाजिक प्रथाओ के सबध मे भी उनके कुछ विचार अत्यधिक प्रगतिशील थे। 1947 मे उन्होने नवरात्र के पावन-पव पर जिन नौ कन्याओ की पूजा की जाती है, उनमे हरिजन कन्याओ को, जिन्ह उस जमाने मे अस्पृश्य माना जाता था, सम्मिलित करके इतिहास सजित कर दिया था।

इटरमीडिएट क्लास मे मेरा पहला सत्र, जो मुझे पहले किसी सत्र के मुकाबिले ज्यादा अच्छा लगा था, केवल अप्रत्याशित घटना की वजह से धूमिल पड गया था, जिसका मेरे जीवन पर काफी बडा असर पडना था। सोते समय जब भी मेरा पर बाहर की ओर पड जाता था, मेरे दाहिने कूल्हे मे तीखा और तेज दर्द धीरे धीरे बढने लगा। मुझे यह कभी पता नहीं लगा कि यह किस वजह से हुआ, शायद घुडसवारी मे पहले कई बार जो गिरा था, उसके दौरान कोई आघात लगा हो। लेकिन ज्यो ज्यो दर्द की आवृत्ति बढती गई, मैं अधिकाधिक भयभीत होने लगा। मैंने महीनो उसके बारे म किसी को नही बताया। पन्द्रह साल के लडके के लिए ऐसी गलती करना समझ मे आता है, लेकिन इस गलती का नतीजा यह हुआ कि बाकी सारी जिंदगी के लिए मेरे कूल्हे म अकडन समा गई।

सत्र का अत हुआ और हम सब अपने अपने घरो को वापस चले गए, इस उम्मीद के साथ कि जब अगला सत्र शुरू होगा, हम फिर वापस आ जाएगे। लेकिन 1946 के मध्य तक भारत म साम्प्रदायिक स्थिति बहुत बिगड गई थी। हिन्दू मुस्लिम दगे बढती हुई आवृत्ति और विकरालता के साथ भडक उठे थे। इधर अग्रेजो के भारत छोडने की तयारी थी, उधर काग्रेस और मुस्लिम लीग भीषण सघर्ष म जकडे थे। अतिम सत्र म कुछ अस्पष्ट-सी धमकियो की अफवाह उड रही थी कि मेरा अपहरण कर लिए जाने या स्कूल म किसी और तरह से मुझे नुकसान पहुचाए जाने की सभावना हो सकती है लेकिन हमने उस सारी बात को मजाक म उडा दिया। फिर भी पिताजी ने नि सदेह मा की शह और सहयोग पाकर यह तय किया कि अपने इकलौते बेटे और उत्तराधिकारी को इतनी दूर के स्कूल भेजने म, जब कि देश एक गुरुतर विध्वस की कगार पर हो, काफी जोखिम है। शायद वे ठीक भी हो, लेकिन ग्रीष्मावकाश म श्रीनगर आने पर जब मुझे इस निर्णय के बारे म पता चला तो मैं बहुत विचलित हो उठा। मैंने सोचा कि यह कैसी विचित्र विडम्बना है कि उन वर्षों म, जब मैं स्कूल जाने से घृणा करता था, तब मुझे जबरदस्ती बेदर्दी के साथ वहा पार्सल कर दिया जाता था, और जब मुझे वहा मजा आने लगा तभी हठपूर्वक मुझे वहा म हटा लिया गया।

जो भी हो हमेशा की तरह, इस मामले मे मेरा कोई दखल नही था, और जब मा ने प्रसन्नता के आवेश म यह खबर मुझे सुनाई तो मेरी हिम्मत नही हुई कि मैं कोई नाटक करू। इस प्रकार दून स्कूल म मेरे चार वर्षों का अत हुआ वे वर्ष जिनमे अपने को अनुकूल बनाने मे थोडा कष्ट हुआ, और रुचिकर खाना भी नही मिला लेकिन यही वर्ष आत्म निर्भरता म बहुमूल्य प्रशिक्षण के भी थे जिसमे शेष जीवन म मुझे काफी सहायता मिली। मैं अपने पुराने स्कूल के बधन के विषय म बहुत अधिक भावुक नही हू, लेकिन पिताजी के प्रति इस बात के लिए मैं आभारी और ऋणी हू कि उन्होने मुझे दून स्कूल भेजा, और स्वय स्कूल के प्रति भी कि

उसने अपने थोडे रूखे ढग से ही सही, मुझे सामती वातावरण मे बडे होने से बचा लिया और मुझे एक उपयोगी बौद्धिक भित्ति प्रदान की।

यद्यपि दून स्कूल मे मेरा रहना विशृखलित हो गया था, तो भी मेरी उत्कट इच्छा थी कि मैं अपनी पढाई जारी रखू और मैंने पिताजी से आग्रह किया कि वे मुझे श्रीनगर के स्थानीय श्रीप्रताप कालेज मे भेजें। वे इसके लिए राजी हो गए। यह एक ऐसी घटना थी जो उस वक्त एक प्रगतिशील और प्रजातान्त्रिक मानी गई थी। मैं प्रतिदिन एक ए डी सी के साथ कालेज जाता था लेकिन क्लास मे और दूसरे लडको के साथ ही बैठता था। मैंने अग्रेज़ी, नागरिक शास्त्र, इतिहास व अर्थशास्त्र लिया था और वाद विवाद तथा जोशीले भाषण की प्रतियोगिताओ मे भाग लेता था। एक बार मैंने जोशीले भाषण का पुरस्कार जीता जो वार्षिक पारितोषिक वितरण के अवसर पर मा ने मुझे भेंट किया। दुर्भाग्य से मैं कालेज मे बहुत थोडे समय तक ही रह सका, केवल 1946 की गर्मिया मे ही। उस वक्त मेरे निजी शिक्षक प्रोफेसर बी० के० मदान थे, एक हसमुख और चतुर कश्मीरी पडित, जो मेधावी तो नही, लेकिन सामान्यतया जागरूक और काफी सूचना-सपन्न व्यक्ति थे। मेरे लिए उनकी प्रमुख सीख थी, जो उनके चरित्र से पूरी तरह मेल खाती थी, कि सामग्री से कही अधिक महत्व उसको पैक करने के ढग का होता है। "टिशू कागज और टीन की पन्नी," वे कहा करते, "वस्तुत इन्ही का असली महत्व है। जिस ढग से कोई वस्तु प्रस्तुत की जाती है वही अधिकाश लोगो को प्रभावित करता है, उसके भीतर सचमुच क्या है, इसकी बिरले ही परवाह करते हैं।" यह पागलपन का सिद्धात लगता है, लेकिन इस अपूर्ण ससार मे ऐसा नही कि इसकी उपयोगिता न हो।

इसी बीच हमारे घर मे एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई। कोई एक स्वामी सन्त देव थे, जो बीसियो बरस पहले दिवगत नरेश महाराजा प्रताप सिंह के समय मे राज्य मे रहा करते थे। कहा जाता है कि जब पिताजी सिंहासनारूढ हुए तो उन्होंने इन्हे निष्कासित कर दिया था। अब व रहस्यपूर्ण ढग से फिर वापस आ गए। वे 1944 के आसपास आए और 1946 तक अपने को राजगुरु के रूप मे दृढ़ता से प्रतिष्ठित कर चुके थे। पिताजी ने उन्हें श्रीनगर में खूबसूरत चश्मे शाही अतिथि निवास में ठहराया था, और जम्मू में उस घर में, जहा बचपन में मैं रहा करता था। मेरे पिताजी कोई धार्मिक व्यक्ति नही थे, लेकिन सबको बडी हैरानगी थी कि एकाएक वे स्वामी जी के भक्त-शिष्य बन गए और काफी देर तक उनके आगे जमीन पर बैठे रहते और उनके सामने धूम्रपान तक नही करते थे। स्वामी जी को उन्होंने सुन्दर रेशमी चोगे, चादी का हुक्का और एक कार समेत बहुत सी सुख-सुविधाए भेंट की। वे बहुत तरह से एक अनोखे व्यक्ति थे, ज्ञान के अनेक क्षेत्रो में पडित और उस वृद्धावस्था में भी रग में गुलाबीपन। वे

कभी यह भेद नहीं बताते थे कि उनकी वास्तविक उम्र कितनी है, लेकिन अफवाह थी कि वे अस्सी से बहुत ऊपर हैं (कुछ का दावा था कि सौ के हैं)। वे अफीम का नियमित सेवन करते थे और प्रायः ऊंघते-ऊंघते सो जाते थे, जिसका अर्थ उनके अनुयायी यह लगाते थे कि यह उनके ईश्वर से सीधे संपर्क का प्रमाण है।

यद्यपि बाद में उन्हें काफी बदनाम किया गया, लेकिन मैं समझता हूं कि पिताजी के व्यक्तिगत जीवन पर उनका जो प्रभाव पड़ा वह सब अच्छे के लिए ही रहा। उन्होंने पिताजी से धूम्रपान और शराब पीना कम करने का आग्रह किया और एक प्रकार की धार्मिक वचनबद्धता से, चाहे ऊपरी ही सही, उनके स्वभाव में जो थोड़ी आक्रामकता थी, उसे सामान्यतया नरम किया। और भी उनका एक प्रभाव था जिसने मां और पिताजी को एक दूसरे के नजदीक ला दिया। मां में चूंकि गहरी धार्मिकता थी, इसलिए घटनाओं के इस मोड़ से तो वे प्रसन्न थी ही, और उनके बड़े भाई ठाकुर नाचित चंद, जो कई बरस ज्यादा अफसर या कंचुकी थे, वे अब स्वामी जी और पिताजी के बीच मध्यस्थ बन गए और इस प्रकार दरबार में उनकी महत्ता बढ़ी। मुझे भी स्वामी जी के नियमित रूप से दर्शन करने पड़ते, लेकिन कूल्हे के दर्द की वजह से जमीन पर पालथी मार कर बैठने में दिक्कत महसूस होने लगी थी और इसलिए वहां जाना मैं दरअसल बरका जाता। स्वामी जी का बर्ताव मेरे प्रति सदैव बड़ा स्नेहपूर्ण रहता। वे शास्त्रीय संगीत के बड़े पारखी थे और जब मैं उनकी प्रिय राग जजवंती गाता तो बड़ा रस लेते।

लेकिन राजनीति के मामले में स्वामी जी का जो असर पड़ा वह विनाशकारी साबित हुआ। जैसा कि और बहुत से बड़े देशी राज्य चाहते थे, अंग्रेजों के भारत से हटने के बाद स्वतंत्र शासक बन जाने की संभावना पिताजी को भी आकर्षक लगी। अंग्रेजों के अधिराजत्व को उन्होंने कभी भी प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार नहीं किया था पर साथ ही साथ वे सामंती परंपरा में इतनी गहराई से उलझे हुए थे कि उनके लिए उन प्रजातांत्रिक शक्तियों से समझौता करना संभव नहीं था जो उस समय उपमहाद्वीप में और स्वयं राज्य में भी जोर पकड़ रही थीं। सामंती व्यवस्था की एक बड़ी कमजोरी यह है कि शासकों को वे ही बातें बताई जाती हैं जो उनके दरबारी समझते हैं कि वे सुनना चाहते हैं लेकिन जो वास्तविक घटनाओं से शायद ही मेल खाती हों। इसी सामंती महत्वाकांक्षा पर स्वामी जी ने अपना छलिया पासा फेंका, पिताजी के दिमाग में लाहौर तक फैले साम्राज्य व संज बाग की तस्वीर बैठाकर, जहां हमारे पूर्वज महाराजा गुलाब सिंह और उनके भाइयों, राजा ध्यान सिंह और राजा सुचेत सिंह ने एक शताब्दी पहले इतनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। स्वामीजी कुछ कांग्रेसी नेताओं के संपर्क में थे ऐसा मानने का भी कुछ कारण था, और यह सीधे उन्हीं के प्रभाव की वजह से था कि

आचार्य कृपलानी 1947 के शुरू मे राज्य मे आए।

जो भी हो, डोगरा शासन का अंत तेजी से आगे बढता आ रहा था, यद्यपि अपने रंग मे मग्न पिताजी उन प्रचड शक्तियो से बेखबर थे जो उपमहाद्वीप मे उठान पर थी। राज्य के भीतर शेख अब्दुल्ला ने 1931 मे स्थापित अपनी मुस्लिम कान्फ्रेंस को नेशनल कान्फ्रेंस मे बदल लिया था और प० जवाहरलाल नेहरू से व्यक्तिगत और सैद्धान्तिक सबध बना लिया था। वे राज्य के जन-आदोलन मे सक्रिय थे जो इंडियन नेशनल काग्रेस द्वारा अग्रेजो के विरुद्ध चलाए गए बडे आदोलन का ही एक प्रकार से देशी राज्यो मे प्रतिरूप था। यद्यपि अब्दुल्ला का सरदार पटेल जैसे रूढिवादी काग्रेसी नेताओ ने सचमुच कभी विश्वास नही किया फिर भी उन्होंने प० जवाहरलाल नेहरू का निकट विश्वास प्राप्त करने मे सफलता पा ली, शायद इसलिए कि वे भी कश्मीरी मूल के ही थे, और कश्मीर को अपनी विशेष रुचि का क्षेत्र समझते थे।

जिन्ना के लिए अब्दुल्ला और उसके साथियो का कोई उपयोग नही था, कुछ तो इसलिए कि शेख उनके कदमो पर चलने को तैयार नही थे और कुछ जिन्ना के इस मसीही एतबार की वजह से कि इस महाद्वीप मे मुस्लिम हितो के एकमात्र रक्षक वे और उनकी मुस्लिम लीग ही थी। अब्दुल्ला की चालें सीधी-सादी पर असरदार थी। उनमे डोगरा विरोधी भावनाए तो हमेशा भरी ही रहती थी, वे अपने राजनैतिक आक्रमण का प्रमुख निशाना पिताजी को बनाकर प० नेहरू की सामतशाही विरोधी भावनाओ को चतुराई से उभाडा करते थे। मई 1946 मे शेख अब्दुल्ला और उसकी नेशनल कान्फ्रेंस ने 'कश्मीर छोडो' आदोलन छेडा, वैसा ही जैसा चार बरस पहले गाधीजी का प्रसिद्ध 'भारत छोडो' आदोलन था। इसके पहले पिताजी ने राज्य मे लोकप्रिय सरकार बनाने की दिशा मे कुछ कदम उठाए थे, जिनमे 1944 मे एक द्वध शासन का प्रयोग भी सम्मिलित था, जिसमे आशिक रूप से निर्वाचित एक प्रजा सभा स्थापित की गई थी। लेकिन इससे राज्य के शासन मे पूरे हिस्से की नेशनल कान्फ्रेंस की माग सतुष्ट नही हुई। 1945 मे उस पार्टी के सापोर अधिवेशन मे जवाहरलाल नेहरू और खान अब्दुल गफ्फार खान भी सम्मिलित हुए थे और इंडियन नेशनल काग्रेस ने, जो सामान्य तया राज्य की पीपुल्स कान्फ्रेंस का समर्थन करती रही थी, आसन्न विभाजन और जवाहरलाल नेहरू और शेख अब्दुल्ला की नजदीकी जाती दोस्ती को मद्देनजर रखते हुए कश्मीर मे खास दिलचस्पी जाहिर की थी। बदकिस्मती से पिताजी उन परिवर्तनो के ऐतिहासिक आयामो का अदाज नही लगा सके जो नजदीक ही थे। यह इसी एक घटना से बखूबी साबित होता है कि जब 20 मई को शेख अब्दुल्ला और नेशनल कान्फ्रेंस के कई और कार्यकर्ता हिरासत मे ले लिए गए और जवाहर लाल नेहरू ने राज्य मे अपने आने के इरादे की घोषणा की तो उनके प्रवेश पर

पाबदी लगा दी गई। अपने स्वभाव के अनुसार जवाहरलाल ने पाबदी तोडकर पजाब से कोहला पुल होते हुए कश्मीर मे प्रवेश का निश्चय किया। एक गोरखा अफसर, मेजर भगवान सिंह के नेतृत्व मे राज्य सेना के सैनिक सगीनें तान पुल के बीचो बीच खडे हो गए। जवाहरलाल, हमेशा जैसे निडर होकर सगीनों को एक तरफ हटाते हुए पदल पार चले गए। वह तो खैर हुई कि भगवान सिंह एक समझदार और अक्लमद आदमी निकला कि उसने अपने फौजियो को अलग हटने का हुक्म देकर बडे अदब से जवाहरलाल जी से पुल पार करने की दरख्वास्त की और इसके बाद उन्हे इत्तिला दी कि वे हिरासत मे है।

इसकी खबर हम तक गुलाब भवन मे पहुची, और पडित काक ने, जो उस समय प्रधानमत्री थे, पिताजी को किंचित गव और उत्तेजना के साथ रिपोट दी कि जवाहरलाल जी कैद कर लिए गए हैं। मैं तो स्तब्ध रह गया। देखो तो, कहा यह राष्ट्रीय स्वातत्र्य आदोलन का सबसे अधिक प्रभावशाली नेता, 'आत्मकथा' और 'डिस्कवरी आफ इडिया' का प्रणेता, भारतीय गणतत्र का घोषित भावी प्रधानमत्री, और कहा हम कि उनका स्वागत करने और उनसे सहयोग लेने के स्थान पर हमने उन्हे कैद कर लिया! मुझे इसमे कोई सदेह नही है कि उनके कैद किए जाने से ही राज्य के इतिहास ने मोड लिया। जवाहरलाल जी को श्रीनगर लाया गया, और तीन दिन के बाद काग्रेस वकिंग कमेटी ने उन्ह भारत वापस लौट आने के लिए राजी कर लिया। बाद म जुलाई मे राज्य सरकार ने उनके प्रवेश पर पाबदी हटा ली और वे आए और शेख अब्दुल्ला से जेल मे उन्होंने भेंट भी की। लेकिन अब बहुत देर हो चुकी थी, पासा फेंका जा चुका था, और विनाश की बिजली गिरने मे अब समय की ही बात थी।

मुझे यह हमेशा दु खदा लगायी है कि पिताजी जैसे बुद्धिमान और सवथा निकता के हामी और प्रगतिशील व्यक्ति ने उन अतिम वर्षों म देश की राजनतिक परिस्थिति को समझने म इतनी घोर गलती की। व सामान्यतया एक प्रबुद्ध शासक थे, जिन्होने उदाहरणाथ 1932 म ही राज्य के सभी मदिरा का हरिजनो के लिए खोल दिया था। इस अवसर पर जम्मू के राजपडित ने, जो हमारे पारिवारिक मदिर, रघुनाथ मन्दिर के प्रधान पुजारी थे इस प्रस्ताव का विरोध किया था। पिताजी ने उन्ह दढतापूवक बर्खास्त कर दिया और उनकी जगह उनके भाई को नियुक्त किया लेकिन तभी जब उन्होने असदिग्ध रूप से हरिजनो को स्वीकार करना मजूर किया। इसी तरह स भूमि की पटटेदारी और प्रशासन के सबध मे पिताजी न एस सुधार समाविष्ट किए जो और कई देशी राज्यो से बहुत आगे थे। एक बार अपने मत्रियों को नियुक्त करने के बाद जिनम मुस्लिम कोटा प्राय पू० पी० म लिया जाता था वे फिर उनके काम मे दस्तदाजी नही करते थे। वास्तव म एक एसा मामला भी हुआ जिसम जम्मू के एक नागरिक ने, जो हमारे

महल के ठीक बाहर ही रहता था, उसकी सपत्ति का अधिग्रहण करने के पिताजी के निणय के विरुद्ध अदालत मे चुनौती दी और उसे रोकने मे वह सफल भी हुआ। दरअसल जब तीस वष की उम्र मे वे 23 सितम्बर 1925 को राजगद्दी पर आसीन हुए, तभी उन्होने घोषणा कर दी थी "मेरा धर्म न्याय है और सभी प्रकार की नियुक्तियो के लिए निणय केवल गुणवत्ता के आधार पर ही किया जाएगा। जाति, पथ, धम अथवा लिंग का कोई विचार नही होगा।" अपने शासन काल मे उन्होने अनेक प्रशासनिक और राजनतिक सुधार किए जिनकी परिणति 1944 म द्वैध शासन के एक प्रयोग मे हुई। इसमे प्रजा सभा को, जो बीस साल पहले स्थापित की गई थी, यह अधिकार दिया गया था कि वह छह व्यक्तियो का एक पैनल नामाकित करे, जिनमे से मन्त्रिपरिषद् के लिए वे दो व्यक्तियो को चुन लेते। इसने पहली मतबा सरकार मे 'लोकतन्त्रीय' तत्त्व का प्रवेश कराया, और 1944 के अत तक इस विधि से दो मन्त्रियो की नियुक्ति भी हुई, मिर्जा अफजल बेग और वज़ीर गगाराम, जिन्होने क्रमश मुस्लिम और हिन्दू उम्मीदवारो मे सबसे अधिक मत प्राप्त किए थे।

इसी प्रकार अन्य नरेशो से भिन्न, पिताजी ने रत्नाभूषण समेत अपनी निजी सपत्ति और राज्य की सम्पत्ति मे स्पष्ट अन्तर कर रखा था। उन्होने करोडो मूल्य के परिवार के रत्नाभूषण, शाल, गलीचे और राजचिह्न राज्य के तोशाखाने म रख छोडे थे, जिन्हें यदि उनकी जगह और कोई होता तो आसानी से हडप लेता और डकार तक न लेता। उन्होने अपने व्यक्तिगत स्वाथ के लिए कभी प्रजा को तग नही किया, और महल मे अलग अलग अपना स्वत पूण जीवन व्यतीत करते रहे। निष्पक्ष प्रेक्षक आज भी उनके प्रशासन और न्याय व्यवस्था को 1947 के बाद की व्यवस्था से कही बेहतर मानते हैं। भ्रष्टाचार अपेक्षाकृत बहुत कम था और जब भी प्रकाश मे आता था, उसकी सख्त सजा दी जाती थी।

परतु प्रगतिशील शासक होना एक बात थी और युगान्तकारी ऐतिहासिक चमत्कारिक घटना का मुकाबिला करना और बात थी। उस समय उपमहाद्वीप मे चार प्रमुख शक्तिया क्रियाशील थी और पिताजी उनमे से प्रत्येक के विरोध मे थे। पहले अग्रेज थे, जो अपने साम्राज्य के उज्ज्वलतम रत्न का अततोगत्वा परित्याग करने को तैयार थे। यद्यपि बिल्कुल आखिर तक पिताजी को यह इत्मीनान नही था, कि वे सचमुच चले जाएगे, फिर भी उनम इतनी काफी देश-भक्ति थी कि वे अग्रेजो से चोरी छिपे किसी प्रकार का समझौता नही कर सकते थे। फिर इडियन नेशनल काग्रेस थी, जिसकी प्रेरक शक्ति थे गाधीजी और जिसका नतृत्व जवाहरलाल, वल्लभ भाई पटेल, मौलाना आज़ाद और स्वातन्त्र्य आंदोलन के अन्य दिग्गज लोग कर रहे थे। पिताजी इस पार्टी के मुख्यतया इस लिए खिलाफ थे कि जवाहरलाल जी का उनके कट्टर वैरी शेख अब्दुल्ला से

निकट का सबध था। फिर मुस्लिम लीग थी, जिसका नेतत्व माहम्मद अली जिन्ना कर रहे थे। यद्यपि इस पार्टी ने नरेशा के इस अधिकार का समथन किया था कि वे अपने अपन राज्य के भविष्य के सबध म स्वय निणय करें, और कश्मीर म शेख अब्दुल्ला और उनकी नेशनल कान्फ्रेंस का जी जान से विराध किया था, तो भी पिताजी म इतना पर्याप्त हिन्दुत्व था, कि वे मुस्लिम लीग के आक्रामक सम्प्रदायवाद को पचा नही सकते थे, और यही वजह थी कि उन्होंने पाकिस्तान द्वारा दिए गए प्रलोभना को ठुकरा दिया। अन्त म स्वय राज्य म ही जो प्रमुख राजनैतिक पार्टी थी, नेशनल कान्फ्रेंस और जिसके नेता शेख अब्दुल्ला थे, उनसे पिताजी से बीसियो बरस से बिल्कुल नही पटती थी क्योकि पिताजी को उनम अपने राज्यसिंहासन और डोगरा शासन के लिए खतरा नजर आता था। इसका अतिम परिणाम यह हुआ कि जब निर्णायक घडी उपस्थित हुई ता गणना योग्य जितनी शक्तिया थी वे सबकी सब बाड के उस पार विरोधी पक्ष म इक्टठी हो गइ। इसके अतिरिक्त पिताजी इस पार या उस पार एक दृढ निणय लने से कतराते थे। इस तरह उन्होंन अपने को एकाकी और मित्रहीन पाया, और डोगरा शक्ति का जो प्रासाद एक शताब्दी के कठिन परिश्रम से निर्मित किया गया था, वह ध्वस्त हो गया। काश कि मैं उम्र म दस बरस और बडा होता तो मुझे लगता है कि मैं इतिहास बदल सकता था। लेकिन अगर मैं दस बरस बड़ा ही होता ता मैं भी क्या उस सामतशाही सक्रामक विष का शिकार नही बन जाता ?

नेहरू जी के कद किए जाने से जो खलबली मची उसके बावजूद वातावरण कुछ समय के लिए फिर शान्त हो गया। मैंने वह गर्मी श्रीनगर मे कालेज जाने मे और हर सप्ताहान्त मा और पिताजी के साथ शिकार और मछली पकडने के अभियानो म बिताए। मुझे पहली बार बडे पशुओ के शिकार म अपना हाथ आजमाने की इजाजत मिली। मुझे पिताजी ने एक 318 की राइफल दी और पहले बडे शिकार के लिए मुझे ठाकुर हरनाम सिंह पठानिया के साथ, जा अचूक निशानेबाज थे और हमारी वन सेवा मे वरिष्ठ अधिकारी थे और बाद म पदोन्नत होकर चीफ कजर्वेटर बन गए थे, डचिगाम भेजा गया। हम सुबह जल्दी निकल पडे और सूर्योदय स पहले ही आरक्षित वन म दाखिल हो गए। शीतल वायु वन की सुगध स सुगधित थी और पूव उषाकाल म पवत जैस सजीव और स्पदित हो उठ थे। जब बन्दूक हाथ म लिए हम जगल म स अपना रास्ता निकाल रह थे ता उस समय जिस आह्लाद की अनुभूति मुझे हुई उसका रसास्वाद मेरे मन म आज भी ज्यो का त्यो बना हुआ है। कुछ दर बाद सूय भगवान उदय हुए और सारा वन प्रान्त और आसपास के पवता क ढालू धरातल अपनी शरदकालीन रग बिरगी छटा को लकर जाज्वल्यमान हो उठे। हमारे आखेट का लक्ष्य कश्मीर का भव्य

हिरन था, लेकिन हमे कोई मिला नही। कुछ हरिणिया अपनी सरल और तरल मगाक्षियो को लेकर स्तब्ध खडी रहती, जब तक कि हम उनके बिल्कुल नज़दीक नही पहुच जात, और तब वे उडान भरकर वन मे विलीन हो जाती।

करीब दस बजे, जब हम मोटर पर जगल के काफी चक्कर लगा चुके थे, हरनाम सिंह ने एकाएकी मेरा हाथ पकडकर कान मे धीरे से कहा, "भालू का शिकार करोगे ?" करीब सौ गज की दूरी पर कुछ पेडो की आड मे एक विशाल काय काला रीछ खडा था। मैंने राइफल उठाई और दाग दी। गोली ने रीछ को सीधे मार गिराया। लेकिन ये जानवर बडे ही मजबूत होते हैं और जब तक कि घातक रूप से घायल न हो जाय, मुश्किल से ही मिल पाते हैं। सतकतापूवक हम उस स्थल की ओर बढे जहा रीछ गिरा था। हमे खून तो दिखलाई पडा, लेकिन रीछ का कोई अता पता नही था। कहा जाता है कि रीछो की गुप्त मादें होती है, जहा वे बीमार अथवा घायल होने पर छिप जाते है और जगली जडी बूटियो से अपने घावों को अच्छा कर लेते हैं। जो भी हो, हमे वह रीछ नही मिला तो नहीं ही मिला। शायद वह केवल साकेतिक ही था, मेरे भाग्य मे शिकारी बनना लिखा ही नही था, और कुछ वर्षों बाद मैंन शिकार खेलना और मछली पकडना हमेशा हमेशा के लिए छोड दिया।

गर्मी धीर धीरे सिमटकर कश्मीर की शानदार शरद मे परिणत हो गई चिनार के पत्ते गेरुआ रग मे बदलने लगे। धान पक गया और उसके सुनहले खेत तराई की हरियाली की पृष्ठभूमि मे चमक उठे। वातावरण मे आतुरता थी। उप-महाद्वीप म बडी-बडी घटनाए घटित हो रही थी। केबिनेट मिशन आया और चला गया, जिन्ना की हिदुस्तान के बटवारे की माग ने उपमहाद्वीप की नीव तक हिला दी। चौडी काठी वाले, एकाक्षी वाइसराय लार्ड वैवेल की जगह तेज़तर्रार और खूबसूरत लार्ड माउन्टबेटन और उसकी हसीन बीवी एड्विना आए। पाश्व म इतिहास अपनी नाटकीय भूमिका प्रस्तुत करने की प्रतीक्षा मे था। इस पर भी हम करीब करीब पूरी तरह छोटी मोटी बातो म ही उलझे पडे थे—पिताजी के दरबार की वे हास्यास्पद लघु दुरभिसधिया, उनके आसपास के तुच्छ-चेता व्यक्तियो का वह मडल, अवसरवादियो की वह टोली और निरतर उनके गिर्द टगे रहनेवाले जी हुजूर लोग।

स्वामी जी का प्रभाव उत्तरोत्तर बढता गया, और उसके साथ ही दरबार म मा के बडे भाई ठाकुर नाचित चद के हाथ मे धीरे धीरे अधिकार आता गया। जब मा की शादी हुई थी तब व डोगरा रेजीमट एन० सी० ओ० थे और, जैसी प्रथा थी, यह सबध हो जाने पर उन्ह एक बडी जागीर दे दी गई थी और ओहदे दार दरबारी बना दिया गया था। वे कई बरस मा के मीर हाजिब बने रहे, जिन पर उनका काफी प्रभाव था, क्योकि एक तो वे उनसे कई साल बडे थे और दूसरे

जब व छोटी थी तो उन्होने उन्हे विजयपुर के गाव की तलया म डूबने से बचाया था। वे चतुर और भीतर से स्वामिभक्त तो थे, लेकिन उनकी बौद्धिक परिधि सीमित थी और वे स्वामियो और साधुओ के जादुई चमत्कारो का प्रसाद पाने क फेर मे ज्यादा रहते थे। इसमे सदेह नही कि उन बहुत कठिन वर्षों म, जो मा ने शादी के बाद बिताए, जब एक गाव की लडकी दरबारी षड्यन्त्रो के भवरजाल म एकाएक लाकर बठा दी गई थी, वे उनके लिए शक्तिमान शिला सिद्ध हुए, और वे कभी यह कहने का मौका नही चूकते थे कि यदि वे न होते तो मेरे जन्म के बहुत पहले ही मेरी मा षडयन्त्रो की शिकार बनकर कभी की समाप्त हो चुकी होतीं। इसमे उन्होने दरबार क विरोधी पक्ष को नाराज कर लिया और पिताजी के सगोत्री जामवाल बिरादरी के लोगो म वे सामान्यतया नापसन्द किए जाते थे। लेकिन स्वामीजी का आगमन होने के साथ ही उनका महत्त्व एकाएकी बढ गया और वे स्वामी जी और पिताजी के बीच प्रमुख मध्यस्थ बन गए।

नवम्बर के पहले हफ्ते मे हमेशा की तरह हम ठड की ऋतु के लिए जम्मू चले गए। मेरे निजी शिक्षक प्रोफेसर मदान ने पूछताछ की तो यह पता लगा कि निजी परीक्षार्थी के रूप मे मैं इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की इटरमीडिएट परीक्षा मे बठ सकता हू। पिताजी को यह विचार बहुत पसन्द नही था, वे स्वय मेयो कालेज मे मट्रिकुलेशन से आगे कभी नही जा पाए थे, लेकिन प्रोफेसर मदान और मा ने मिलकर उन्हे राजी कर लिया और उनकी स्वीकृति प्राप्त करने म सफलता पाई। इसके लिए मैं मदान साहब का अत्यन्त आभारी और ऋणी हू क्योकि यदि उस समय वहा मेरी पढाई टूट जाती तो मेरे लिए फिर से उसे आगे बढाना सभव न हो पाता, जसा मैंने बाद मे किया। हमारे जम्मू के स्टाफ गहो मे से एक मे, एक विशेष परीक्षा केन्द्र खोला गया और 1947 के शुरू म मैं अग्रेजी, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, और हिन्दी विषय लेकर परीक्षा मे बठा। यह देखते हुए कि सीनियर कैम्ब्रिज के पश्चात् मेरी पढाई एक सत्र में दून मे, एक सत्र म श्रीनगर कालेज म हुई और कुछ महीनो तक जल्दी जल्दी मे निजी तौर पर जम्मू म कोचिंग मिली और फिर भी जब मैं परीक्षा म द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हो गया, तो मैं काफी खुश था।

मैं जल्दी-जल्दी बडा हो रहा था और जब मैं पीछे देखता हू तो मुझे दिख साइ देता है कि सामन्तशाही दरबार का क्षयकारी प्रभाव मेरे बर्ताव पर अलक्ष्य रूप से पडना शुरू हो गया था। अपने नौकरो के प्रति मेरा रवया उद्धत होने लगा था, कुत्तो मे मैं कठोरता बरतने लगा था और सामान्यतया व सभी बातें मुझम आने लगी थी जो सामती जीवन के अवाछनीय लक्षण माने जाते हैं। अपना हम-उम्र प्राय कोई भी साथी न होने क कारण—नसीब भी लखनऊ कालेज म चला गया था—मेरा अधिकाधिक समय स्टाफ क साथ बीतने लगा। मा और पिताजी

कुछ थोड़े नज़दीक आते जान पड़े, हालांकि मूल तनाव बना रहा और आवेश के ऐसे झुलसा देने वाले प्रदर्शन फूट पड़ते कि मैं बिल्कुल स्तब्ध रह जाता। मां उस समय ईंटों की, दुर्ग जैसी विशाल इमारत, 'अमर महल' में रहती थीं, जिसे मेरे पितामह ने जम्मू में बनाना शुरू किया था, लेकिन कभी पूरी नहीं कर पाए थे। और पिताजी उससे अगले नीचे और भूरे रंग के घर में रहते थे, जिसे 'हरि निवास' के नाम से जाना जाता है और जिसमें मेरा भी एक कमरा था। मां खाना खाने इधर चली आती थीं और हम सब मिलकर खूब रमी और बैकगेमोन (पासे और पंद्रह मोहरों का खेल) खेलते थे। जम्मू में हमारा जीवन श्रीनगर से भी ज्यादा एकाकी था। हम बस एक ही जगह जाते थे, ऊधमपुर, जो जम्मू से चालीस मील दूर एक शहर था और जहां पिताजी ने शिकार के लिए कुछ बढ़िया आरक्षित वन विकसित कर लिए थे। वहां उन्होंने एक आवास भी बना लिया था जिसका नामकरण उन्होंने मां के नाम से 'तारा निवास' कर दिया था जिससे मुझे खुशी भी हुई और ताज्जुब भी। शिकार के लिए विभिन्न रखों' को जाने से पहले हम सब वहां ठहरा करते। यद्यपि कश्मीर के पर्वतों की भव्यता उनमें नहीं थी, तो भी ऊधमपुर के आसपास की पहाड़ियों में चीता और जंगली सुअर समेत अनेक छोटे-बड़े शिकार के जानवर पलते थे।

इन सभी महीनों में मेरे दाहिने कूल्हे के जोड़ का दर्द बराबर बढ़ता चला गया। रात को तीखी टीस भरा दर्द जो उठा करता, उसके डर से मैं सोने से घबराता था। मेरे दाहिने कूल्हे और पैर की मांसपेशियां क्षीण होने लगीं, जिसके परिणामस्वरूप मैं थोड़ा-थोड़ा लंगड़ाने लगा। जब जब मां इस पर टीका करतीं, मैं उस बात को टाल जाता, लेकिन एक दिन पिताजी की निगाह भी उस पर पड़ ही गई और उन्होंने महल के चिकित्सक, डा० एस० के० शांगल् से कहा कि मेरा परीक्षण करें। तब उन्हें मांसपेशी के क्षीण होने का पता चला। उन्होंने शुरू में किसी तेल से कुछ हफ्तों तक मेरी मालिश करवाई, लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ा। अंत में पिताजी ने मुझे विशेषज्ञ की सलाह के लिए बम्बई भेजने का फैसला किया। घरेलू व्यवस्था के नियंत्रक, ब्रिगेडियर एन० एस० रावत मेरे साथ गए और मेरे अनेक परीक्षण किए गए और एक्स रे लिए गए जिसके दौरान मैं टाटा कैंसर इंस्टीट्यूट के प्रसिद्ध संस्थापक डॉ० खानोलकर के पास भी गया। ज़ाहिरा तौर पर किसी को कैंसर का शक हुआ था, लेकिन यह फिर दूर हो गया। हमें यह सलाह दी गई कि तीन महीनों के भीतर दर्द नहीं मिटा तो फिर मुझे प्लास्टर में डालकर रखना पड़ेगा ताकि कुछ समय तक जोड़ बिल्कुल हिल न सके।

इस हतोत्साही खबर को लेकर मैं जम्मू लौटा। पिताजी, हमेशा की तरह मार्च के बाद अपना अधिकांश समय स्विमिंग पूल में ही बिताया करते, जिसमें शाम के समय वे स्टाफ और कुछ चुनिंदा नौकरों के साथ वाटर पोलो खेला करते।

मैं अच्छा तैराक नही था और केवल ऊपरी तौर मे कार्यवाही में हिस्सा लिया करता। मैं मा के साथ कुछ समय बिताने अमर महल की ओर टहल जाता या कण निवास चला जाता जहा स्वामी जी रहते थे। दरअसल मैं बिखर सा गया था और कल्हे की पीडा और आम वातावरण ने मुझे बुरी तरह बेचन कर दिया था। धीरे धीरे गर्मी की ऋतु हम पर छा गई लेकिन पिताजी न श्रीनगर जाने की तारीख तय करन का कोई रुख ही नही दिखाया। आखिर मा को ही दस्तदाजी करनी पडी और कहना पडा कि जम्मू मे अब बर्दाश्त से बाहर गरमी पडने लगी है। इस बात पर पिताजी की बडी अजीब और तीव्र प्रतिक्रिया हुई, उन्होने इस प्रस्ताव का बहुत बुरा माना और कई दिन तक रूठे रहे। जब मैं पीछे देखता हू तो मुझे लगता है कि कही उन्हे इस बात का पूर्वाभास तो नही हो गया था कि शासक के रूप मे कश्मीर की यह उनकी आखिरी यात्रा होने जा रही है।

अततोगत्वा हम मई के अत म श्रीनगर पहुचे और तुरत ही नए वाइसराय लाड लुई माउटबटन और लेडी माउटबटन की आगामी यात्रा के सिलसिले म दौड भाग म लग गए। देशी राज्यो म वाइसराय का आगमन अग्रेजी राज्य का एक नियमित दस्तूर था और मुझे अस्पष्ट सा याद है कि तीस के दशक मे जब मैं लडका ही था, लाड लिनलिथगो आए थे और उन्होने मुझे सोने की रिंग लगी एक घुडसवारी की छडी भेंट की थी। लेकिन यह यात्रा विशेष थी, केवल इसलिए नही कि अग्रेजो न यह घोषित कर दिया था कि वे शीघ्र ही भारत छोड देंगे और सत्ता सौंप देंगे परन्तु जहा तक कम से कम मेरा सबध था, इन व्यक्तियो की वजह से भी जो इसम सम्मिलित होने जा रहे थे। लाड ववेल थोडे कठोर प्रकृति के थे और उनका प्रभाव अनुकूल नही पडता था। उनके ठीक बाद जब माउटबटन दम्पत्ति आए जिनका व्यक्तित्व तडक भडक वाला और मोहक था तो यह परिवतन उत्तेजनाप्रद लगा और मैं उनसे मिलने को बडा उत्सुक हुआ।

पिताजी समारोह-सबधी व्यवस्था बडी बारीकी से करते थे। कायक्रम बडे साफ सुथरे ढग स छपाए जाते और उन्नाबी रग के धनुष के साथ सुनहले कागज म उनकी जिल्द बाधी जाती (सुनहला और उन्नाबी राज्य के रग थे)। मेहमानो की सूचिया और व्यजनो की सूचियो समेत सारा ब्योरा रत्ती रत्ती तैयार किया जाता। इन ब्योरो को तयार करने मे व घटो लगा देते थे और पूरा घर निरतर तनाव म रहता था, क्योकि कोई गलती हुई नहीं कि यह निश्चय था कि किसी का सिर धड स अलग हुआ। चूकि उस वक्त मेरे पास भी कोई काम नही था, इसलिए मैंने भी इस काम म स्टाफ की मदद की, हालाकि मेरा योगदान सतही ही कहा जा सकता है। अततोगत्वा वह महत्वपूर्ण दिन आ ही गया और तोपो की सलामी के बाद (मुझे याद नही कितनी, लेकिन जब पिताजी को ही 21 तोपो की सलामी का सम्मान प्राप्त था, तो मैं समझता हू वाइसराय को 31 तोपो की सलामी मिली

होगी) वाइसराय और उनकी पत्नी आ पहुची। मैं भी मा और पिताजी के साथ उनका स्वागत करने द्वारमडप पर था। पहली झलक मे ही जो मेरी प्रत्याशाए थी, वे पुष्ट और पूरित हो गइ। पोर पोर वे एक मनमोहक दपत्ति थे, और एकदम —अटल रूप से—मैंने उन्हे बैरोनेस आर्ज़ी के उपन्यासो के अपने प्रिय पात्रा, सर पर्सी ब्लैकेनी और उसकी खूबसूरत पत्नी मार्गेराइट से जोड दिया—वे स्वय ऊचे कद के, सुदर और स्फूर्तिमय, उनकी पत्नी सलोनी, शालीन और चित्ताकर्षक।

अभिजात पृष्ठभूमि के बावजूद उनम ऐसी कोई घुटन भरी बात या औपचारिकता नही थी और उनकी बेतकल्लुफी और मज़ाकिया अदाज से मैं बहुत खुश था। मेरे पिताजी ने "टाइगर" कहकर मेरा परिचय कराया और जब तक वे वहा रहे और उसके बाद भी, वे मुझे इसी नाम से पुकारते रहे। गाडन पार्टिया, प्रीतिभोजो और स्वागत समारोहो की एक पूरी श्रृखला ही बध गई। दो मज़ेदार घटनाए उल्लेखनीय हैं। प्रीति भोज मे मेज के नीचे एक घटी लगी थी, जिसे पार्टी समाप्त होने पर मेरे पिताजी को बजाना था और उसके बजते ही बड "गाड सेव दी किंग" बजाने लगता। उनके साथ माउटबटन बठे थे। वे लम्बे तो थे ही, गलती से खाने के दौरान उनका घुटना घटी के बटन पर जा लगा और घटी बजते ही बैंड ने ब्रिटेन का राष्ट्रगान पूरी दयानतदारी के साथ बजाना शुरू कर दिया। फिर क्या था, हम सभी को मुगशोरबा बीच मे ही छोडकर जिस किसी तरह लडखडाते हुए खडा होना पडा। पिताजी का चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था, लेकिन भाग्य से वे किसी को इसके लिए दोष नही दे सकते थे। कैसे क्या हुआ, जब माउटबैटन को इसका पता चला, तो वे ठहाका मार कर हस पडे और मेज के उस पार से मा की तीखी निगाह के बावजूद, खिलखिलाहट के मारे मैं तो फश पर लोटते-लोटते बचा। दूसरी घटना उस समय घटी जब पिताजी अपने वरिष्ठ अधिकारियो का, एक गाडन पार्टी से पहले, परिचय करा रहे थे। उन्होने सबको कतार म खडा कर दिया और सावधानी से नामो की सूची रट ली। पता नही क्या हुआ, कि कोई एक अधिकारी गलत जगह खडा हो गया। परिणामस्वरूप सारा क्रम गडबड हो गया और जब पिताजी धडाधड परिचय बोलते चले गए तो एकाएक उन्ह महसूस हुआ कि वे गलत नाम बोलते जा रहे हैं, यानि प्रत्येक का गलत नामो से परिचय दे रह हैं। मैं यह नही सकता कि कौन ज्यादा हैरत मे था, पिताजी यानि वे अधिकारी लेकिन ऐसा लगा कि शायद माउटबैटन को इस गडबडी का पता नही लग पाया और यदि उन्हें मालूम भी हो गया था तो व इतन विनम्र थे कि उन्होने इसका कोई सकेत नही दिया।

मजा मोज और उत्सवा के अलावा माउटबटन के वहा आने का एक गभीर राजनतिक उद्देश्य भी था। अग्रेजो की विदाई का दिन नज़दीक आता जा रहा था और अगर और नही तो भौगोलिक विवशता के कारण ही, जबकि अधिकाश

राज्यो ने मन म यह निणय कर लिया था कि दोनो नए राष्ट्रो मे से किसम मिलना है, अब भी कुछ एस थे जिन्ह निणय लेना बाकी था। इनम दो सबसे बडे देशी राज्य, हैदराबाद और कश्मीर भी सम्मिलित थे। हैदराबाद पूरी तरह भारतीय सघ के इलाके स घिरा था, जबकि कश्मीर की सीमाए भारतीय सघ के साथ भी थी और पाकिस्तान के नए राज्य के साथ भी। तिस पर हमारे राज्य म जाति वैभिन्य भी था और उसमे रहनेवालो मे मुसलमान (शिया सुन्नी दोनो), हिन्दू, बौद्ध और अ य धार्मिक वग क लोग भी थे। मुझे सदेह है कि शायद पिताजी को तब भी यह विश्वास नही था कि अग्रेज सचमुच चले ही जाएगे। स्वभाव से असमजसी ता थे ही व बस वक्त को टालते रह।

वसे उनके साथ इसाफ करते हुए यह मानना पडेगा कि जिन हालात का उन्हे सामना करना पडा था, वे बडे पेचीदा थे और निर्णय करना उतना आसान नही था। अगर वे पाकिस्तान मे मिलत है, तो उनकी प्रजा का एक बडा हिस्सा, जिसम उनका आधार सभी डोगरे शामिल थे अपमानित होता है, और यदि भारत मे मिलत है, तो उनकी मुस्लिम प्रजा के एक बडे हिस्से के खिलाफ हो जाने का खतरा है। स्वतत्र बने रहना शायद एक आकषक विकल्प होता, लेकिन उसे अमल म लाने के लिए बडी सावधानी से तयारी करने और सभी सबद्ध पक्षो से लबी सौदेबाजी करने की जरूरत पडती और साथ ही उसके लिए असाधारण राजनैतिक और कूटनतिक दक्षता भी अपेक्षित थी। दरअसल माउटबैटन पिताजी को यह समझाने के लिए आए थे कि वे समय रहते 15 अगस्त के पहले पहले अपना निणय ले लें और भारतीय नेताओ की ओर से यह आश्वासन दिलाने आए थे कि वे जो भी निणय उचित समझें लें—चाहे वह पाकिस्तान से मिलन का ही क्यो न हो उनकी ओर से कोई एतराज नही होगा।

किसी भी कठिन परिस्थिति मे एक आम सामती प्रतिक्रिया यह होती है कि उसका सामना करने से बचा जाए और पिताजी की तो विशेष रूप से यह रास्ता अपनाने की प्रवत्ति थी। माउटबैटन के आगमन का लाभ उठाकर सार्थक ढग से सारी परिस्थिति पर विचार विमश करने और एक न्यायसगत निर्णय पर पहुचने का प्रयत्न करने की बजाय उन्हाने पहले तो वाइसराय को मछली पकडने की लबी यात्रा के लिए त्रिक्कड भेज दिया (जहा निवस्त्र सूय स्नान करके माउटबटन ने हमारे स्टाफ को स्तब्ध कर दिया) और फिर उनकी विदाई के ठीक पहले एक बठक का निणय करके उसम से वे इस बहाने से निकल आए कि एकाएक उन्ह तीव्र उदरशूल का दौरा पड गया है। माउटबटन को, जसा कि उनके सहायक कपबल जानसन ने लिखा है इस छल को समझने म कोई दिक्कत नही हुई और वे दिल्ली वापस लौट गए। इस तरह एक कारगर सियासी समझौते का आखिरी असर मौका हाथ स जाता रहा।

पाच

इस बीच मेरे कूल्हे मे कोई फायदा दिखलाई नही पडा और आखीर मे मशहूर सर्जन कर्नल मिराजकर को लाहौर से बुलवाया गया। उन्होने सलाह दी कि कूल्हे के जोड को प्लास्टर मे बाधकर अचल बना दिया जाए। बिस्तर मे बध जाने की बात मुझे बेहद नापसन्द थी, लेकिन दर्द इतना बढता जा रहा था कि डॉक्टर की सलाह मान लेने के सिवाय और कोई चारा ही न था। जून मे मिराजकर ने खुद ही प्लास्टर बाधा और एक ही झटके मे मैं एक अच्छे भले आदमी से एकदम अपग बन गया। जिसने स्वय इसका अनुभव नही किया है, कि लम्बे समय तक प्लास्टर मे बिस्तर मे बधे पडे रहने मे क्या शारीरिक और मानसिक समस्याए होती हैं, इसका वह अदाजा नही लगा सकता। बडे साचे की निरी भौतिक असुविधा, जो कमर से शुरू होकर दाहिने पैर के पजे तक गया था, भयकर थी और बिना मदद के बिस्तर मे भी हिलडुल न सकना, प्लास्टर के भीतर की खुजलाहट, जिसे मिटाना मुमकिन न था, और सबसे ज्यादा पेशाब के लिए न जा सकना, ये सब मिलकर मुझे पागल कर दे रहे थे।

रातें सबसे खराब होती थी। दिन मे तो मुझे बिस्तर से उठाकर एक पहिए-वाली कुर्सी पर बिठा दिया जाता था और लाकर मा पिताजी और दूसरो के साथ बैठा दिया जाता था। वे मेरी मिजाज पुर्सी करने की पूरी कोशिश करते, और हम रमी और लूडो खेलते। शाम को नाते के कुछ भाई-बहिन मेरे पास आ जाते या मैं पढ़ा करता। लेकिन जब रात हो जाती और उस भयकर प्लास्टर के साचे मे मैं बिस्तर पर अकेल रह जाता, तो नाउम्मीदी का एक डरावना एहसास मन पर छा जाता। शाति मिलती तो बस केवल प्रार्थना से। मा ने मुझे एक माला और दुर्गा की तस्वीर दे दी थी—सिहवाहिनी महादेवी की—जिन्हे मैंने बिस्तर के बगल म ही रख लिया था। प्राय मैं घटो माला जपता रहता और कभी कभी हाथ मे माला लिए ही सो भी जाता। कभी कभी तो मुझे सपना आता कि यह सब एक दुस्वप्न है और सबेरे जब उठूगा तब अपन कमरे को फिर से बिल्कुल ठीक पाऊगा। लेकिन सुबह जब उठता तो पाता कि मेरी बीमारी एक कठोर सत्य है। मैं समझता हू कि उन्ही दिनो मुझमे सत्य से, चाहे वह कितना ही अप्रिय क्या न हो, समझौता करने का माद्दा विकसित हुआ। मेरी प्रवृत्ति हमेशा अन्तर्दर्शी रही है, लेकिन जबरदस्ती की इस लबी कैद ने, जब मेरी उम्र के और लडके अपनी क्रियाशीलता की चरम सीमा पर थे, मेरे मन को अपने गहन अतराल म

विचरित करने का विवश कर दिया।

मुझे यह बताया कि प्लास्टर तीन महीने तक चढा रहेगा, जिसके बाद म फिर से ठीक हो जाऊगा और सामान्य रूप से जीवन के काम काज करने लगूगा। दिन लम्बे होकर हफ्ता मे परिणत हो गए और हफ्ते महीनो मे। वह 1947 का वर्ष था जब भारत को रक्त और विनाश के महासागर मे से होकर स्वतन्त्रता प्राप्त करनी थी। हमारे स्वतन्त्रता सग्राम का अहिंसात्मकता और किस प्रकार हमने बिना शस्त्र युद्ध के स्वाधीनता प्राप्त की, इसके बारे म बहुत कुछ कहा गया है। यह इस अर्थ म ठीक भी है कि इस प्रक्रिया मे अग्रेजो का एक कतरा खून भी नहीं बहा, और गाधी जी सचमुच एक अनोखे नेता थे। लेकिन 1946 और 1947 म इस उपमहाद्वीप भर मे जो बबर और दर्दनाक साम्प्रदायिक दगे हुए, उनम भारत ने अपनी आजादी की कटु कीमत पाई पाई करके चुका दी। सकडो हजारो निरीह आदमी, औरतें और बच्चे धार्मिक विद्वेष और कट्टरपने की अग्नि मे बलिदान कर दिए गए जब हिन्दुओ और मुसलमानो ने अपने को घातक और असमान सघर्ष मे उलझा पाया—असमान इसलिए कि सभी मामलो म किसी विशेष शहर अथवा इलाके मे अल्पसख्यक वर्ग को ही सबसे अधिक हानि उठानी पडी। पडोसी पजाब से राज्य म आनेवाले हिंदू और सिक्ख शरणार्थियो का ताता बध गया। जम्मू और कश्मीर लबे समय से साम्प्रदायिक सद्भावना का उदाहरण बना रहा है, और ऐसे समय जबकि पूरा भारत लपटो म दहक रहा था, ऐसा जान पडता था कि यह राज्य शाति और अमन चैन का आश्रय बना रहेगा। जब गाधीजी ने कहा कि चारो ओर व्याप्त अधकार मे उन्हे प्रकाश की किरण केवल कश्मीर से ही आती दिखाई देती है, तो उनका यही मकसद था।

दरअसल उस वर्ष अगस्त मे गाधीजी श्रीनगर गए थे। जब हम पता चला कि वे आ रहे हैं तो बडी उत्सुकता हुई, और जब हमने सुना कि आम रिवाज की परवाह न करके वे महल में पिताजी से मिलने आएगे तो औत्सुक्य ने बढकर नाटकीयता का रूप ले लिया। यहा तक कि पिताजी भी रोमाचित हो उठे और मैंने तो हठ किया ही कि मैं उनसे जरूर मिलूगा। काफी विचार विमर्श के पश्चात यह तय हुआ कि गुलाब भवन के सामने वाले लान म चिनार के पेडो म से किसी एक के नीचे पिताजी मा और मैं गाधीजी से मिलेंगे। बकरी का दूध और फल का खास इतजाम किया गया और उनके आने के निर्धारित समय से एक घटा पहले हम पेड के नीचे अपने-अपने स्थानो पर जा बैठे। ठीक समय पर पहली अगस्त के अपराह्न पाच बजे तक गाधी जी पधारे। पिताजी उनका स्वागत करने द्वारमडप पर गए और वे पहले निकलकर बागीचे मे उस पेड तक आए जहा मा और मैं उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उस दुबली काय आकृति को अपनी ओर आते देखकर, जो पिताजी के कद्दावर शरीर के बगल म नन्ही सी लग रही थी,

माँ ग्रौर पुत्र—1931

माता पिता—1942

सात वर्ष की अवस्था में—1938

यज्ञोपवीत संस्कार—1949

जम्मू कश्मीर विश्वविद्यालय के प्रथम दीक्षांत समारोह पर
जवाहरलाल नेहरू के साथ—1949

विवाह के तुरत बाद पत्नी के साथ—1950

श्रीनगर एयरपोर्ट पर इंदिरा गांधी, एडविना माउंटबेटन जवाहरलाल नेहरू तथा शेख अब्दुल्ला के साथ—1951

सदरे रियासत की शपथ लेते हुए—1952

किस कदर मैं भाव विभोर हो उठा था, यह मैं कभी नही भूल सकता। यह है वो आदमी जो एक जीवित उपाख्यान बन गया है, जिसने केवल नैतिक साहस के बल पर दुनिया के सबसे बडे ऐतिहासिक साम्राज्य की जडें हिला डाली। हालाकि मेरी स्मरण शक्ति काफी तेज है तो भी जो बातचीत हुई उसका मुझे कुछ भी याद नही है। बैठने के साथ ही गाधीजी ने मेरी ओर देखा और पूछा "कैसे हो ?" इसके बाद उन्होने धीमे तोतले स्वरो मे एक लम्बा एकालाप शुरू किया जो ठीक ठीक मेरी समझ मे नही आ सका। पिताजी ने बडे आदर के साथ सुना लेकिन, जहा तक मुझे याद है, उन्होने स्वय शायद ही कुछ कहा हो। गाधीजी के शब्दो मे जो मेरी पकड मे आ सका वह इतना ही कि वे पिताजी से यह आग्रह कर रहे थे कि वे लोगो की ख्वाहिशो का पता लगा लें और देश मे जो सवत्र राज नैतिक हलचल हो रही है उसमे वे उनके साथ हो लें, न कि खिलाफ जाए।

कोई नब्बे मिनट के बाद गाधी जी जाने के लिए उठ खडे हुए। मा ने उनसे थोडा दूध और फल ग्रहण करने पर जोर दिया, लेकिन उन्होंने यह कहकर मना कर दिया कि यह उनके खाने का समय नही है। मा के आग्रह पर वे इस बात पर राजी हो गए कि फल उनकी कार मे रख दिए जाए। मेरी ओर मुस्कराते हुए, नमस्कार करके वे विदा हो गए, श्वेत वस्त्रो मे उनकी वह उदासी भरी मुस्कान मेरी स्मति मे आज भी झल रही है। मा और पिताजी दोनो के साथ साथ वे लान मे से होकर पैदल वापस चले गए और पेड के नीचे मैं अकेला छूट गया। जीवन म फिर उनसे मेरी भेंट दोबारा नही हुई, लेकिन असाधारण रूप से सजीव स्वप्न मे वे एक बार मेरे सामने जरूर आए, जिसमे से उनकी तस्वीर मेरे मस्तिष्क मे आज भी स्फटिक की भाति ज्यो की त्यो साफ बनी हुई है। लेकिन यह उसके कई वर्षों बाद की बात है जब वे आततायी की गोलियो का शिकार बन गए थे।

घटनाए अब जोर पकड रही थी। अग्रेज अब 15 अगस्त तक चले जाने के लिए वास्तविक रूप से तत्पर जान पडते थे। अग्रेजो के बारे मे जो यह कहा जाता है, वह सही ही है कि भारत मे जो भी उन्होने किया, उसमे से कुछ भी इतना उनके अनुरूप नही रहा, जितना उनके यहा से छोडे जाने का तौर-तरीका, और यह बडे मार्के की बात है कि आजादी के बाद इतनी जल्दी ही हमार और उनके बीच कटुता के सारे सेतु मिट गए। निस्सदेह इसका अधिकाश श्रेय जिस अनोखे ढग से गाधी जी के नेतत्व मे इडियन नेशनल काग्रेस ने स्वतन्त्रता आदोलन को चलाया, उसे है। बिना घणा के विरोध और बिना हिसा के सघष के उनके सिद्धात के मुकाबिले, ब्रिटेन की पुख्ता व्यावहारिक बुद्धि और सशक्त उदारता वादी परपरा थी, विशेषकर युद्धोत्तर लेबर सरकार की। लेकिन काग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच बने हुए गतिरोध के कारण उपमहाद्वीप का विभाजन

अवश्यम्भावी हो गया।

पाच सौ से कुछ ऊपर देशी राज्यो की स्थिति सैद्धान्तिक रूप से दुविधा जनक बनी रही, क्योकि अंग्रेजो ने यह मत व्यक्त किया कि उनके चले जाने के बाद जो दो नए राष्ट्र बनेंगे उनमे से किसी एक के साथ अपना नाता जोडने के लिए देशी शासक स्वतन्त्र होगे। पर जैसा माउण्टबटन ने चम्बर आफ प्रिसेज को साफ साफ बता दिया था वास्तव मे उनका चुनाव असल मे भौगोलिक बाध्यताओ से निर्देशित था। जब जब इनका उल्लघन करने की कोशिश की गई, जैसे जूनागढ और हैदराबाद के मामलो मे, जो दोनो ही पूरी तरह भारतीय क्षेत्र मे स्थित थे, तो परिणाम वही हुआ जो होना था। लेकिन ऐसा जम्मू और कश्मीर के मामले म नही हुआ। उस वक्त के हिन्दुस्तान के नक्शे पर एक नजर डालना ही इस राज्य की अनोखी भौगोलिक स्थिति के महत्व को समझने के लिए काफी है, जिसकी सीमाए भारत और पाकिस्तान दोना से सटी हुई हैं, और पूव मे तिब्बत से भी और जो उत्तर मे सोवियत यूनियन से केवल अफगान क्षेत्र की एक सकरी पट्टी से ही अलग किया हुआ है। मैं पहले गिलगिट के उत्तरी प्रदेश मे अंग्रेजो की खास दिलचस्पी का उल्लेख कर चुका हू, अनेक इतिहासकारो ने इस सगीन सामरिक महत्व के क्षेत्र मे अपना प्रभुत्व जमाए रखने की अंग्रेजी की निरतर दढता को लेकर पूरे प्रबन्ध की रचना की है। दरअसल 1935 में ही अंग्रेजो ने गिलगिट एजेंसी को साठ साल के पट्टे पर लेने के लिए पिताजी पर काफी दबाव डाला था। स्थिति की उलझन इस बात से और बढ गई थी कि राज्य म विभिन्न क्षेत्रो मे अनेक जातिगत, सास्कृतिक और धार्मिक वर्गों के लोग बसे थे। इस प्रकार तराई म प्रधानतया सुन्नी मुसलमान थे और एक छोटा तबका, शियों सिक्खो और दुर्जेय कश्मीरी पडितो का था, जम्मू मे मुख्यतया डोगरा हिन्दू और एक उल्लेखनीय मुस्लिम घटक भी था, मुजफ्फरपुर से मीरपुर की पश्चिमी पट्टी म पजाबी मुसलमान, गिलगिट, स्कर्दू और कारगिल मे शिया मुसलमान और लद्दाख म बौद्ध लामा थे। यह असाधारण पच्चीकारी मेरे महान पूर्वज महाराजा गुलाब सिंह की दस्तकारी थी जिन्होने उन्नीसवी सदी के मध्य मे उत्कृष्ट कौशल के साथ नक्काशी करके राज्य का निर्माण किया था। जब तक पाकिस्तान का मसला महज एक दिमागी कसरत था, तब तक राज्य के लोग आमतौर पर एकजुट और शासक परिवार के प्रति वफादार बने रहे, हालांकि तीस और चालीस के दशको म शेख अब्दुल्ला के डोगरा विरोधी कटु आन्दोलन ने कश्मीर की तराई के सियासी जानकार तबका पर अपना असर डालने म सफलता पा ली थी। लेकिन जैसे ही अंग्रेजों के निकल जाने का इरादा पक्का हो गया, और पाकिस्तान का प्रादुर्भाव सुनिश्चित, वैसे ही सारी परिस्थिति बुनियादी तौर पर बदल गई। राज्य मे अदरूनी खलबली मच गई, भावी पाकिस्तान के पजाब और उत्तर पश्चिमी

सोमा प्रदेश के सीमावर्ती इलाके बेचैन हो उठे, तराई मे शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व मे, जो जवाहरलाल नेहरू के समथक लेकिन पिताजी के विरोधी थे, राजनैतिक आन्दोलन उठ खडा हुआ जबकि मुस्लिम कान्फ्रेंस पिताजी के पक्ष मे थी, लेकिन पाकिस्तान समथक भी थी।

परिस्थिति इतनी उलझी हुई थी कि समसामयिक वास्तविकताओ को पिताजी से काफी ज्यादा अच्छी तरह समझने वाला भी यदि कोई और व्यक्ति होता तो उसे भी एक साफ सुथरा और शातिपूण हल निकालना प्राय असभव जान पडता। जसा मैंने सकेत किया, यदि वे पाकिस्तान मे सम्मिलित हो जाते तो राज्य के हिन्दू इलाके उस समय उत्तरी भारत में व्याप्त साम्प्रदायिक पागलपन के दौर मे प्राय परिसमाप्त हो जाते, यदि विकल्प से वे पहले भारत मे सम्मिलित हो जाते, तो उनकी मुस्लिम प्रजा का जो राज्य की कुल प्रजा का पचहत्तर प्रतिशत थी, एक बहुत बडा हिस्सा उनके खिलाफ हो जाने का अदेशा था। सिंहावलोकन करने पर एक ही तकसगत हल जो सभवत निकल सकता था, वह यह कि दोनो नए राष्ट्रो के बीच राज्य के शातिपूर्ण विभाजन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने और उसकी अध्यक्षता करने के लिए पहल की जाती। लेकिन इसके लिए पारदर्शी राजनैतिक दृष्टि और अनेक वर्षों पहले से ध्यानपूवक योजना बनाने की जरूरत पडती। जैसा कि घटित हुआ, राज्य का विभाजन तो सचमुच हुआ, लेकिन जिस ढग से हुआ उससे बेइन्तिहा तकलीफ और खून खराबा भुगतना पडा और जिसकी वजह से भारत और पाकिस्तान के आपसी ताल्लुकात मे आज दिन तक जहर घुला हुआ है।

तेजी से बढते चले आते विभाजन के प्रति पिताजी की एक ही सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई और वह थी दोनों "डोमिनियनो' के साथ, जो नाम उस समय उन्हें दिया गया था, एक ठहराव समझौते (स्टैंडस्टिल एग्रीमेंट) पर हस्ताक्षर करने का प्रस्ताव पेश करना। पाकिस्तान ने समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए पर उसके तुरत बाद ही जरूरी वस्तुओ की पूर्ति मे दस्तदाजी करके राज्य पर जोर डालना भी शुरू कर दिया। उस समय राज्य मे आन वाले सचार के सारे प्रमुख साधन पाकिस्तान म से होकर आते थे, सडक कोहाला मे और रावलपिंडी और सियालकोट के दो रेल मार्गों से। इम तरह पाकिस्तान ने अपने मे शामिल होन के लिए पिताजी को मजबूर करने की गरज से एक तरह की आर्थिक नाकाबदी डाल दी, जबकि भारत ने समझौते पर हस्ताक्षर करन से पहले कुछ और स्पष्टीकरण मागे। मेहर चन्द महाजन के, जिन्होन उस वक्त राज्य के प्रधानमत्री का पद ग्रहण कर लिया था, एक पत्र के उत्तर मे जवाहरलाल नेहरू ने 20 अक्टूबर, 1947 को एक पत्र लिखा

प्रिय श्री महाजन,

मुझे आपका 18 अक्टूबर का खत मिला। कश्मीर को हाल ही में जो दिक्कतें पेश आइ, उनसे मैं वाकिफ हू, खासकर उसके प्रति पाकिस्तान ने जो रवैया अख्तियार किया है उसके बारे म। जब पिछली बार आप यहा आए थे तो हमने इस मामले पर भी बातचीत की थी। मैंने आपको इत्मीनान दिलाया था कि पाकिस्तान और वहा के लोगा के लिए हमारे दिलो में बहुत दोस्ताना जज्बात हैं और यह कि हम कश्मीर को उसकी खास जरूरत की चीजो को मुहैया कराने में खुशी स भरसक मदद करेंगे। हम यह जो करना चाहते हैं वह इसानियत के नात और इस वजह से भी कि जम्मू और कश्मीर के राज्य के लागो के भविष्य के बारे में हमारी गहरी दिलचस्पी है। हमारा अपना हित भी इसी में है। पर जार के साथ हमारा यह विचार है कि कश्मीर और वहा के लोगो पर कोई जोर जबदस्ती नही की जानी चाहिए और उन्हे अपने मन के मुआफिक काम करने दिया जाना चाहिए। हम इसी नीति को आगे बढाने का प्रयत्न करेंगे।

आप इस बात को समभते हाग कि इस वक्त भारत और कश्मीर के बीच सही आमदरफ्त कायम करने में कुछ मुश्किलें आ रही है। हम उम्मीद करत हैं कि हमारी मिली जुली कोशिशो से ये मुश्किलें जल्द ही दूर हो जाएगी। कश्मीर को जरूरी चीजें भेजने के बारे में हम यह जानना चाहगे कि दरअसल आपको चाहिए क्या ? आप यह जानते है कि भारत में भी चीजो की हालत नाजुक है और कम सप्लाई की वजह से बहुत सी जरूरी चीजो का राशन कर दिया गया है। उन्ह बचाकर दे सकना हमारे लिए आसान नही है। फिर भी ऐसी कोई खास चीज जिसकी आपको जरूरत हो, भेजने की हम पूरी कोशिश करेंगे। मुझ बताया गया है कि आपके लोगो को नमक और मिट्टी के तेल को खास जरूरत है। क्या आप मेहरबानी करके इसका कुछ अदाजा दे सकेंगे कि आपको तुरत क्या चाहिए ?

मदद के और तरीको के बारे में हमारी शुभकामना आपके साथ है लेकिन यह तो आप मानेंगे कि य हालात पर मुनस्सर होंगे। मेरा ख्याल है कि कश्मीर राज्य के कारकुनो और हमारी सरकार के बीच नजदीकी मेलजोल होना चाहिए जिससे आपसी भलाई के मुआमिलो म एक दूसर का हाथ बटाया जा सके।

आपका,

जवाहरलाल नेहरु

पुछ और मीरपुर क सीमावर्ती इलाको और सियालकोट क्षेत्र से जा खुफिया रिपोट आना शुरू हुई उनम यह कहा गया कि सीमा पार के आततायी दलो द्वारा हमारे ग्रामीणो का बडे पमान पर कत्लेआम किया गया, उन्ह लूटा गया और उनके साथ बलात्कार किया गया। मुझे याद है कि जैसे-जसे रफ्ता रफ्ता

हमे यह मालूम होता गया कि बाहर के इलाको मे हमारा नियन्त्रण खोता जा रहा है वैसे-वैसे हमारे ऊपर वह सगीन वातावरण छाता गया। कभी-कभी पिताजी इनमे से कुछ रिपोर्टों को मेरे हाथ मे दे देते थे और मुझसे कहते कि उन्हे डोगरी म मा को समझा दू और मुझे अब तक याद है कि अग्रेजी के "रैप" (बलात्कार) शब्द से निपटन मे मुझे किस कदर उलझन हुई थी, जिसके लिए स्वीकार करने योग्य कोई पर्याय ही न सूझता था। इस बीच पिताजी के, "भाई जान" इफेंदी समेत सब मुसलमान दोस्त, खिसक गए। मुझे व्यक्तिगत रूप से जो अफवाह सुनने म आई वो य कि अपने परिवार के साथ रावलपिंडी जान से पहले उन्होने पिताजी से मिलने की जी तोड कोशिश की, लेकिन उन्हे महल के भीतर आने की मजूरी नही मिली। मैं सोचना चाहता हू कि वे उस सकट को टालने मे हमारी मदद करने की आखिरी कोशिश करना चाहते थे जो तेजी से हमे अपनी गिरफ्त मे ले रहा था।

नए अपरिचित लोगो का एक दल महल मे दिखलाई पडने लगा। रामचद्र काक ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिनमे किसी स्वीकार्य समझौते के लिए कुछ सगत प्रयत्न करने की बौद्धिक क्षमता थी। उन्ह पिताजी द्वारा बर्खास्त और अपमानित किया गया। उनका स्थान औपचारिक रूप से एक पुराने डोगरा मत्री कागडा के जनरल जनक सिंह कटोच ने ले लिया, जिन्होने बीसियो बरस हमारे परिवार की बडी वफादारी के साथ सेवा की थी, लेकिन यह साफ था कि व महज एक पुतला थे। पजाब के किसी अनजान कोने से आकर रामलाल बत्रा उप प्रधान मत्री बन गए। एक और व्यक्ति जो पहले दिखलाई पडे थे और जिन्हे अगले कुछ महीनो मे होने वाली घटनाओ मे कुछ अधिक महत्व की भूमिका अदा करनी थी—वे थे मेहरचद महाजन, जो कागडा के ही थे और जो सरदार पटेल के आशीर्वाद से इस सगीन मौके पर प्रधान मत्री बन गए थे, यद्यपि बाद म यह स्पष्ट हो गया कि नेहरू जी के साथ उनकी कोई खास बनती न थी।

हमारे घर म जो क्रियाशीलता का केन्द्र था, वह था जहा पूर्वी खड के निचले गलियारे मे पिताजी बठा करते थे। सुबह के नाश्ते के बाद मुझे भी पहियो वाली कुर्सी पर वहा लाया जाता, मा भी आ जाती, दरबारी और सलाहकार भी इकट्ठे हो जाते और हम पूरे दिन वहा रेडियो सुनत, कभी-कभी लूडो, बैकगेमोन या रमी खेलते बैठे रहते। विक्टर रोजेन्थल वहा था और उसने पिताजी को ढाढस बधाने की भरसक कोशिश की, क्योकि वे उत्तरोत्तर पीछे खिच गए थे और महल छोड कर शायद ही कही जाते रहे हो। स्वामी सत देव अभी भी चश्माशाही घर मे सुखासीन थे, लेकिन जसे जस परिस्थिति बिगडती गई, उनका महल म आना, और पिताजी का उनके पास जाना धीरे धीर कम होता गया। मैं सोचता हू कि पिताजी को यह चरितार्थ हान लगा था कि स्वामी जी का महान् तान्त्रिक शक्तियो

से सम्पन्न होने का जो दावा था, वह अतिशयोक्तिपूर्ण था, और उनका पुराना अविश्वास फिर से दृढ़ बनने लगा था। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

जम्मू और कश्मीर राज्य की सेना, जिसमें नौ पैदल सेना बटालियन, अंग रक्षक रिसाला, और दो पर्वतीय तोपखाने थे, गिलगिट से लेकर मीरपुर तक राज्य की सैकड़ों मील की सीमाओं पर छोटी छोटी टुकड़ियों में बिखेरकर फैला दी गई थी। इस सेना का, जबसे एक शताब्दी पहले महाराजा गुलाब सिंह ने राज्य की नींव रखते समय उसकी रचना की, तबसे घर में भी और बाहर भी स्पृहणीय फौजी रिकार्ड रहा है, उसके हिन्दू और मुसलमान सैनिकों ने, जिनमें कांगड़ा के डोगरा और नेपाल के गोरखा शामिल थे, बीसियों बरस तक अनुकरणीय साहस और परस्पर मैत्री का प्रदर्शन किया था। लेकिन अब एक नया तत्व प्रवेश कर गया था, जिसका घातक महत्व न तो पिताजी जान पाए और न उनके सलाहकार ही। साम्प्रदायिकता का विषाणु जिसका प्रकोप सारे उपमहाद्वीप में फैला था, हमारे राज्य को बिना दूषित किए कैसे छोड़ सकता था। सेना के मुस्लिम अंग के लिए प्रमुख भर्ती का इलाका मीरपुर और पुंछ के प्रदेश रहे हैं, जहां के राजपूत मुस्लिमों के अनेक वर्गों में हिन्दुस्तानी सेना के लिए भी हजारों रंगरूट भर्ती किए जाते रहे हैं। पाकिस्तान बनते ही वे सब रेजीमेंट उस देश में चले गए और इन इलाकों के लोग भी नए राष्ट्र के सीधे सान्निध्य में रहने और पश्चिमी पाकिस्तान से धार्मिक बंधनों और पारिवारिक संबंधों में बंधे रहने के कारण, अपनी परंपरागत वफादारी के बावजूद, स्वभावतया पिताजी के विपरीत झुक गए थे। इस प्रकार राज्य की सेना न केवल खतरनाक ढंग से जरूरत से ज्यादा फैला दी गई थी, वरन् उनमें से एक तिहाई असलियत में अपनी वफादारी दूसरी तरफ बदल चुके थे और दल-बदल के लिए मौके की तलाश में थे। इसके साथ ही पाकिस्तान के निकट के कुछ इलाकों में असंतोष था जो विद्रोह बन गया था, और जिन्ना का एकनिष्ठ पक्का इरादा कि कश्मीर उस नए राज्य के ताज का, जिसे उसने उपमहाद्वीप से प्रायः अकेले दम तराश कर निकाला था, उज्ज्वलतम रत्न बनेगा। सारी परिस्थिति को सुलगाने के लिए बस एक जलते हुए पलीते की जरूरत थी। यह जम्मू और कश्मीर पर कुख्यात कबाइली हमले के रूप में क्रूर तीव्रता के साथ आ पड़ा।

तूफान अंत में उस वर्ष 25 अक्टूबर को उठ खड़ा हुआ। वह दशहरे का दिन था और विश्वास तो नहीं था, लेकिन श्रीनगर में वार्षिक दरबार जैसा होता आया था, सचमुच वैसा ही हुआ। तब तक सीमाओं पर भारी गड़बड़ी मच गई थी, और पिताजी ने ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह जामवाल को, जिन्होंने जनरल स्काट से लेकर जम्मू और कश्मीर राज्य के सेनाध्यक्ष का पद सम्हाल लिया था, उड़ी भेजकर 'आखिरी आदमी और आखिरी गोली' तक लड़ने की हिदायत दी। मैं

उस वक्त मौजूद था जब पिताजी ने उन्हें बुलवाया और डोगरी मे कहा कि परिस्थिति बहुत नाजुक है और उन्हे आक्रमणकारियो से आखिर तक लडना है। राजेन्द्र सिंह मितभाषी व्यक्ति थे, और मुझे याद है कि कैसे हिदायतें मिलने पर उन्होंने पिताजी और मा को सलामी दी, मेरी ओर मुस्कराए और चुस्ती से कमरे के बाहर चले गए। आगे जो हुआ वह फौजी इतिहास का अग है, साहस और समपण का एक ऐसा आख्यान, जो विश्व के किसी आख्यान के समकक्ष रखा जा सकता है।

राजेन्द्र सिंह उडी डोमेल की सीमा के लिए 22 अक्टूबर की रात को चल पडे और, अविश्वसनीय बहादुरी के साथ किए गए कुशल काय साधन के द्वारा उन्होंने आगे बढते हुए दलो को, इसके पहले कि वे बारामुला पहुच सकें, तीन महत्वपूर्ण दिनो तक रोक रखा, और इस तरह उतना समय प्राप्त कर लिया जो अधिमिलन अभिलेख (इस्ट्रूमेट आफ एक्सेशन) पर हस्ताक्षर होने और भारतीय सेना के हवाई जहाज द्वारा श्रीनगर तक पहुचने के लिए चाहिए था। हताशा की हद तक दुश्मनो की सख्या बहुत ज्यादा होते हुए, उनके अपन मुसलमान अफसरा और सनिको के खिलाफ हो जाने पर भी बुरी तरह जख्मी ब्रिगेडियर ने हठ की कि एक रिवाल्वर हाथ म देकर उन्हे वही सडक किनारे ही छोड दिया जाए क्योंकि उन्होने पिताजी से यह प्रण किया था कि दुश्मन उनकी लाश पर से होकर ही आगे बढ सकेगा। अपनी उत्कृष्ट वीरता और त्यागपूर्ण काय के लिए उन्ह मरणोपरात महावीर चक्र प्रदान किया गया और इस प्रकार स्वतत्र भारत म वीरता के लिए पुरस्कार जीतने वाले वे पहले व्यक्ति हुए। सौ वष से कुछ ही अधिक समय पूव जनरल जोरावर सिंह ने मध्य एशिया मे शानदार डोगरा युद्ध क्रियाओ के द्वारा सैनिक इतिहास का सजन किया था, और ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने एक और वीरोचित काय द्वारा डोगरा शासन की शती का समापन कर दिया। उडी जाने वाली सडक पर जहा उन्होंने आखिरी मोर्चा लिया था और अपने राजा की आज्ञा का पालन करते हुए जब उनकी गोलियां समाप्त हो गइ तब दुश्मन की गोलिया के शिकार होकर गिर गए थे, उस स्थल पर अब एक सादा किन्तु हृदयस्पर्शी स्मारक खडा है। इसी बीच एक और वरिष्ठ अफसर, ब्रिगेडियर घ सारा सिंह, जो गिलगिट सीमा प्रान के गवनर थे, गिलगिट स्काउटा द्वारा, जिन्होंने अपने अग्रेज कमाडेन्ट मेजर ब्राउन के अधीन वफादारी बदलकर पाकिस्तान का दे दी थी, कद कर लिए गए थे।

इन सब की खबर हमे बहुत बाद को लगी। उस घटनापूण दिवस मुझे महल मे प्राय अकेला ही छोड दिया गया था जबकि पिताजी और स्टाफ क सभी सदस्य केनम के ऊपर बने नगर महल के खूबसूरत हॉल मे, जिसकी पपियरमशी की बनी छत शानदार ढग से सजाई गई थी, दरबार म उपस्थित थे। एकाएक बतिया

गुल हो गई— आक्रमणकारियों ने बिजली घर पर कब्जा करके उसे तोड़ फोड़ डाला, जो उस समय एक ही था और डोमेल से श्रीनगर जाने वाले मुख्य मार्ग पर जिनके साथ साथ आक्रमण भी आगे बढ़ रहा था, माहुरा पर स्थित था। घुप्प अंधेरे में मैं बिल्कुल अकेला अपने कमरे में पहिएदार कुर्सी पर बैठा था। कुछ ही मिनटों बाद उस भयानक स्तब्धता को चीरते हुए और खून को नसों में जमाते हुए एकाएक सियार चिल्ला उठे। बदनसीबी से भरी उनकी बेसुरी आवाज़ पहले उठी और गिरी और फिर एक विक्षिप्त आरोह में उठती चली गई। मौत और विनाश तेजी से श्रीनगर की ओर बढ़ते चले आ रहे थे, हमारी चिकनी चुपड़ी बनावटी दुनिया हमारे इर्द गिर्द ढह रही थी, नियति के चक्र पूरी परिधि घूम चुके थे। तभी अचानक क्रियाशीलता का एक झोंका आया। इसके बाद की घटनाएं मेरे मस्तिष्क में सब गड्डमड्ड हैं—नौकर पैट्रोमेक्स लैम्प लिए पागलों की तरह इधर-उधर दौड़ रहे हैं, पिताजी का राख की तरह सफेद और गंभीर चेहरा लिए हुए दरबार से लौटना, उन्हें जम्मू चले जाने को राजी करने के लिए वी० पी० मेनन की श्रीनगर को नाटकीय हवाई दौड़, पिताजी की आनाकानी, लेकिन मेनन के हठ से अंत में राजी हो जाना, और तब 27 तारीख को काफी रात गए श्रीनगर से लंबा दुःस्वप्न जैसा निर्गमन।

उस संकट की घड़ी में मां ने अपार धीरज और चतुरता का परिचय दिया। उप प्रधानमंत्री की पत्नी श्रीमती बत्रा को बेहोशी के अनेक दौरे आए, लेकिन मां ने सभी महिलाओं और स्टाफ के परिवारों को इकट्ठा किया, और मेरी आइरिश आया नर्स मिसेज स्टैवट की मदद से उनको खाना खिलाने और रात गुजारने का प्रबंध किया। अंत में काफिला चलना शुरू हुआ। पिताजी ने अपनी कार स्वयं चलाई उनकी बगल में विक्टर रोज़ेंथल और पिछली सीट पर भरे रिवाल्वर लिए दो स्टाफ के अफसर बैठे। उनके पीछे कई कारों में मां और उनके साथ महिलाएं चलीं। भारी प्लास्टर के सांचे की वजह से मैं इस हालत में नहीं था कि कार में घुस सकूं, इसलिए मेरी पहियेदार कुर्सी को उठाकर उनमें से एक स्टेशन वैगन के पीछे रख दिया गया जिन्हें पिताजी अपने शिकारी सफरों में इस्तेमाल करते थे। आततायी बड़ी संख्या में सीमा पार करके डाका डालते, लूटमार और बलात्कार करते घुसते चले आ रहे थे और अफवाह थी कि जम्मू का रास्ता बीच में काट दिया गया है और रास्ते में हमारी घात लगाई जा सकती है। महल के पहरेदारों के सिवा न कोई और सशस्त्र रक्षक दल हमारे साथ नहीं था और जब हम चले तो हम सहारा देने के लिए बस अपना ईश्वर विश्वास ही था। रास्ते में अनेक स्थलों पर ठहरते-ठहरते यात्रा पूरी होने को ही नहीं आती थी। मैं एक बेचैन-सी नींद में सो गया, इस अंध आशा के साथ कि जब उठूंगा तो लूट को अपने कमरे के आराम और सुरक्षा के बीच पाऊंगा और यह सारा घटनाक्रम केवल एक

दुस्वप्न ही लगेगा। लेकिन जब-जब मेरी नींद टूटी, रात को और अधिक ठंडी और अंधेरी पाया और तभी अचानक मेरा कूल्हा दर्द से फड़क उठा।

उस भयानक सारी रात हम धीरे धीरे, रुकते रुकाते मोटरों पर चलते रहे, मानो उस सुहावनी घाटी को छोड़ने का जी नहीं चाहता हो जिसमें हमारे पूर्वजों ने युगों तक राज किया। जैसे ही पौ फटी हमारे काफिले ने 9000 फुट ऊंचे बनिहाल दर्रे को रेंगते रेंगते पार किया। जम्मू से साठ मील पर बसी छोटी बस्ती, कुद पर जब हम रुके, तो हमने देखा कि एक क्रीम रंग की कार हमारे संजीदा जुलूस के साथ आकर मिल गई है। वह स्वामी सतदेव थे जिनकी अलौकिक शक्तियों में आक्रमणकारियों से मुकाबिला करने की सामर्थ्य सम्मिलित नहीं थी। विक्टर ने बाद में मुझे बताया कि उस पूरे सफर में कार चलाते समय पिताजी के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। जब दूसरी शाम वे अंततोगत्वा जम्मू पहुंचे और महल पर जाकर रुके तो उनके मुंह से एक ही वाक्य निकला— 'हमने कश्मीर खो दिया।"

उसके बाद के हफ्तों की याद धुंधली है। मेरा चलना फिरना बंद ही रहा क्योंकि मेरे कूल्हे में सुधार के कोई आसार नजर नहीं आए और जैसे जैसे महीने पर महीना बीतता गया, मुझे यह खौफनाक अहसास होने लगा कि शायद फिर कभी मैं चलने के काबिल नहीं हो पाऊंगा और सारी जिंदगी अपंग ही बना रहूंगा। बाहर से मैंने प्रसन्न मुद्रा बनाए रखी जिससे लोगों को ताज्जुब होता था, लेकिन गहरे भीतर वह कुतरने वाला डर बढ़ता गया, और अक्सर मैं काफी रात गए तक हताश परिवेदना से अभिभूत हो आंखें खोले पड़ा रहता। तब तक पाकिस्तान का आक्रमण पूरे जोर पर था। मुफ्ती में पाकिस्तानी फौजियों की मदद और शह पाकर कबाइली घाटी के भीतर उमड़ आए थे और श्रीनगर पहुंच कर हवाई अड्डे पर कब्जा करने में करीब करीब सफल ही हो गए थे। अगर उन्होंने ऐसा कर लिया होता तो घाटी मिट चुकी होती क्योंकि भारतीय फौज के लिए, सीधी बात है, इतना वक्त नहीं था कि वे सड़क द्वारा आ पाते। राजेन्द्र सिंह और उनके साथियों द्वारा किए गए मर मिटने वाले मुकाबिले ने आक्रमणकारियों को तीन संगीन दिनों तक रोके रखा और इस प्रकार उस एतिहासिक हवाई उड़ान का चालू होना संभव बनाया। भारतीय वायु सेना और थल सेना अदम्य साहस और त्याग के साथ पहले तो श्रीनगर को एकदम कगार पर से बचा लेने में और फिर जवाबी हमला बोलने में सफल हुई।

एक ब्रिगेडियर परांजपे, जनरल कुलवंत सिंह के समग्र नायकत्व में जम्मू छत्र की फौज का कमान कर रहे थे और ये लोग पिताजी के साथ एक प्याला पीने और विचार विमर्श करने के लिए अक्सर ही महल में चले आते थे। उस समय के पटियाला नरेश, महाराजा यादवेन्द्र सिंह भी पटियाला राज्य सेना का

एक दल लेकर आए थे। व आकर्षक व्यक्ति थे, खडे होने पर साफे सहित छह फुट छह इच लेकिन उनकी मुखाकृति कोमल थी और वे बडे मधुर स्वर म बात करते थे, जो उनके विकट बहिरंग को झुठलाती सी जान पडती थी। बातचीत मे 'एल आफसी" (लाइन आफ कम्यूनिकेशन, अर्थात सचार की रेखा), "एच क्यू" (हैडक्वाटर्स, अर्थात् प्रधान केंद्र), "पी ओ एल' (पेट्रोल, आयल एड लुब्रीकेंटस अर्थात पेट्रोल तेल और स्नेहक, सी ओ (कमाडिंग आफीसर अर्थात कमान करने वाला अधिकारी) जैसी सक्षिप्तिओ का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। जम्मू प्रदेश मे आक्रमणकारियो की प्रगति महत्वपूर्ण थी, मीरपुर, भिंबर, राजौरी सीमा के सभी बडे महत्व के नगर हाथ से जा चुके थे और पुछ का महत्वपूर्ण शहर भी घिर चुका था। पिताजी यद्यपि ऊपरी सतुलन बनाए हुए थे लेकिन पराजय की हर खबर से वे अन्दर ही अन्दर सिकुड जाते, मानो उनके भीतर का कोई अश मर चुका हो। केवल एक बार जब देवा और बटाला के जुडवा गाव, जो चिब और भाऊ राजपूतो के निवास रहे हैं, गिरे, तब मुझे उनकी आखो मे आसुओ की झलक दिखाई पडी।

मा शरणार्थियो के राहत काय मे बहुत सक्रिय थी। पाकिस्तान द्वारा कब्जा किए गए क्षेत्रो से हजारो पुरुष, महिलाए और बच्चे जम्मू मे उमडते चले आ रहे थे और उन्हे शहर के आसपास बनाए गए शरणार्थी शिविरो म खाना और रहने की जगह दी गई थी। ये लोग तो फिर भी भाग्यवान थे हमले के साथ साथ जो नृशस हत्याकाड और मारकाट मची उसम कई हजार तबाह हो गए। शायद ही कोई एसा परिवार बचा हो जिसके आधे या आधे मे अधिक सदस्य इस कत्लेआम के शिकार न हुए हो, और एस अनेक मामले हुए जिनमे सयुक्त परिवार मे से एक अकेला बच्चा ही बच पाया। दुख और पीडा अकथनीय थी और ऐसे ही मौके पर मा का साहस और उनकी आश्चयजनक प्रबल सगठन क्षमता प्रकट हुई। अक्सर वे सारा दिन एक शिविर स दूसरे शिविर मे काफी रात गए तक राशन और कपडे बाटती गुजार देती। प्राय व अपना पसा खच कर शरणार्थियो के बीच सीधे सादे विवाह करा देती और इस प्रकार टूटे परिवारो को कुछ सुकून मिलता। वस्तुत उन्हे और उनके साथ काम करनेवाले दल को रहम के फरिश्ते माना जाने लगा था और आज भी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्हे उस समय असहाय और भयग्रस्त शरणार्थियों के लिए की गई उनकी जबदस्त हमदर्दी की याद है। उन्होने महिला स्वय सेविकाओ का एक दल भी सगठित किया जिसे महारानी सेवा दल" के नाम से जाना जाने लगा और सेना अधिकारियो से उन्हे परासैन्य प्रशिक्षण दिलाने की व्यवस्था भी की। यह दूसरा अवसर था जब उन्होंने राहत काय किया—पहली बार दूसरे विश्व युद्ध के दौरान युद्ध सहायक समिति म किया था—और प्रतीत होता है कि एसी ही परिस्थितियो म उनका सर्वोत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रस्फुटित

होता था। इसके विपरीत पिताजी उन दिनो महल के बाहर विरले ही कभी निकले हालाकि कभी कभार किसी शरणार्थी शिविर मे या सेवादल के किसी समारोह मे उन्हे खीच लाने मे मा को कामयाबी जरूर हासिल हुई।

इस अवधि मे मेरे लिए जो सबसे अधिक अविस्मरणीय आकस्मिक मुलाकात हुई, वह थी पं० जवाहरलाल नेहरू से मेरी पहली भेंट। पहली बार जब वे जम्मू आए थे, तो वे थोडे समय के लिए महल आए थे, लेकिन बहुत व्यस्त रहे और मैंने पिताजी से उनसे मुलाकात करने का मौका न मिलने की शिकायत की थी। दूसरी बार जब वे आए तो पिताजी उन्हे मेरे कमरे मे ही ले आए। एक ऐसे व्यक्ति से मिलना जो मेरे लिए एक प्रकार से देवमूर्ति बन चुका था, एक महत्वपूर्ण क्षण था। जैसे ही उन्होने कमरे मे प्रवेश किया, दो बातो ने मुझे प्रभावित किया, एक तो जिस चुस्ती से वे चलते थे उसने और दूसरे उस अविस्मरणीय मुस्कान ने जो ध्यानगर्भित होते हुए भी तह तक इसानियत से भरी थी। पिताजी ने मेरा परिचय देते हुए कहा, "टाइगर आपका बहुत बडा प्रशसक है।" उन्होने मुझसे पूछा कि कैसे हो और अपने स्वभाव के अनुरूप क्षमा मागी कि पहली बार जब वे आए थे तो मुझसे मिल नही सके थे। मैं इतना अधिक अभिभूत था कि मेरे मुह से कोई बहुत बुद्धिमानी की बात निकलना मुमकिन नही था और मैं बस उनसे उनकी "आत्मकथा" की अपनी प्रति पर हस्ताक्षर करने को कहकर ही रह गया। वे कमरे मे बस तीन मिनट ही रहे, लेकिन वह क्षण मुझमे आज तक बसा है।

सरदार वल्लभभाई पटेल भी राज्य सचिव वी० पी० मेनन के साथ दो या तीन बार जम्मू आए और दरअसल उन्होंने ही यह महसूस किया कि जिस रफ्तार से मैं चल रहा था, उससे मेरे अच्छे होने की बहुत कम सभावना थी। उन्होने सुझाव दिया कि मुझे इलाज के लिए अमेरिका भेज दिया जाए, एक ऐसा प्रस्ताव जिसका शुरू मे मा ने घोर विरोध किया। सरदार मेरे माता पिता का बहुत ख्याल रखते थे और उनसे बडी मित्रता थी, और अत मे उन्होने और पिताजी ने मिलकर मा को इस बात के लिए राजी करने मे सफलता पा ली। मैंने इस विचार का स्वागत किया, केवल इसलिए नही कि उससे मेरे अच्छे होने की आशा थी, बल्कि इसलिए भी कि तनाव और सघर्ष का वह सारा वातावरण मुझे बडा अवसादकारी लग रहा था और मैं उससे निकल भागने को उत्सुक था।

सरदार ने मेरे इलाज के खर्च के लिए विदेशी विनिमय के एक विशेष नियतन की व्यवस्था की और तय हुआ कि राज्य सेना के एक वरिष्ठ गोरखा अफसर, ब्रिगेडियर एन० एस० रावत और पिताजी के एक सहायक, कप्तेन रजीत सिंह मेरे साथ जाएगे। विक्टर राजेयस से, जो अमेरिका मे सपर्क रखने वाले पिताजी के एक मित्र ही थे, कहा गया कि वे पूछताछ शुरू करें और न्यूयार्क के किसी उपयुक्त अस्पताल मे मुझे भर्ती कराने की व्यवस्था करें। कुछ ही हफ्तों

के भीतर उन्होंने यह काम कर दिया और अंत मे दिसबर के आखिरी हफ्ते मे मेरे जम्मू से प्रस्थान की तारीख भी निश्चित कर दी गई। जाने से पहले मैंने मा से कहा कि मेरे सभी कपडे शरणार्थी बच्चो का बाट दिए जाए। बिस्तर पर पड पडे य कपडे छोटे पड गए थे और उन्हे जमा किए रखने की काई तुक नही थी। एक शुभ मुहूत म मुझे शाम को महल छोडना पडा और रात सतवारी छावनी म गुजारनी पडी। जाने स पहले मा ने मुझे आसूभरी बिदाई दी, पिताजी भी द्रवित हो गए थे लेकिन स्वभावतया वे कडी मुद्रा बनाए रहे। हालाकि किसी ने ऐसा कहा नही लेकिन हमारे मन के अतस्तल म यह अनकही आशका थी कि शायद हम एक दूसरे से फिर कभी न मिल पाए।

चाटर किए हुए डी सी 3 हवाई जहाज का बबई पहुचने म करीब करीब पूरा दिन लग गया और दो दिन बाद हम तीनो—रावत रजीत और मैं, बबई हवाई अड्डे पर चार इजिन वाले टी० डब्ल्यू० ए० स्काईमास्टर पर सवार हो गए। मुझे एक एबुलैंस मे हवाई जहाज तक लाया गया और फिर उठाकर केबिन के भीतर ले जाकर दो सीटों पर बीच मे बहुत सी गद्दिया रखकर और एक तरह का बिस्तर बनाकर रख दिया गया। सीढियो पर उठाकर ले जाते समय मुझे जो विचित्र अनुभव हुआ उसकी मुझे याद है, अपने देश को छोडने के दु ख के साथ मिला-जुला सम्मुख फैली हुई अजनबी यात्रा की उत्कठा का भाव। शीघ्र ही अम रीकी चालक दल हवाई जहाज मे प्रविष्ट हुआ और कप्तान ने आकर मुझसे मेरी कुशलता पूछी। हवाई जहाज शाम को पाच बजे के आसपास उडा। हमारा पहला विराम खाडी क्षेत्र म कही हुआ और दूसरा काहिरा म। वहा से उडकर हम रोम पहुचे जहा एक घनघोर वर्षा तूफान मे हम उतरना पडा। सवारिया अदर-बाहर आती जाती रही लेकिन मैं बिल्कुल हिलने डुलने म असमथ था और अपनी खिडकी से ही सारी गतिविधियो का निरीक्षण करता रहा। फिर हम उडकर पेरिस गए जहा हम अधेरा होने के बाद पहुचे और आकाश से शहर दीप सज्जित कालीन-सा लग रहा था। पेरिस म हम आयरलड स्थित शैनान पहुचे और वहा स अटलाटिक पार करना प्रारभ किया जो उन प्रोपेलर हवाई जहाज के दिनो मे कभी खत्म न होने वाला जान पडता था। दो स्थल बिंदुओ के बीच का छोटे से छोटा रास्ता शैनान स न्यूफाउडलड मे गैंडर तक पडता था और उसे तय करने म भी पूरे दिन का अधिकाश बीत गया। हम गैंडर सूयास्त के समीप पहुचे और वहा से अतिम कदम न्यूयाक म रखा।

न्यूयाक म तभी साठ वर्षों म सबसे अधिक हिमपात हुआ था और जब हमने 31 दिसम्बर की शाम देर से जमीन छुई तो शहर म दो फुट से ऊपर बफ जमी थी। हमारे हवाई जहाज के दरवाजे खुलते ही चीरती हुई ठडी हवाओ ने प्रवेश किया। विक्टर राजयल की प्रतिनिधि एक मिसज टून हवाई अड्डे पर मौजूद थी और

जब लम्बी औपचारिकताए समाप्त हो गईं तब एक एबुलस हवाई जहाज तक आई, एक स्ट्रेचर केबिन के भीतर लाया गया, मुझे उठाकर उस पर रखा गया और नीचे गाडी मे लाया गया। एक समाचार फोटोग्राफर मेरी पहुच को अकित करने वहा मौजूद था। रजीत मेरे साथ बैठे, मिसेज टूल सामने ड्राइवर के साथ बैठी और हम शहर मे अपनी लबी यात्रा पर चल दिए, सायरन चीखता रहा, और हिमपात के कारण दष्टि कुछ ही फुटो तक सीमित रह गई।

तो इस तरह, जब 1947 का अत समीप आया, मैंने स्वय को घर से आधी दुनिया की दूरी पर एक अजनबी देश मे जीवन मे पहली बार हिमपात देखते हुए पाया, क्योकि मैंने कश्मीर मे ठड की ऋतु कभी गुजारी ही न थी। जैसे जसे एबु लैंस अपने गत य की ओर भागती चली, मेरा मस्तिष्क पीछे अब तक की जि दगी मे हासिल किए गए तजुर्बों के ऊपर से गुजरने लगा, मेरी बचपन की, स्कूल की और पिछले दो सालो की अजीबो गरीब घटनाए। क्या मुझे फिर कभी भारत के या माता पिता के दशन हो पाएगे ? उस राज्य का क्या होगा जिसका मैं ज म से युवराज था ? क्या मैं फिर कभी अपने पैरो चल सकूगा, या मुझे शेष जीवन एक असहाय अपग के रूप मे ही सजा भुगतनी पडेगी ? उस क्षण तो भविष्य अधकार मय जान पडता था, जिससे कोई छुटकारा दिखलाई नही देता था। केवल एक चीज जिसने मुझे सजीव रखा, वह था देवी की पूजा का मत्र जो मा न कई बरस पहले मुझे सिखाया था, और आवश्यकता पडने पर और विपत्ति म जिसे कभी न भूलने के लिए मा ने मुझे बडी सचाई ने साथ आदेश दिया था। उ होने सिंह वाहिनी दुर्गा की एक छोटी सी तस्वीर भी दी थी, सिंह पर सवार अष्टभुजा देवी की, जो भौतिक शक्ति पर दैवी शक्ति के आरोहण का शक्तिशाली प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व करती थी। उस लबी उडान के दौरान मैं उसे बराबर पकडे रहा, और उस निराशा की घडी मे दिलासा की वह एक मात्र आधार थी।

अब हम यूयाक म प्रवेश कर रहे थे, और मुझे उस महान् नगरी की पहली झलक मिली जो उस अवधि से कही अधिक समय तक मेरा घर बनने का थी जिसकी मैंने कल्पना की थी, उसकी विशाल इमारतें उ मत्त बर्फीले तूफान को भेद कर ऊपर जाती हुई और उनके शीष बफ के भवर म खोत हुए। लगभग दो घंटे चलने के पश्चात एबुलैंस अत मे 321 पूव, 42वी स्ट्रीट पर रुकी, जहा विनेप मीरफाड के लिए अस्पताल बना था। रात बहुत हो चुकी थी और पहल तो जान पडा कि वहा कोई नहीं है, लेकिन शीघ्र ही एक व्यक्ति आ गया और मुझे एबुलैंस से बाहर उठाकर अस्पताल के बरामद म लाया गया और पहिएदार कुर्सी पर लिफ्ट मे कर दिया गया। पाचवी मजिल पर लिफ्ट रुका और मुझे पहिएदार कुर्सी पर ही बरामदे के अत तक ले जाकर कमरा न० 509 मे ले जाया गया। जब तक मुझे अपन बिस्तर पर लिटाया जाए और एबुलस के परिचारक बिना

हो, तब तक आधी रात होने को आई। उन सब को नव वर्ष की पार्टियों में जाना था और स्वभावतया वे निकल भागने की जल्दी में थे। रजीत मेरे कमरे के अगले वाले कमरे, नं० 508 में थे और वे भी कुछ देर के लिए अपने कमरे में चल गए। अंततोगत्वा मैंने अपने को एकाकी पाया, दुर्गा की तस्वीर और मेरे माता पिता का एक फोटो मेरे अस्पताल के पलंग की बगल में एक ऊँची मेज पर रखे थे। दूर किसी बड़ी घड़ी की मध्यरात्रि की बारह की घंटियां बजाने की आवाज मुझे सुनाई दी। *एक और नव वर्ष का आरंभ हो गया था और मेरे लिए एक नए जीवन का।*

छह

अमेरिका एक विस्मयकारी देश है, चाहे वह एक अस्पताल के कमरे से एक भारतीय किशोर की नजरो से ही क्यो न देखा गया हो। उस सारे वातावरण मे कुछ अलग ही बात थी, एक ताजगी और बेतकल्लुफी की हवा। शुरूआत मे नर्सों, डाक्टरो और वार्ड परिचरो ने मेरी ओर निष्कपट कौतूहल से देखा, क्योकि "डेली मिरर" मे मेरे आगमन की फोटो प्रकाशित हो चुकी थी। जाहिरा तौर पर भारतीय नरेशो के बारे मे तरह तरह की अनोखी कहानिया कही सुनी जा रही थी और इसलिए जब उन्होंने सुना कि मैं अस्पताल मे भर्ती हो गया हू तो उन्होंने शायद यह सोचा था कि कोई विचित्र बात दिखलाई पडेगी। वे सभी बडे सौहार्द पूर्ण थे और उन्हें यह जानकर सुखद आश्चय हुआ कि मैं अग्रेजी बोल सकता हू। वास्तव म मैं उनमे से बहुतो से बेहतर अग्रेजी बोल लेता था, और मेरे कानो को उस अजीब-से अमरीकी लहजे स और कुछ प्रयोगो से मुझे विचित्र-से लगे, जैसे बिस्कुटो के लिए "क्रक्स" और पेस्ट्रियो के लिए "कुकीज" परिचित होने म कई हफ्ते लगे।

मेरे पहुचने के दूसरे दिन डा० फिलिप डी० विल्सन मुझसे मिलने आए। डा० विल्सन उस समय के अमेरिका के जाने माने चोटी के विकलाग सर्जनो मे एक थे और सचमुच महान डाक्टरो के सदृश ही उनकी उपस्थिति मात्र ही रोगी मे विश्वास की चेतना जागृत कर देती थी। उन्होंने मुझसे अनेक प्रश्न किए और तब निर्देश दिए कि मेरे पैर का प्लास्टर निकाल लिया जाए और एक्स रे, रक्त और अन्य टेस्टो की सामान्य शृखला ले ली जाए ताकि वे इलाज की रूपरेखा निर्धारित कर सकें। प्लास्टर की जगह मेरे पैर मे बाधकर आठ पौंड का वजन तानकर लटका दिया गया ताकि जोड अपने स्थान पर बना रहे। महीना प्लास्टर मे बधे रहने के कारण मेरा घुटना और टखना बिल्कुल जकड गए थे और मैं इन्हे के जोड को बिल्कुल ही नही हिला पाता था। जोडो को ढीला करने में मदद देने के लिए मुझे रोज सुबह अस्पताल के एक गरम किए हुए स्विमिंग पूल मे ले जाया जाता था, जिसका मासपेशियो की क्षीणता की चिकित्सा म विशेष प्रयोग किया

जाता था। छह महीनो के बाद पहली बार जल मे प्रवेश एक सुखद अनुभव था, और मुझे लगा कि मैं आराम से हिल डुल सकता हू। धीरे धीरे मैं अपने पैरो पर वजन डालने लगा, और कुछ दिन बाद मुझे कमरे मे बसाखियो के सहारे खडे होने की इजाजत मिल गइ, आधे बरस लेटे पडे रहने के बाद एक असाधारण अनुभव।

पहुचने के शीघ्र बाद ही हमने एक रेडियो खरीद लिया था और मैं इस बात से मोहित था कि बडी सख्या म स्टेशन उपलब्ध और सुबह छह बजे से लेकर मध्य रात्रि तक प्रोग्राम अठारह घटे चलते रहते थे। सगीत, नाटक, बातचीत, समाचार और खेल विवरणो का एक चकित कर देने वाला क्रम था जिनमे से मैंने शीघ्र ही अपनी पसद के कायक्रम चुन लिए जो प्रधानत पाप सगीत के थे। वस्तुत सगीत ने एक बार फिर मेरे जीवन की एक बडी परीक्षा की अवधि मे महत्वपूण भूमिका अदा की, और हालाकि वह भारतीय शास्त्रीय सगीत से एक दम भिन्न था तो भी मैंने पाया कि किसी भी रूप मे हो, सगीत मे मन को शाति प्रदान करने और उसे निराशा या उससे भी खराब स्थिति मे फिसल कर गिरने से बचाने की विलक्षण क्षमता है। बाद म एक टेलीविजन सेट भी प्राप्त कर लिया गया जिसन अस्पताल की मेरी जिन्दगी मे एक नया आयाम जोड दिया। वहा दो और अतिरिक्त आकषक थे। एक तो तीसरी मजिल पर, उन रोगियो के लिए जो ले जाए जा सकते थे, सप्ताह मे एक बार फिल्म दिखाई जाती थी और दूसरा छठी मजिल पर एक धूप सेकने की जगह, सालेरियम थी, एक काच के फलको स घिरा कमरा, जिसमे पौधो और वक्षा के बहुत से गमले रखे थे। वहा जाकर बफ के ठिठुरानेवाले प्रकोप का सामना किए बगर धूप की गर्मी का मजा लेना बडा अद भुत था।

अमरीकियो की असाधारण मैत्री भावना का सबूत मेरे पहुचने के तुरत बाद ही मिलन लगा। न केवल अस्पताल के पूरे स्टाफ का व्यवहार मेरे प्रति विशष रूप से मधुर था बल्कि अनेक मुलाकाती, जिनम कुछ पुराने भारतीय सपक और रोचेस्टर के दोस्त भी शामिल थे मुझे देखने आने लगे। उनमे एक मध्य आयु के पति पत्नी नारिस और डॉरोथी हावनेम, और एक पुराने भारत के कर्मचारी मेजर जान नीदरमोर और उनकी पत्नी आर्लीन भी थे। जब मैं पीछे देखता हू तो मुझे आश्चय लगता है कि उन सबो ने मुझमे दोस्ती पैदा करने के लिए कितना कुछ किया। वे हर दूसरे या तीसरे दिन आ जाते, मिठाइयाँ और कुकीज" लाते, और घटा भर साथ गपशप करते या ताश के खेल और पासे मोहरो का खेल बेकगैमान खेलते। विशषकर महिलाओ म तो मेरे प्रति लगभग मातवत् स्नेह विकसित होता प्रतीत होता था। मुझे लगता है कि चूकि मां की अनुपस्थिति मुझे इतनी अधिक महसूस हो रही थी कहीं इसी का तो आभास उन्हें किसी तरह नहीं मिल गया हो।

इसी बीच संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर का विवाद संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सभी समाचार पत्रों के मुख पृष्ठों पर प्रकाशित हो गया। हम नितांत क्षुब्ध थे कि धूर्त ज़फरुल्ला खान, जो पाकिस्तान का योग्य प्रमुख प्रतिनिधि था, भारतीय प्रतिनिधि मंडल पर, जिसका नेतृत्व जम्मू और कश्मीर के भूतपूर्व प्रधान मंत्री सर गोपाल स्वामी आयंगर की कोटि का व्यक्ति कर रहा था हावी होता जा रहा था। सर आयंगर 30 जनवरी को महात्मा गांधी की हत्या के दुखद समाचार के शीघ्र बाद एक दिन अस्पताल में मुझे देखने के लिए आए, पस्त और टूटे हुए। भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक और सदस्य जो मुझसे मिलने आए वे थे शेख मोहम्मद अब्दुल्ला। बचपन से ही उनके बारे में इतना अधिक सुन चुका था कि उनकी मुलाकात ने मुझमें काफी जोश पैदा कर दिया और सचमुच उनकी आकृति प्रभावशाली थी, छह फुट चार इंच और सुगठित। यह विचित्र बात थी कि जिस व्यक्ति से मेरे इतने घनिष्ठ राजनैतिक संबंध विकसित होने को थे उससे मेरी पहली मुलाकात हमारे अपने राज्य से आधी दुनिया दूर जाकर हुई।

इन मुलाकातों और दिल बहलावों के बावजूद असलियत जो थी वह बनी रही कि मैं अब भी अपंग था अपने आप हिलने डुलने में असमर्थ, अब भी स्पंज स्नानों और बेडपैनों पर बुरी तरह निर्भर। मेरे एक्स-रे के अध्ययन और परामर्श के लिए दो और विशेषज्ञों को ले आने के पश्चात् जनवरी के अंत तक डा० विल्सन ने निर्णय किया कि यद्यपि आपरेशन की तुरंत आवश्यकता नहीं थी फिर भी वे कूल्हे के जोड़ में कुछ हेर फेर की कोशिश करके उसे फिर से प्लास्टर में बांधेंगे। इस प्रकार संज्ञाहरण की पहली कड़ी शुरू हुई। जिन्होंने स्वयं इस प्रकार स्वेच्छा से संज्ञाहीन बनाए जाने का तजुर्बा नहीं किया है उन्हें शायद इसमें कोई खास बात मालूम न पड़े, लेकिन कोई भी जिसे इसका जाती तजुर्बा है यह बताएगा कि बेहोशी के दौर से गुज़रने की प्रक्रिया कोई सुखकर नहीं होती। जो हो मेरी चिंता का विषय स्वयं बेहोशी उतनी नहीं थी, जितना यह डरावना विचार कि कहीं मैं ऑपरेशन के बीच में ही जाग न जाऊं। हर बार मैं एनस्थटिस्ट से यही कहता था कि इस बात को पक्का कर लें कि मैं तब तक बेहोशी में रहूं जब तक कि आपरेशन पूरा न हो जाए।

दो प्रमुख आशंकाएं जो मुझे संज्ञाहरण में थीं वे ये कि मैं अपनी मानसिक स्फूर्ति अथवा पुरुषत्व न खो बैठूं। हर बार जब मैं आपरेशन से वापस लौटता तब 'अधिकतम आवाज़' की परिभाषा को जिसे मैंने इंटरमीडिएट की अर्थशास्त्र की परीक्षा के लिए याद किया था स्मरण करके इस बात की जांच करता कि मैं मानसिक रूप से सचेत हूं अथवा नहीं। अपनी जांच करने के लिए इस विषय मानसिक नुस्खे का चुनने का कोई खास कारण नहीं था लेकिन यह विचित्र संयोग

था कि एक चौथाई शती बाद मैं एक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति के निर्माण में लिप्त था। मेरी दूसरी आशंका की जांच के लिए कुछ दिन रुकना जरूरी था जब तक कि आपरेशन की पीडा दूर नहीं हो जाती।

इलाज की प्रक्रिया, प्लास्टर बांधना और फिर फिर बांधना कई महीनों चलती रही और तब तक न्यूयार्क की जमा देनेवाली शीत ऋतु धीरे धीरे गरम और चिपचिपाहट भरी ग्रीष्म ऋतु में परिणत हो गई। मैंने रेडियो से कई सफल धुनें सीख ली थी, लेकिन, इसके अतिरिक्त मैंने शतरंज का प्रशिक्षण लेना प्रारंभ करने का और अकादमिक संसार से पुनः कुछ संपर्क स्थापित करने का निश्चय किया। शतरंज के लिए यह व्यवस्था की गई कि वारिस मिफ नाम के एक व्यक्ति हफ्ते में तीन बार आया करेंगे। वे बहुत अच्छे खिलाड़ी थे और उन्होंने मुझे इस मन मोहक खेल के अनेक नए आयामों से परिचित कराया। दूसरे तीन दिनों तक एक मि० जे० ई० ब्राउन (निश्चित ही यह कल्पित नाम रहा होगा, क्योंकि वे केन्द्रीय यूरोप के लहजे में बोलते थे) मुझे अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान का पाठ पढ़ाने कोलंबिया युनिवर्सिटी से आते थे। वे अपने झुकावों में बहुत अधिक वाम पक्षी थे और अमरीकी पूंजीवादी व्यवस्था के सख्त आलोचक थे। वे ही थे जिन्होंने पहले पहल मेरे सामने यह सिद्धांत रखा कि युद्ध सामग्री बनाने वाले अमरीकी, दक्षिण अमरीका के विभिन्न स्थानों में युद्धों को उभाड़ने में इसलिए सक्रिय रूप से संलग्न हैं ताकि उनके माल का वहां के नियमित और अत्यंत लाभदायक बाज़ार सुलभ बने रहें।

जैसे जैसे हफ्ते बीतते गए मुझे यह महसूस होने लगा कि मैंने अमरीका में जल्दी अच्छे हो जाने की जो आशा की थी वह धीरे धीरे धूमिल होती जा रही है। इसी बीच जम्मू और कश्मीर में घटनाएं तेजी से अग्रसर होती जा रही थीं। कबाइली आक्रमण बढ़ते-बढ़ते सचमुच का एक पूरे पैमाने का युद्ध ही बन गया था जिसमें राज्य की सेना और भारतीय सेना की मुठभेड़ कबाइलियों और पाकिस्तानी सेना के नियमित दस्तों से थी। पिताजी के पत्रों में मुझे सैनिक अभियान के समाचार मिलते थे, जिनसे मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय आक्रमण धीरे धीरे घुसपैठियों को पीछे धकेलने में सफल होता जा रहा है। एक के बाद एक शहर वापस जीत लिया जा रहा है, लेकिन प्रक्रिया जितनी हमने आशा की थी उससे कहीं धीमी थी। राजनैतिक दृष्टि से भी परिवर्तन हो रहे थे। मेहर चन्द महाजन ने राज्य को छोड़ दिया था और पिताजी ने एक घोषणा द्वारा शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में एक आपातकालीन प्रशासन स्थापित कर दिया था। यह स्पष्ट था कि ऐसा पं० जवाहरलाल नेहरू के कहने पर ही किया गया था। वस्तुतः अधिमिलन अभिलेख (इन्स्ट्रूमेंट आफ एक्सेशन) पर हस्ताक्षर हो जाने और भारतीय सेना के आ जाने के पश्चात वास्तविक सत्ता पिताजी के हाथों से जा चुकी

थी यद्यपि कुछ समय बाद तक इसे औपचारिक नहीं बनाया गया था।

उस समय भारतीय सविधान का भी निर्माण किया जा रहा था। अपने एक पत्र म पिताजी न भविष्यवाणी करत हुए लिखा 'मुझे इस तथ्य के अलावा कि नरेशा का नामानिशान मिट जान म ज्यादा वक्त नहीं लगेगा, और कोई अदाज नहीं है कि भारत के नए सविधान का हमारे ऊपर क्या असर होगा।' अस्पताल म मैं स्थूलाकार दनिक समाचारपत्रा मे उत्सुकता मे भारत सबधी खबरा को खोजा करता, जो विरली और असतोषजनक होती थी। अमरीकी समाचार पत्रा के आकार स मेरा आश्चयचकित होना कभी बन्द नही हुआ, विशेषकर 'न्यूयाक टाइम्स' का रविवासरीय सस्करण जो अपन अनेक परिशिष्टा को मिलाकर कभी कभी दो सौ पष्ठा तक पहुच जाता था। मैं एक लोलुप पाठक था और बहुत काफी सूचना और नए विचार गठिया लेता था।

यद्यपि प्लास्टर के साचे म बधे रहने म मैं हिल डुल नही सकता था, तो भी प्राय प्रत्यक्ष रूप से मेरा शरीर और मस्तिष्क बढ रहा था, पहला प्रधानतया इसलिए कि मैं विशेष रूप से पाचन योग्य बनाए गए सुस्वादु दूध की बडी मात्रा म पान करता था। मेरे सत्रहवें जन्मदिन पर अस्पताल म हमारी एक पार्टी हुई और डा० विल्सन मे जन्मदिन की केक प्राप्त करत हुए और दोना बगलो म अपनी दोना नर्सों और साथ क एक चीनी रोगी ताई लुग याग के साथ मेरी फोटो अगले दिन 'न्यूयाक टाइम्स' के मुखपष्ठ पर प्रकाशित हुई। रिपोट निम्नलिखित रहस्यमय पैरा के साथ समाप्त की गई सर हरिसिंह न अपनी पहले की तानाशाही सरकार का हाल ही मे उदारतावादी बना दिया है और कहा जाता है कि उनके पुत्र के विचार प्रजातान्त्रिक है। परतु इस नवयुवक न किसी राजनतिक विषय पर चर्चा करन से इकार कर दिया है।" लगभग इसी समय मैंने अपना पहला रेडियो प्रसारण "जूनियर रिपोटर" नामक एक प्रदशन मे किया जिसम किशोरो द्वारा समसामयिक प्रसग पर चर्चा की गई थी। अपने अतराक्षेप मे मैंन कहा कि मुझे आशा है कि भारत शीघ्र ही विश्व क बडे राष्ट्रो क बीच अपना आधिकारिक स्थान ग्रहण कर लेगा, कि भावी विश्व क उत्तरदायित्व का भार हमारे युवावग के कधो पर है और हम सभी को अधिकाधिक सौहाद और भ्रातृ-प्रेम के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

पीछे दष्टि पर मैं यह महसूस करता हू कि अपन सवथा नूतन परिवेश के साथ अमरीकी अतराल ने मेरे मस्तिष्क को राज्य की सामन्तशाही साजसज्जा से अपने को विच्छिन्न करने और एक भिन्न और अधिक स्वतत्र वातावरण को आत्मसात करन का अवसर प्रदान किया। सयोग से 1948 निर्वाचन का वष था, और मैंने पत्र पत्रिकाओ म और टलीविजन पर आश्चयजनक अमरीकी निर्वाचन प्रक्रिया को निकट स निरखा, जिसम डेमोक्रेटिक पार्टी का कन्वेंशन शामिल था, जिसम ट्रूमैन

हम्फ्री, हेराल्ड स्टासेन और दूसरो ने प्रेसीडेंट ट्रूमन से नामाकन छीनने का असफल प्रयास किया और इसके बाद रिपब्लिकन कन्वेंशन जहा उल्लासोन्माद के वातावरण म टामस डेवी का चुना गया। इन सभी सम्मेलनो म हर्षध्वनि के अगुवा बड और तमाशा मुझे आश्चर्यचकित करते रहे, लेकिन मि० ब्राउन बराबर यह इंगित करते रह कि इस सारे हल्ले गुल्ले और उत्सवो के पीछे विभिन्न हितो का प्रतिनिधित्व करने वाले पक्के पेशेवर लोग है जो इस बात का ध्यान रखते हैं कि कोई भी पार्टी पूजीवादी पथ और 'फ्री एटरप्राइज' से बहुत अधिक इधर उधर न भटक जाए।

उस समय पिताजी को जो पत्र मैंने लिखे वे कश्मीर विवाद के सबध म सुरक्षा परिषद की कार्यवाहिया और राज्य म सैनिक अभियान की प्रगति के सबध मे प्रश्नो स भरे रहते थ। उत्तर म व प्रमुख नई स्थितियो स मुझे अवगत कराते थ, जिसम विशेष रूप स यदि किसी महत्वपूर्ण शहर को फिर म वापस जीत लिया गया हो उसका उल्लेख करते थे। आश्चर्य है कि ववद की घुडदौडो म उनकी रुचि तब भी बनी रही क्योकि उनके पत्रो म प्राय अपने प्रशिक्षक की और अपने घोडो के असतोषजनक निष्पादन की शिकायत रहती। मैं मा को भी नियमित रूप स हिंदी म पत्र लिखा करता था और व अपने हल्के नारगी गुलाबी कागज पर ऐसी लिखावट म उत्तर लिखकर भेजती थी जिसे समझना मुश्किल होता। उन्होने कभी औपचारिक शिक्षा तो पाई न थी, और यद्यपि बातचीत म और सार्वजनिक भाषणो मे भी व प्रभावशाली होती, लेकिन लिखना कभी उनके गुणो म शुमार नही था।

लबी अवधि तक मेर कूल्हे को प्लास्टर म निश्चल बनाए रखने के बावजूद —जब स श्रीनगर म डा० सिराजकर न पहले पहल इलाज किया तब स करीब करीब अब पूरा वर्ष हो चुका था—जोड म डा० विल्सन के सतोष के मुताबिक सुधार नही आया। 6 जुलाई को डा० विल्सन मेरे कमरे म आए और कहा कि उन्होने अगली सुबह मेरा आपरेशन करने का निश्चय किया है। जाहिर तौर पर निर्णय कई दिन पहल ले लिया गया था और पिताजी की अनुमति प्राप्त कर ली गई थी, लेकिन मुझसे वह बताया नही गया था ताकि उसकी फिक्र मे मैं परेशान न हो जाऊ। चुप्पी की साजिश न काम अच्छा किया क्योकि उस बडी घटना के पहले फिक्र करने के लिए मेरे पास कुछ ही घटे थे। दूसरी सुबह जो आपरेशन हुआ वह उससे कही अधिक सगीन था जिसकी हमम से किसी न भी कल्पना की थी। उसम बारह इच लबा एक अधचद्राकार चीरा और एक हड्डी के पच्चर और छह इच की धातु की कील के द्वारा कूल्हे के जोड को स्थायी रूप स निश्चल बनाना शामिल था। मैं आपरेशन के बाद पर कई घटा तक और तापमान बाद तक म ही मुझ होश आ पाया। अगले पाच दिन मेरी जिंदगी की याद म सबसे खराब गुजरे। इन दिनो प्रमुख मासपेशियो के अलग हो जाने स जो ऐंठन उठी उनसे मेरा शरीर काप उठा, पीडा असहनीय थी और प्रत्येक एक दो मिनट बाद सारा पलग हिल

जाता था। मुझे हर दिन सोलह इजेक्शन लेने पडते थे, आठ पेंसिलिन के और आठ दद के लिए, और 250 सी० सी० बोतलें खून चढाया जाता था। यदि किसी व्यक्ति की चेतना के बाहर किसी स्वग अथवा नरक का वास्तविक अस्तित्व है, तो मैं समझता हू कि मुझे आपरेशन के बाद के उन दुर्दांत दिनो मे उस लोक का काफी सही अनुमान लग गया था।

रजीत मर कमरे मे करीब करीब चौबीसा घटे रहा और तीनो नर्सों के साथ, जो बारी-बारी से आठ-आठ घटे के लिए आती थी प्रयत्न कर मेरी वदना कम करने के लिए जो भी सभव था वह किया। एनेस्थेशिया एक अजीब बज्जायका छोड गया था और मेरी भूख बिल्कुल मारी गई थी। यो भी मैं कुछ भी खाने की स्थिति मे नही था और एक हफ्ता केवल तरल खुराक पर ही रहा। वह तो यो ही बातो बातो म कुछ दिन बाद एक नस न मुझे खबर दी कि मेरे कूल्हे म कील जड दी गई है। मेरा दिल बैठ गया, मुझे तब यह अहसास हुआ कि मैं फिर स सामान्य रूप स चलने योग्य कभी नही बन सकूगा, और वस्तुत उस बिदु पर जी म एसा समा गया कि कभी चल ही नही पाऊगा। मेरी आस्था और जो भी साहस मैं बटोर पाया था उनकी कठोर परीक्षा ली गई, और वह तो इच्छा शक्ति क चरम प्रयास से ही था कि मैं अपने को पूरी तरह टूट गिरने से बचा सका।

डॉ० विल्सन आपरेशन से खुश थे और मुझे उन्होंने विश्वास दिलाया कि और कुछ ही महीनो मे सब ठीक हो जाएगा। यह कि मैं आज दिन तक टेनिस खेल सकता हू और बिना किसी तकलीफ के लबे चुनाव के दौरे कर सकता हू उस महान सजन की व्यावसायिक क्षमता की तारीफ है, जिसका विकलाग सजरी मे सबस विख्यात नामो मे से एक है। व मेरे बिस्तर के बगल म बैठ जात और पित भाव से मुझे बताते कि किस तरह उन्होंने नए विकसित अस्थि बैंक से लेकर अस्थि क पैबद का इस्तेमाल किया था, उन्होंने उस विशेष मिश्र धातु की कील की एक प्रति कृति भी मुझे दी जो मेरे कूल्हे मे जडी गई थी, और जो आज भी मेरी जिदगी के एक सगीन दौर की याद दिलाते हुए मेरे साथ बनी हुई है।

मैं नौजवान था और जाहिरा तौर पर, जितना सोचा था उससे कही ज्यादा मजबूत निकला। ऑपरेशन के बाद की पिताजी को मरी पहली चिट्ठी 14 जनवरी को घसीट दी गई थी—आपरेशन के ठीक एक हफ्ते बाद—और 19वी को मैंने उन्हे सात सफो का एक खर्रा लिख भेजा। तब तक मेरा घाव भरने लगा था और जो पच्चीस टाके लगे थे व निकाल दिए गए थे। धीमे, बहुत धीमे धीमे दद कम होता गया और मेरी भूख लौट आई। यौवन का स्पदन फिर से अपना अधिकार जमाने लगा और मैं सोचता हू इस बात म कि मैंने मानसिक अवसाद म जाना स्वीकार नही किया, काफी अतर पडा। न्यूयार्क म और अस्पताल म जिन जिन को हम जानते थे, वे सब बड मेहरबान और मोहब्बती थे, जिन कद महीनो मैं वहा

रहा उनमें जितने सोच थे उनसे कहीं अधिक दोस्त बना लिए, और मेरा कमरा हमेशा फूलों और 'कार्डों' से भरा रहता था। चूंकि मैं अपने दर्द और तकलीफ को जहां तक होता मस्ती से दबा लेता था, मुझे दिलेर और हिम्मतवर होने की शोहरत हासिल हो गई थी। यहां तक कि पिताजी ने अपने अगले पत्र में लिखा 'तुमने धीरज के साथ बहुत बडी तकलीफ बहादुरी से गुजार ली मुझे तुम पर सचमुच नाज है।' यह उनसे मिली सचमुच ऊंची तारीफ थी।

दो महीनों तक तो मैं भारी प्लास्टर का सांचा पहने रहा और सितम्बर में, डा० विल्सन के गर्मी की छुट्टी से लौट आने के बाद, उन्होंने यह सांचा हटवा कर एक छोटा हल्का-सा लगवा दिया। आपरेशन का घाव तब तक पूरी तरह ठीक हो चुका था और मुझे उस पहले दिन की अच्छी तरह याद है, जब बिस्तर में महीनों पड़े रहने के बाद खड़े होने की इजाजत मिली थी। वह एहसास इतना अजीब था कि मुझे चक्कर आ गया और मैं गिरते गिरते बचा। मुझे रोज व रोज और ज्यादा देर तक खडा रखा गया और अस्पताल के कमरे में आरजी कदम रखने को कहा गया—एक तरह से दोबारा चलना सिखाया गया। 24 सितम्बर तक मैं इतना स्वस्थ हो गया कि नौ महीनों में पहली बार अस्पताल से बाहर आकर एक खुली कार में थोड़ी दूर घूमने जा सका। मैं एक पहियेदार कुर्सी में नीचे ले जाया गया था और उठाकर कार में बैठा दिया गया था। न्यूयार्क नगर में उस पहली तफरीह के आनंद को मैं कभी नहीं भूलूंगा। आकाश में ऊंची उड़ान भरती हुई व विशाल काय इमारतें काफी हावी हो जाने वाली थीं, और मुझे दिमागी धोखे का एक अजीब सा एहसास हुआ मानो मैं एकाएक देश और काल के एक निराले आयाम में ले जाया गया होऊं। अस्पताल के उन लंबे, नीरस महीनों के बाद महज यह विचार कि मैं एक बार फिर घूम फिर सकता हूं, आह्लादकारी था।

इन महीनों के दौरान मेरे [illegible] और राजनीति विज्ञान के सत्र जारी थे। मैंने बंबई से पढ़े गए विज्ञान का एक पत्राचार पाठ्यक्रम प्रारंभ किया (लेकिन पूरा नहीं कर पाया) और एक तीव्र लेखन का पाठ्यक्रम भी, जिसमें बिना शीघ्र लिपि का प्रयोग किए सधा लेखन का एक तरीका शामिल था। मैं उत्साहपूर्वक टेलीविजन देखता, ट्रूमैन और डेवी को अनवरत भाषण देते देश में आड़ा तिरछा भागते प्रेसीडेंट पद के लिए किए गए अभियान का बारीकी से अनुसरण करता, यद्यपि सभी यह समझते थे कि डेवी जो गोरा था आदमी था निश्चय जीतेगा, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि ट्रूमैन में ज्यादा गुर्दा और वास्तविकता है। मैं खूब पढ़ा करता, समसामयिक राजनीति की किताबें भी और उपन्यासें भी।

घर में आई खबरें बेचैन करनेवाली थीं। पिताजी अपने पत्रों में बड़ा भारी बयान—इन्होंने हम तो गादी पर लिया था कि हमारे पत्रों का सेंसर किया जाता है—लेकिन यह साफ था कि यद्यपि जवाहरलाल नेहरू द्वारा बाध्य किए जाने पर

उन्होंने प्रभावकारी सत्ता शेख अब्दुल्ला को सौंप दी थी जो 'आपात्कालीन प्रशासन' के अध्यक्ष और बाद में प्रधानमंत्री बन गए थे, उनके परस्पर सम्बन्ध तनावपूर्ण और विरोधी बन गए थे। उदाहरणार्थ, दिनांक 18 सितम्बर के एक पत्र में उन्होंने लिखा

"वर्तमान सरकार राज्य की फौजों को अपने नियंत्रण में ले लेने के लिए बहुत उत्सुक थी। मैंने उनके इस कदम का जोरदार विरोध किया क्योंकि सेना एक आरक्षित विषय था। मामला राज्य मंत्रालय को भेज दिया गया था और सरदार पटेल ने चर्चा के लिए मुझे दिल्ली आने का आमंत्रण दिया था। लंबी चर्चा के बाद शेख अब्दुल्ला की इच्छा के विपरीत यह तय हुआ कि राज्य की फौजों का नियंत्रण फिलहाल भारतीय सेना को सौंप दिया जाए जिसका मैं कमांडर इन चीफ बन जाऊं।"

मेरा चलना फिरना धीरे धीरे बढ़ता गया। मैं बैसाखियों के सहारे चलने लगा और, रजीत को साथ लेकर अस्पताल के बाहर और आइसक्रीम के लिए खाने की दवाई की दूकान पर चला जाता। मैं 42वीं स्ट्रीट पर "डेली न्यूज" बिल्डिंग की निचली मंजिल तक भी पैदल चला जाता, जहां समय सारिणियां, नए समाचारों और मानचित्रों से भरे एक कमरे में एक विशाल घूमनेवाला ग्लोब रखा था। वह बड़ी दिलचस्प जगह थी और मैं वहां नियमित रूप से जाने लगा और एक बार में दो दो, तीन तीन घंटे तक वहां बिताने लगा। मैंने अपने लिए एक जोड़ा सूट, टाइयां और एक फेल्ट हैट खरीद लिया था और कुछ तस्वीरें भी माता पिता को भेज सका था जो यह देखकर खुश हुए थे कि मैं किस तरह बड़ा हो गया था। इसी बीच अमेरिका के प्रेसीडेंट का चुनाव अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुका था। ट्रूमन को डेवी के विरुद्ध चौंकाने और अस्तव्यस्त कर देनेवाली विजय प्राप्त हुई और मैंने एक डाक्टर से दस डालर जीते जिसने पदेन प्रेसीडेंट के विरुद्ध मुझसे 10 डालर की शर्त लगाई थी।

यद्यपि मैं धीरे धीरे अच्छा हो रहा था लेकिन मुझे जल्दी या बिल्कुल ठीक हो जाने का मुगालता नहीं था। पिताजी को एक पत्र में मैंने लिखा "मेरे दाहिने पैर की मांसपेशियों के ढीले होने और मजबूती आने की प्रक्रिया लंबी और धीमी होगी, लेकिन एक बार प्लास्टर से हमेशा के लिए छुट्टी पाने के बाद फिर केवल समय की ही बात रहेगी। यह तो आपका अनुमान होगा ही कि मेरा दाहिना कूल्हा हमेशा कड़ा रहेगा लेकिन कुछ अभ्यास और अपने चलने और बैठने के तरीके में थोड़ा फेर-बदल करने पर मेरा ख्याल है कि उसमें मुझे जिन्दगी में कोई बहुत अधिक तकलीफ नहीं होगी। तो भी मुझे उसका अभ्यस्त होने में कुछ समय लगेगा।' । नवम्बर का प्लास्टर का खोल अंतिम रूप में अलग कर दिया गया और मैंने तैरने में जाना फिर से शुरू कर दिया। उस भयंकर मार्च से मुक्त होकर

गुनगुन पानी म फिर म प्रवेश करना अदभुत लगा। वद्धा फीजियोथेरापिस्ट मिस हुतन क्ताक न, जिसन नियमित रूप से मरा तब स उपचार किया था जबम मैं अस्पताल म भर्ती हुआ मरी पानी के भीतर मालिश की, जिसके परिणामस्वरूप मरा दाहिना कुल्हा और पर धीरे धीरे फिरसे शक्ति प्राप्त करन लग। डा० विल्सन मेरी प्रगति से इतन खुश थे कि उ होन कहा कि मैं कुछ दिनो बाद अस्पताल छोड कर दो महीने और होटल म रह सकता हू जिसमे भौतिक चिकित्सा और उनके द्वारा निरीक्षण क लिए जा सकू। इस तरह अ ततोगत्वा 15 नवम्बर का, जब मैं विनय मजरी क लिए अस्पताल म लाया गया था उसक ठीक 10½ महीने बाद मैं बाहर आकर ग्राकल होटल 111 ईस्ट 48 वी स्ट्रीट, म चला गया।

बायरन न अपनी एक कविता म सकेत किया है कि एक कदी भी, जो अकेला कोठरी म काफी लम्ब समय तक रहता है जेल स आसक्त हो जाता है। निश्चय ही मुझम भी अस्पताल क लिए—नर्सों, वार्ड स्टाफ, डाक्टरों, सहरोगियों के लिए, काफी स्नेह विकसित हो गया था। यद्यपि मैंने वहा काफी शारीरिक कष्ट उठाया, लेकिन स्नेह और सहानुभूति क वातावरण न मुझे धीरज रखने म सहायता दी। वास्तव म वहा स विदाई काफी कष्टदायी थी, और पूरे अस्पताल न मुझे शाही विदाई दी। बीस साल बाद 1967 म भारत सरकार के पर्यटन और नागरिक उड्डयन मत्री क रूप म म फिर न्यूयार्क गया था। तब तक 42वी स्ट्रीट पर स्थित यह पुराना अस्पताल गिरा दिया गया था और यह नगर म अन्यत्र पहले स काफी अच्छी, आधुनिक और शानदार इमारत मे चला गया था। डा० विल्सन न, जो तब अस्सी क होन पर भी कमठता स भरपूर और लाल गुलाल थे मुझे नय क साथ चमचमाते हुए नए परिसर को घुमाकर दिखाया। तो भी, न जान क्या, मुझे उस पुरानी जगह की ही याद आती रही।

बाकले एक लबा चौडा और आरामदेह होटल था, बगल के वाल्डार्फ एस्टोरिया क जितना शानदार तो नहीं लेकिन मेरे इलाज क लिए पिताजी को जितन डालर भजने की मजूरी मिली थी उसक लिए उपयुक्त था मुझे इतन महीनो बाद फिर स गरम पानी स स्नान करने का एश लूटने म विशेष आनन्द मिला। आज दिन तक जब भी मैं गरम पानी स भरे टब म घुसकर बठता हू तो एक मौन प्रार्थना अर्पित करता हू और अपने को याद दिलाता हू कि उल्लास क भाके म हम जीवन की सुख-सुविधाओ का किस तरह अनिवाय मान बठते हैं, जब तक कि व हमस छिन नहीं जाती। जब मैं होटल म आया तब तक मैं बसाखियो पर ही चलता था लेकिन शीघ्र ही एक छडी की मदद स चलने फिरने लगा। हफ्ते मे तीन बार मैं अस्पताल क तरण म पानी क भीतर मासपेशियो क उपचार क लिए जाता, और दूसरे दिन मिस मक्लार होटल म आती और एक घटा मरी मालिश करती।

अब मैं टैक्सी मे चढने लगा था और इसलिए रावत और रजीत के साथ, न्यूयाक के दश्यो, ध्वनियो और भोजन का ग्रहण करने लगा।

यह सही मानो मे एक विलक्षण शहर है, रात म दिन से कही ज्यादा जग मग। टाइम्स स्क्वेयर और ब्राडवे हजारो नेओन साइना क कारण प्रकाश क चिरस्थाई विस्फोट से विशेष रूप से प्रभावशाली लगे। मुझे विशाल सिनेमा विज्ञापन माहक लगते थे। "जोन आफ आर्क" का विमोचन तभी हुआ ही था, जिसमे इंग्रिड बगमन की प्रमुख भूमिका थी और उसकी काटकर बनाई गई विशाल आकृति, जितनी ऊची से ऊची इमारत मैंने भारत म देखी उसम कही ऊची खडी थी। हमने यह और अ य अनेक चलचित्र देखे जिनम 'द थ्री मस्केटियर्स' (जिसम जेन कर्ली, लाना टनर, जून एलीसन और एजेला लेंसबरी थे), "एचेंटमेंट" (डेविड निवेन) और 'द पेलफेस' (बाब होप जेन रसल) शामिल थे। हम ब्रॉडवे म कुछ नाटक भी दख सके मिस्टर रॉबर्ट म" (हेनरी फाडा के साथ), नोएल कावड का प्राइवट लाइ ज' (टल्लुलाह बक्हेड के साथ) "हार्वे' (जिसम एक विशाल अदृश्य सफेद खरगोश की भूमिका थी) और एक कामेडी "व्हयर्ज चार्ली ?" (रे बोल्गर के साथ)।

चलचित्रो और नाटको के अतिरिक्त हम एपायर स्टेट बिल्डिंग के शिखर पर गए, प्रभावशाली राकफेलर केन्द्र देखा, साक्स एड मेसीज के यहा खरीद फरोख्त की, रेडियो सिटी म्यूज़िक हॉल मे मशहूर राकेटज की सराहना की, मेडीसन स्क्वेअर गाडन म वफ पर हॉकी का मैच देखा, सेंट्रल पाक के सीमाता की सतकता पूवक खोज की, और अनक बढिया खाने की जगहो को ढढ निकाला जिनम बहुत स भारतीय रेस्त्रा भी शामिल थ—एक था 'द बार्बेरी रूम' (19 ईस्ट, 52वी स्ट्रीट) जिसकी छत तारा भरी और कुर्सिया न्यूयाक भर म सबसे ज्यादा आरामदह। शहर मे केवल रहना ही एक उल्लासकारी अनुभव था विशेषकर अठारह महीनो तक पडे रहने के बाद, और अस्पताल मे बाहर न्यूयाक म बिताए वे हफ्ते मेरी जिन्दगी के सबसे खुशनुमा हफ्ते थ। हम रात की एक ट्रेन स बफेलो भी गए जहा स नियागरा फाल्स देखने कैनेडा की सीमा गए।

1948 का अत आ गया था, और, पिछले नव वष की पूव सध्या के विपरीत जब मैं वीरान सडको पर एबुलस म ले जाया गया था, इस बार हमने उस टाइम्स स्क्वेयर म करीब पाच लाख न्यूयाकवासियो के साथ मनाया। कडाके की सर्दी पड रही थी लेकिन हमारे हौसले बुलद थे और जब घडी न बारह की घटिया बजाई तो हर व्यक्ति उन्मत्त हो उठा। इसके तुरन्त बाद हमने अपने को पास के एक भारतीय रेस्त्रा म पाया, जहा उसके मालिक न हम भाप छोडते हुए प्यालो म केसर की चाय पिलाई। मैं बन्त स मित्रो स मिल रहा था जिनम हमारे विदेश सेवा के गुरुबचन सिह भी शामिल थे, जो वहा नियुक्त थे, फि वाशिगटन एव

खूबसूरत शहर है, और इसलिए मैंने पिताजी से एक हफ्ते के लिए वहां जाने की अनुमति मांगी। वे राजी हो गए और हम वहां ठीक उस समय पहुंचे जब 20 जनवरी 1949 को प्रेसीडेंट ट्रूमैन की उद्घाटन परेड होने को थी, जिसके लिए गुरबचन सिंह के सहयोग से टिकट मिल गए थे। हमारे राजदूत श्री रामाराव (जिनके भाई सर बी० एन० राव पिताजी के प्रधानमंत्री थे) शहर से बाहर थे लेकिन उनकी शिष्ट पत्नी लेडी धन्वंतरि रामा राव और उनकी बेटी मिसेज प्रमिला वाग्ले ने हमारी अच्छी देख भाल की। वाशिंगटन सचमुच एक सुहावना शहर है, विशेषकर उसके सार्वजनिक स्मारक। लिंकन मेमोरियल की क्लासिकी ग्रीक कठोरता जिसमें उस महान प्रेसीडेंट की ऊंची विचारमग्न प्रतिमा है, उससे कम औपचारिक और अधिक अंतरंग जेफर्सन मेमोरियल था, जो ताला और फुलवारियों के बीच स्थित है सीधा विलास प्रस्तुत करती है। हम जार्ज वाशिंगटन का पुश्तैनी घर देखने माउंट वर्नान भी गए। न्यूयार्क की कभी न कम होने वाली चमक दमक और वाशिंगटन की क्लासिकी शानोशौकत एक-दूसरे से इतनी भिन्न होते हुए भी दोनों ने ही मेरे ऊपर बहुत असर डाला।

अब चूंकि मेरी हालत में सुधार हो रहा था मेरे माता पिता यह चाहने लगे कि मैं घर आ जाऊं और पिताजी को लिख गए अपने पत्रों में मैंने दो प्रमुख प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करना लगा जिनका सामना मुझे लौटने पर करना पड़ेगा। पहला मेरी शादी का था जो कि, जैसा मैंने समझा था—और यह समझना बाद में गलत साबित हुआ—शांति के साथ होगी जिसके साथ मैंने अस्पताल से पत्र व्यवहार करना शुरू कर दिया था। मैंने पिताजी को लिखकर बताया कि जल्दी शादी कर देने की उनकी इच्छा को समझते हुए भी, मुझे खेद है कि अपनी शादी में पहले मैं शांति से और अधिक न मिल पाऊंगा और उससे कुछ और अच्छी तरह से परिचित न हो पाऊंगा क्योंकि मेरी यह धारणा है कि यदि दो व्यक्ति एक दूसरे को भलीभांति जानते हों तो विवाह के सफल होने की अधिक संभावना है बनिस्बत इसके कि वे प्राय अजनबी हों।' दूसरी बात मेरी भावी शिक्षा की थी और इस पर मैंने इतना बल दिया था कि पिताजी का पूरा एक प्रवचन ही सुना डाला था

'मैं चाहता हूं कि आप इस बात को जान लें कि मैं अपनी पढ़ाई बी०ए० और उसके आगे जारी रखने के लिए बहुत उत्सुक हूं और मेरा यह सुदृढ़ विश्वास है और निश्चय ही आपका भी होगा कि इस जमाने में जब इतनी जल्दी जल्दी तब्दीलियां हो रही हैं अच्छी तालीम (मेरे लिए अर्थशास्त्र, कानून आदि विषयों की) निहायत जरूरी है। ऊंचे घराने में पैदा होना ही काफी नहीं है मेरी यह धारणा है कि आज के जमाने में, ऊंचे परिवार में पैदा होने की घटना के अलावा

एक व्यक्ति म इतनी काफी लियाकत हानी चाहिए और तालीम म वह इतनी अच्छी तरह लस होना चाहिए कि खुद ब खुद अपनी जगह बना ले।'

जिस तरह मेरे पैर म सुधार हो रहा था उसम डा० विल्सन बहुत खुश थे, और आखिर मे यह तय हो गया कि मैं फरवरी क पहले हफ्ते म घर के लिए रवाना हो सकता हू और यह भी कि वापसी म कुछ दिन लन्दन और कुछ दिन पेरिस मे रुकता हुआ जाऊ। उन कुछ बाता म जो हमन अतिम दिनो म न्यूयाक मे की, एक यह थी कि हम हाइड पाक म रूजवेल्ट हाउस म स्वर्गीय प्रेसीडट क ही एक बेटे इलियट रूजवेल्ट और उनकी पत्नी फा के साथ गए जो पहल एक अभिनत्री थी। हम वहा जिस दिन थे वह स्वर्गीय प्रेसीडेन्ट की सालगिरह थी जिनका मैं हमेशा से बडा प्रशसक रहा हू और हमन आलिगटन सीमेटी म जहा व दफनाए गए थे एक सक्षिप्त मेमारियल सर्विस म भाग लिया। उनकी विधवा पत्नी मिसज एलीनर रूजवेल्ट न जिनम बडी कमठता है और जिनका अपना स्वतत्र व्यक्तित्व है, हमारा स्वागत किया और हम घुमाकर दिखाया। 2 फरवरी के न्यूयाक वल्ड टेलीग्राम" म अपन कालम मे उन्हान हमारी यात्रा का उल्लेख किया और कहा 'कश्मीर के नवयुवक युवराज, जो इस देश म आपरेशन करान क लिए रहे हैं अब कुछ ही दिना म अपन कालेज की अतिम दो वर्षों की शिक्षा पूरी करन वापस घर जा रहे हैं। उनकी इच्छा ह कि बाद में वे सयुक्त राष्ट्र सघ की सेवा करें और एक शातिपूण विश्व का निर्माण करें।"

भारत वापसी की यात्रा एक साल से अधिक पहले की न्यूयार्क की सजीदा यात्रा से एकदम विपरीत थी। हमन अटलाटिक पार करने क लिए एक पन अम रिकन उडान ली चूकि इस खड म एयर इडिया ने तब तक हवाई जहाज चलाना शुरू नहीं किया था। पहला विराम लदन था, जहा हम सवाय म ठहर जो पिताजी का प्रिय होटल रहा था। अपने स्वभाव के अनुरूप उन्हाने मुझ उन कपडा की एक अत्यन्त सावधानी म बनाई हुई सूची भेजी जा मुझ खरीदन थ और साथ म उन दूकानो की भी, जिनक व तब ग्राहक थ जब व नौजवान थ कपडा और मिसज रफाइ देहात स आकर मुझस मिल, और पिताजी क और बहुत स मित्रो म भी मुलाकात की। देहात की एक ही सैर हमने की शाति क छाट भाई रणबीर सिह स मिलन चाटर हाउस के पब्लिक स्कूल का। सवाय थियेटर म तभी तभी अगाथा क्रिस्टी की थियेटर के रिकाड तोडनेवाली मशहूर 'माऊसट्रप' का प्रदशन शुरू हुआ था जिसे हमन दिलचस्पी स देखा।

लन्दन म करीब एक हफ्ता रहने क बाद हम पेरिस गए जहा विशप राजदूत न भव्य स्वागत सजा रखा था। उनक भाई केशव पोना—जीन आर दूसट जा लगभग मरी ही उम्र क थ मुझ शहर घुमाकर दिखाया, यद्यपि मै इतना शर्मिला था और अपनी छडी क बारे म इतना सचेत था कि मजा नहीं ल सका। शामरीता

नफयत उन सभी डिपाटमट स्टोरा स जो मैंने कभी दखे थे सबसे ज्यादा खूबसूरत था। हम ने मशहूर नाइट-क्लबा लिडो और मोलारूज मे भी गए और एक रस्त्रा मे एडिथ पियाफ का भी गात सुना। वेनीस म मेरे जन्म स्थान को जान की भी कुछ चर्चा चली थी लेकिन पिताजी की इच्छा थी कि घर लौटने मे हम बहुत ज्यादा देर न करें और इसलिए उस विचार को हमने छाड दिया।

अन्ततोगत्वा फरवरी के तीसरे हफ्ते म हमन बम्बई क लिए अतिम चरण की उडान भरी। मैं मिश्रित भावनाए लेकर लौटा। सालभर स ऊपर हुए जब मैं घर स चला था ता एक असहाय अपग था, और यद्यपि अब मैं अपने तई चल फिर लेता था तो भी डा० विलसन के आश्वासन के बावजूद कि धीरे धीरे मैं फिर स टेनिस खेल सकूगा मैं अपना सामान्य स्वास्थ्य पूरी तरह प्राप्त नही कर पाया था। इसके अतिरिक्त घर स जा पत्र आ रहे थे, उनम अनिष्टसूचक सकेत थ कि राजनैतिक दृष्टि म जहा तक हमारे परिवार का सबध है घटना चक्र ठीक नही चल रहा है। साथ ही मेरी आगामी शादी का समूचा मसला कुछ मायनो म परशान करने वाला बन गया था। इस तरह एक पूव चेतावनी के एहसास के साथ शाम देर म अपन जहाज के बम्बई म उतरने का मैं इतजार करने लगा।

सात

वापस पहुंचने पर जो स्वागत मुझे मिला उसने केवल मेरी आशंकाओं को ही बढ़ावा दिया। उमंगभरी बधाई के स्थान पर, जिसकी मैंने आशा की थी, पिताजी के एक पुराने दोस्त लिंबडी के फतेह सिंह जी (अक्ल फटी) सीढ़ी के नीचे हमसे मिले और कहा कि मैं जल्दी से उनके साथ एक कार तक चलूं जिसमें पिताजी मेरा इंतज़ार कर रहे थे। शायद उन्हें किसी तरह की हत्या की धमकी मिली होगी, और वे मेरी पहुंच का अनावश्यक ढिंढोरा पीटने में डर रहे होंगे। एक बार कार में बैठते ही हम तेजी में 19 नपियन रोड को रवाना हो गए जिसे पिताजी ने मोदी परिवार से कुछ वर्षों पहले खरीद लिया था। पिताजी से इतने लम्बे समय बाद ऐसी परिस्थितियों में मिलना बड़ा अजीब सा लगा। जब हम घर पहुंचे तो मां, जो बवासीर के आपरेशन के बाद धीरे धीरे ठीक हो रही थी मेरी बलैंया लेने उठ खड़ी हुई और मुझे छाती से चिपका लिया। आखिर मैं करीब चौदह महीनों के बाद घर पहुंच ही गया लेकिन उस लंबी उड़ान के बाद मन में जो भाव था वह बस थकान का और गिरावट का एक अजीब सा एहसास था। जैसे ही हम घर पहुंचे पिताजी ने जो किसी ऐसी चीज़ के मामले में जिसमें उनकी रुचि होती हमेशा उतावले हो जाते थे, मुझे खोलकर उन सब चीजों को दिखाने को कहा जो उनकी हिदायतों के मुताबिक हम अमेरिका से लाए थे। उनमें शेविंग का सामान, सिगरेट लाइटर और दूसरे मशीनी और बिजली के गजेट थे जो उनकी जिज्ञासापूर्ण आविष्कारक मानसिक प्रवृत्ति के कारण उन्हें बहुत अच्छे लगते थे। मैं कुछ परफ्यूम्स और अन्य कास्मेटिक्स भी मां के लिए लाया था। जल्दी शुरू में ही अशुभ और अशांतिकारक समाचार आने शुरू हो गए। मुझे मालूम हुआ कि राज्य की राजनैतिक स्थिति बहुत खराब है और यह कि मेरे पिताजी जो अब वस्तुतः नाममात्र के संवैधानिक अध्यक्ष रह गए थे और शेख अब्दुल्ला के बीच जो जवाहरलाल नेहरू के समर्थन से प्रधानमंत्री के रूप में राज्य के प्रशासन के अध्यक्ष थे और जिनके हाथ में कार्यकारी सत्ता थी भारी तनाव था। डोगरा और कश्मीरियों के बीच का पुराना कड़वापन, जो शताब्दी से डोगरा राज और

और नेपाली राजदूत तथा प्रधान मत्री क छोटे भाई जनरल सिंघा की बटी राज कुमारी भुवन के बीच हुई एक शादी के समारोह म मेरे माता पिता जनरल शारदा, उनकी पत्नी और उनके बच्चा से मिले थे। सबस बडी सतान एक लडकी थी, यशोराज्य लक्ष्मी, बारह वप की। जान पडता है कि सरदार पटेल ने यह सुझाव दिया था कि कश्मीर और नपाल राजघराना के बीच विवाह-सबध नव भारत के लिए, जिसका व इतने परिश्रम से निर्माण कर रह थे, राजनतिक हिता की दप्टि से महत्वपूण हो सकता है। कम से कम मुझे तो यही बताया गया था, हालाकि मैं इस बात की तसदीक कभी नही करा पाया। जो भी हो, समय पर नपाल की राजकुमारी क प्रकट हो जाने से पिताजी का रतलाम की मगनी तोडने का बहाना मिल गया जिसकी उन्ह जरूरत थी यद्यपि महाराजा सज्जन सिंह जी के देहात के बाद स ही व उसकी तरफ से या भी ठड पडने लगे थे। यह बदलत हुए वक्त की ही निशानी थी कि मेरे माता पिता चाहत थे कि मैं राजकुमारी स मिलू और यह तय करू कि मैं उसे पसद करता हू या नही। इसलिए बबइ स जम्मू लौटते समय, हम दिल्ली म रुक गए, और फरीदकोट हाउस म लच के साथ मुलाकात की व्यवस्था की गई। वहा जनरल और रानी शारदा और राजकुमारी जो यद्यपि बारह साल म दो ही महीने अधिक की थी, फिर भी उस उम्र म भी काफी सुदर थी हमसे मिले। हमने चुपचाप खाना खाया जबकि हमारे माता पिता प्रधानतया माताए बराबर बातें करती रही। खाने के बाद हम कार मे बठे और मैंने 'हा' कह दी। मुझे बाद म मालूम हुआ कि राजकुमारी से उसकी प्रति क्रिया के बारे म पूछा तक नही गया। इन अनहोनी परिस्थितिया म हमारी शादी तय हुई। कुछ लोग कहते हैं कि हम दोनो ही भाग्यशाली रहे लेकिन मैं केवल अपनी ओर से ही यह कह सकता हू।

जब हमारा चाटर किया गया डी-सी 3 हवाई जहाज जम्मू म उतरा तो बड शानगुन के साथ हमारा स्वागत किया गया। एक लबे अरसे तक बाहर रहने के बाद अमेरिका स मेरे लौटने पर पूरा शहर ही हमारे स्वागत के लिए उमड पडा था और जम्मू के लोगा ने इस मौके का उपयोग डोगरा राजघराने के प्रति अपनी वफादारी और स्नेह फिर स जताने के लिए किया। मैंने कभी इतने आदमी एक ही समय म इकट्ठे नही देखे थ, हम हवाई अड्डे से रघुनाथ मन्दिर हो। हम महल पहुचने म रमावेश तीन घटे लग गए। इसके बाद क [illegible] म मुझे जल्दी जल्दी शरणार्थी शिविर घुमाकर दिखाए गए जहा हजारा लोगा की [illegible] जो कबाइली आक्रमण के किसी तरह बेघर बन भर गए थ, [illegible] आया था। मुजफ्फराबाद मीरपुर, राजौरी भिवर और दूसरे शहरा म जो [illegible] हुए उनम [illegible] परिवार के सभी [illegible] दिया। पर [illegible] ता सभा की जाती रही और उन्ह अनक शिविरा म एक साथ भर दिया गया था

जहा वे पूरी तरह खैरात पर ही निर्भर थे। मा ने शरणार्थियो की राहत के लिए असाधारण काय किया, तन मन म अपने को इस काम में लगा दिया, पैस इकट्ठे किए और लाखा रुपया अपना भी खच कर दिया। मैं उनके साथ अनेक शिविरो म गया और देखा कि शरणार्थी आभार के आसू लिए उनके पैरो पर गिर पडते थे। पिताजी भी कभी-कभी जाते लेकिन वे भावुकता के प्रदशन के विरुद्ध थे और उनके साथ जो मुआइने किए जाते उनम वातावरण कुछ औपचारिक सा ही रहता।

जब से मैं गया तब से काफी कुछ बदल गया था। भारतीय सेना अब सवत्र उपस्थित थी। मेरे माता पिता के वरिष्ठ सेना अधिकारियो से बहुत अच्छे सबध थे और वे शाम को पयो के साथ गपशप करने अक्सर आ जाते। जम्मू और कश्मीर खड की समग्र कमान के कमाडर जनरल कुलवन्त सिंह थे, जबकि घाटी म प्रभागीय कमाडर जनरल थिमया थे। वे उस प्रमुख जवाबी हमले के लिए जिम्मेदार थे जिसने आक्रमणकारियो को पीछे खदेड दिया, जब तक कि सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वावधान मे 1 जनवरी, 1949 को युद्धबदी की घोषणा नही कर दी गई। महल म आने वाले लोगो के वग मे भी स्पष्ट अतर आ गया था। पहले मुलाकाती दरबारियो और सलाहकारो के एक छोटे और साव धानी से चुने गए वग तक ही सीमित थे अब एक बडी सख्या म नए चेहरे अदर बाहर आते जाते। यह शायद जाहिरा तौर पर शेख अब्दुल्ला के खिलाफ सियासी लडाई म समथको को जीतने की जी तोड आखिरी कोशिश का ही एक हिस्सा रहा होगा।

उस वक्त जो मसला दरपेश था वह था रायशुमारी का प्रस्ताव। पिताजी द्वारा हस्ताक्षर किए गए अधिमिलन अभिलेख को स्वीकार करते हुए गवनर जनरल की हैसियत से लार्ड माउटबटन ने अपने उत्तर म कहा था

'महाराजा द्वारा बताई गई विशेष परिस्थितियो म, मेरी सरकार ने भारत के डोमिनियन म कश्मीर राज्य का अधिमिलन स्वीकार करने का निश्चय किया है। अपनी इस नीति के अनुरूप, कि किसी ऐसे राज्य के मामले म जहा अधिमिलन विवाद का विषय रहा हो, वहा अधिमिलन का प्रश्न राज्य के लोगो की इच्छा के अनुसार हल किया जाना चाहिए मेरी सरकार की यह ख्वाहिश है कि जस ही कश्मीर म कानून और अमन फिर से कायम हो जाए और उसकी सरजमीन से हमलावरो को निकाल बाहर कर दिया जाए राज्य के अधिमिलन के प्रश्न का लोगो की राय लेकर हल किया जाए।

यह प्रस्ताव' बाद म मुसीबत और मुश्किल का प्रमुख कारण बना और जिसके बाद कश्मीर विवाद का अतर्राष्ट्रीय विषय बना तो वे लिए जवाहर लाल नेहरू को काफी आलोचना का शिकार बनना पडा। वास्तव म तो म म किसी

एक डोमिनियन के साथ अधिमिलन म पहले पिताजी द्वारा की गई आनाकानी और बाद मे जवाहरलाल नेहरू द्वारा दिया गया रायशुमारी का प्रस्ताव—ये दोनो ही विषय एसे हैं जिनकी भविष्य के इतिहासकार भी, जी खोलकर आलोचना करेंगे। इतिहासकारो के साथ दिक्कत यह होती है कि वे कभी घटनास्थल पर तो होते नही है, और इसलिए व समय और स्थान विशेष पर शक्तियो का जो दुर्बोध चतुर्भुज बनता है उसका सही मूल्यांकन करने म असमर्थ होते है। मैं पिताजी की दुविधा के बारे मे कुछ जिक्र कर ही चुका हू। जवाहरलाल जी को भी अवश्य ही एक कठिन दुरवस्था का सामना करना पडा होगा। एक ओर तो कश्मीर से, जो उनके पूवजो की भूमि थी, उनका गहरा लगाव था, और भारतीय राष्ट्रीयता के नवजागरण की अपक्षाए थी, दूसरी और उनका आदशवाद था, प्रजातन्त्र के प्रति उनकी सपूर्ण प्रतिबद्धता और शेख अब्दुल्ला के प्रति उनका व्यक्तिगत स्नेह। निस्सदेह सरदार पटेल एमी स्थिति से दूसरे ढग से निपटते, जसा कि वास्तव मे उन्होने हैदराबाद और जूनागढ के मामलो मे किया। और फिर भी, जब किसी राष्ट्र को नेता के रूप म एक सच्चे द्रष्टा को प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है, तो उसे आदशवाद की कीमत भी कभी कभी स्वय ही चुकानी पडती है।

उस समय का सकेत शब्द रायशुमारी था और वह शेख अब्दुल्ला क हाथ म तुरुप का पत्ता बन गया। भारत के पक्ष मे रायशुमारी जीत सकने वाले व्यक्ति के रूप मे वह वस्तुत अपना पूरा हक माग सकता था। और उसने एसा बार-बार किया भी, न केवल सत्ता को हथियाकर, बल्कि अनवरत पिताजी के पीछे पडकर भी। विभाजन के विध्वस के समय उसने उन पर राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ द्वारा जम्मू म मुसलमानो का कत्लेआम आयोजित करवाने का इल्जाम लगाया जो कभी साबित न हो सका। हम बताया गया कि वह जवाहरलाल जी से यह कहने भी गया कि जब गाधीजी की हत्या हुई तब पिताजी ने मिठाइया बटवाई थी। यो भी जवाहरलाल जी और मेरे पिता कोई जिगरी दोस्त तो थे नही, इसलिए शेख अब्दुल्ला यह बात पडित जी के दिल मे बैठाने म सफल हो गया कि जब तक पिताजी राज्य म मौजूद रहग, तब तक रायशुमारी जीतना मुमकिन नही हो पाएगा। उनके बीच राजनतिक तनाव अब असह्य हो चला था, और यह केवल समय की ही बात थी कि उनमे से किसी एक को धीरे-से बाहर निकाल देना जरूरी हो गया था।

यहा पिताजी और शेख अब्दुल्ला, इन दो शक्तिशाली व्यक्तियो क बीच इस सघष की कुछ पृष्ठभूमि का उल्लेख उपयोगी होगा। आरम्भ मे पहले हो मरे मामा ठाकुर नाहरसिंह चन्द द्वारा दोनो की भेंट करवाने का प्रयत्न किया गया था। वस्तुत 26 सितबर, 1947 को शेख अब्दुल्ला ने पिताजी को जेल से एक पत्र

लिखा था जिसे मेहरचंद महाजन ने "सीमित क्षमा याचना" के रूप में लिया था। वह इस प्रकार था

'महाराजा की खिदमत में,

यह करीब डेढ़ साल की कैद के बाद है कि जिसकी अरसे से ख्वाहिश थी—मुझे ठाकुर नाचित चंद जी के साथ तफसील से गुफ्तगू करने का मौका मिला। इस दौरान रियासत में जो बदकिस्मत वाकयात हुए उनका जिक्र करना मैं जरूरी नहीं समझता। लेकिन रियासत का हर भला चाहनेवाला अब यह महसूस कर रहा है कि पिछले अफसोसनाक वाकयातों में से बहुत से ऐसे हैं जिनकी बुनियाद आमतौर पर ऐसी गलतफहमियां पर हैं जो मतलबी लोगों के जरिए अपने जाती मतलब पूरा करने की गरज से पैदा की हुई मालूम होती हैं। पहले वजीरे-आला आर० सी० रामचंद्र काक ने अपने शरारती तरीकों और उस्तादी फितरता के जरिए इन गलतफहमियों को इंतिहा दर्जे तक पहुंचा दिया और उन्हें अपनी इस कोशिश में, आरजी तौर पर ही सही कुछ हद तक कामयाबी भी हासिल हुई। उन्होंने मुझे और मेरी जमात को स्याह से स्याह रंगों में पेश किया और महाराजा को और आपके लोगों को और नजदीक लाने के लिए जो कुछ भी हमने किया या करने की कोशिशें कीं उसमें मेरे ऊपर धटियापन और खुदगरजी के मकसद थोपे गए। लेकिन खुदा का शुक्र है कि महाराजा और रियासत के दुश्मनों का आज पर्दा फाश हो गया है।

पिछले दिनों में जो कुछ भी हुआ उसके बावजूद मैं महाराजा को यह इत्मीनान दिलाना चाहता हूं कि मैंने और मेरी पार्टी ने महाराजा की शख्सियत, शाही तख्त या खानदान के खिलाफ कोई गरबफादारी का जज्बा दिल में कभी नहीं रखा। इस खूबसूरत मुल्क को पनपाना और यहां के लोगों की तरक्की हमारा मुतफिक्करा मकसद और दिलचस्पी है और मैं महाराजा को अपनी और अपने जमात की मदद दिली और वफादारी से हिमायत का यकीन दिलाता हूं। इतना ही नहीं, बल्कि मैं महाराजा को यह भी इत्मीनान दिलाता हूं कि कोई भी पार्टी वह चाहे रियासत के अंदर की हो या बाहर की अगर वह मंजिलें मकसूद को हासिल करने की हमारी कोशिशों में रुकावट डालने की जुर्रत करती है तो उसे हम अपना दुश्मन समझेंगे और उसके साथ वैसा ही सलूक किया जाएगा।

ऊपर बयान किए गए मुतफिक्करा मकसद को हासिल करने के लिए एक दूसरे की ईमानदारी और भरोसा एक बुनियादी जरूरत है। बिना इसके कामयाबी के साथ उन भारी मुश्किलों का सामना करना मुमकिन न होगा जो आज रियासत को चारों तरफ घेरे हुए हैं।

इस खत को खत्म करने से पहले मैं एक बार फिर महाराजा को अपनी मुतवा

तिर वफादारी का इत्मीनान दिलाना चाहता हू और खुदा से इल्तिजा करता हू कि महाराज की परवरिश मे वह अम्न, तरक्की और बेहतरीन सरकार का एक ऐसा ज़माना ला दे जो किसी गैर से कम न हो और जो दूसरा के लिए एक मिसाल कायम कर दे।

महाराजा का सबसे फर्मांबर्दार खादिम
शे० मो० अब्दुल्ला"

इस आशाजनक पत्र ने शेख अब्दुल्ला का जेल मे रिहाई दिला दी और इसके बाद गुलाब भवन मे उनके और पिताजी के बीच एक बठक हुई जिसमे, मुझे बताया गया कि उन्होंने पिताजी को परपरागत दरबारी रिवाज क अनुसार एक सोने की मोहर भेंट की। लेकिन ज़ाहिरा तौर पर कोई ठोस नतीजा नहीं निकला और शीघ्र ही पाकिस्तान के हमले और अधिमिलन क परिणामस्वरूप सारी परिस्थिति ही बिल्कुल बदल गई। उसके पश्चात पासा पिताजी क विरुद्ध पडा और जवाहर लाल नेहरू का पूरा समर्थन पाकर शेख लोकप्रियता की लहर क शिखर पर आरूढ हो गए। शेख के साथ नजदीकी व्यक्तिगत दोस्ती के अलावा जवाहरलाल जी को सचमुच यह विश्वास हो गया था कि कश्मीर की विशेष परिस्थितिया म जहा मुसलमानो का बहुमत है, राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय कारणा से यह नितात आवश्यक है कि शेख अब्दुल्ला को राज्य की सरकार मे पूरी तरह शामिल किया जाए। इस प्रकार पिताजी को भेजे गए 13 नवम्बर, 1947 के एक पत्र म उन्होंने लिखा

"जसा कि मैंने आपको बताया, एक ही व्यक्ति जो कश्मीर म काम करके दिखा सकता है वह है शेख अब्दुल्ला। जिस तरह उसने उठ रहे सकट का मुकाबिला किया उससे उस आदमी के गुण का पता चलता है। उसकी ईमानदारी और उसके सामान्य दिमागी सतुलन के बारे म मेरा ऊचा खयाल है। उसने साम्प्रदायिक शाति बनाए रखने के लिए ज़बरदस्त कोशिश की और उसमे काफी हद तक कामयाबी पाई। छोटी-मोटी बातो म वह कितनी ही गलतियां कर सकता है लेकिन अहम फसला मे उसके सही होने की ही सभावना है।

लेकिन सच बात तो यह है कि कश्मीर के मसले का अगर कोई हल निकल सकता है तो सिर्फ शेख अब्दुल्ला क माफत ही। यदि ऐसा है तो उस पर पूरा विश्वास किया जाना चाहिए। पूरे विश्वास और आधे अधूरे क अविश्वास कोई और स्थिति नहीं है जिससे कोई फायदा तो है नहीं और नुकसान मुमकिन है। यदि इस प्रकार पूरा विश्वास करने मे कोई खतरा भी हो तो भी इस खतरे को उठाना पड़ेगा जहा तक मैं थोड़ी अवधि के और लबी अवधि क दोनो ही दृष्टिकोणा से देख सकता हू, कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता। शेख अब्दुल्ला सफाई के साथ

सहयोग करने का इच्छुक है और किसी भी युक्ति-संगत दलील को मान भी जाता है। मैं आपको यह सुझाव दूंगा कि आप उससे निकट व्यक्तिगत संपर्क बनाए रखें और उससे सीधे ही व्यवहार करें न कि किन्हीं मध्यस्थों के जरिए।"

मैं प्रायः यह सोचा करता हूं कि इस उपमहाद्वीप की राजनैतिक परिस्थिति कितनी भिन्न होती यदि शेख और पिताजी के बीच किसी तरह का समझौता हो पाता। दोनों ही व्यक्ति गर्वीले, दोनों ही सत्तावादी। कुछ कागजों को देखने पर, जो पिताजी के देहांत के बाद मेरे हाथ लगे और जिनमें वह पत्र भी था जिसका मैंने अभी अभी उद्धरण दिया, यह स्पष्ट है कि जब सत्ता शेख अब्दुल्ला के हाथ में सौंप दी गई, उसके बाद से उनके और पिताजी के बीच तनाव अक्षुण्ण रूप से बराबर बना रहा। ऐसा लगता है कि जवाहरलाल जी ने पिताजी के साथ किसी प्रकार का एक समीकरण बैठाने की कोशिश जरूर की, क्योंकि 1947-48 की अवधि में उनके द्वारा लिखे गए लंबे-लंबे पत्र हैं जिनमें उन्होंने समसामयिक राजनैतिक परिस्थिति के बारे में कुछ तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। लेकिन पिताजी और शेख अब्दुल्ला के बीच जो तनाव था वह किसी वास्तविक समझौते के विकास में आड़े आ जाता था। झगड़े के कई कारण थे। एक तो जम्मू और कश्मीर राज्य की फौजों के भविष्य की बात थी जिनके पिताजी कमांडर इन चीफ बने रहे। जाहिरा तौर पर शेख अब्दुल्ला ने यह मांग की कि उनकी प्रधान मंत्री के रूप में नियुक्ति के पश्चात राज्य की फौजों का प्रशासनिक नियंत्रण भी उन्हें हस्तांतरित कर दिया जाना चाहिए। जब इस पर जोरदार आपत्ति उठाई गई तो उन्होंने सुझाव दिया कि उनका परिचालन संबंधी और प्रशासनात्मक नियंत्रण भारतीय सेना को सौंप दिया जाए। परिचालन की दृष्टि से यद्यपि ये फौजें हमले के दिनों से ही भारतीय सेना के नियंत्रण में थीं, तो भी पिताजी लगता है, इस बात से सहमत नहीं थे कि उनका अस्तित्व भारतीय सेना में एकदम ही विलीन कर दिया जाए। शेख अब्दुल्ला के एक ज्ञापन के उत्तर में उन्होंने दो महत्वपूर्ण बातें कहीं

"मैंने ज्ञापन में दिए गए सुझाव के संबंध में गंभीरता से विचार किया। ऐसा लगता है कि इस प्रश्न के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर शायद आपका ध्यान नहीं गया है। इसलिए मैं चाहूंगा कि आप निम्नलिखित बातों पर ध्यानपूर्वक विचार करके अपने मत पर पुनर्विचार करें

(1) पहला यह कि आपके सुझाव के मुताबिक यदि राज्य की फौज का प्रशासनिक नियंत्रण भारत सरकार को हस्तांतरित कर दिया जाता है तो पाकिस्तान का प्रचार इसका यह अर्थ लगाएगा, इस बात का नाजायज फायदा उठाएगा और इसे

युक्ति सगत दिखलाई देने वाला मामला बना लेंगे कि पूरा सैनिक नियन्त्रण अपने हाथ म लेकर राज्य को सपूणतया भारतीय सघ म मिला लिया गया है। इस प्रकार का प्रभाव उत्पन्न होने नही देना चाहिए।

(2) दूसरे, पाकिस्तान का यह प्रस्ताव कि रायशुमारी के वक्त भारतीय सघ की फौजो को वापस भेज देना चाहिए, हमारे ऊपर कुछ हद तक लादी भी जा सकता है। यदि राज्य की फौजो का प्रशासनिक नियन्त्रण हस्तातरित कर दिया जाता है तो राज्य की फौजो को बरकरार रखने के लिए हमारे पास कोई तक नही रह जाएगा क्याकि प्रशासनिक दष्टि से दोनो मे कोई भेद नही रह जाएगा।

इस पर भी शेख अब्दुल्ला अपने हठ पर कायम रहे। जवाहरलाल नेहरू को लिखे गए एक लबे और रोषपूण पत्र म उन्होने राज्य की फौजा पर सीधी चोट की और उन पर तरह-तरह के अपराधो और दुर्व्यवहारो के दोष लगाए और आग्रह किया कि उनका स्वतत्र अस्तित्व समाप्त हो जाना चाहिए और यह कि भारतीय सना का चाहिए कि उन्ह पूरी तरह अपने अधिकार मे ले ले। दबाव को और बढाने के लिए उन्होने पिताजी को सूचित किया कि उनकी सरकार ने 16 अगस्त, 1948 से इन फौजियो की सारी तनख्वाहें और भत्ते बद कर देने का निश्चय किया है। यह झगडा काफी लबे अरसे तक चलता रहा, और कुछ बरसो बाद ही जाकर उनका विलयन भारतीय सेना मे हुआ।

झगडे की एक और जड थी 'आरक्षित विषय' जिनके सम्बन्ध म यह माना जाता था कि वे पिताजी के अधिकार मे छोड दिए गए हैं और जिनमे शासक परिवार के सदस्यो की विभिन्न प्रकार की पेंशनें मेहमाननिवाजी (तवाजा) का महकमा और ऐसी ही और बातें शामिल थी। फिर भूमि-सुधार का प्रश्न था। शेख और उनकी पार्टी भूमि की काश्तकारी व्यवस्था म आमूल परिवतन पर जोर दे रहे थे, जबकि पिताजी स्पष्टतया एसे किसी प्रस्ताव के खिलाफ थ। धर्मार्थ ट्रस्ट, जो राज्य के सस्थापक महाराजा गुलाब सिंह द्वारा एक धर्मार्थ क रूप म बनाया गया था, और जो राज्य के विभिन्न भागो म मौजूद हिंदू मदिरो और तीर्थ स्थानो की प्रशासनिक व्यवस्था करता था, यह भी झगडे का एक कारण बना। इस ट्रस्ट ने आक्रमण के बाद जम्मू में शरणार्थियो को खाना खिलाने में कई लाख रुपये खर्च किए, किन्तु शेख अब्दुल्ला ने आरोप लगाया कि धर्मार्थ का पैसा राजनतिक उद्देश्यो के लिए उपयोग में लाया गया, यद्यपि इन आरोपो को कभी सिद्ध नही किया गया और न इनके कोई सबूत दिए गए। वे इसके लिए बहुत लालायित थे कि उनकी सरकार ट्रस्ट को और उसकी विस्तृत सपत्तियो को अपने कब्जे म कर ले। यह बात एक गहरे और कटुतापूर्ण विवाद का विषय बन गई और अन्त म सरदार पटेल को व्यक्तिगत रूप म हस्तक्षेप करना

पड़ा और एक समझौता किया गया जिसके मुताबिक पिताजी सोल ट्रस्टी बने रहे, लेकिन चार्टर्ड एकाउंटेंट की एक प्रसिद्ध फर्म को ट्रस्ट की निधि का संपूर्ण लेखा परीक्षण करने के लिए नियुक्त किया गया।

इन और अन्य झगड़ों के गुण दोषों के अलावा मुख्य बात यह थी कि पिताजी और शेख अब्दुल्ला दो ऐसी राजनैतिक संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते थे जो परस्पर इतनी भिन्न और विषम थीं कि किसी समझौते की संभावना लगभग न के बराबर थी। पिताजी सामंतशाही व्यवस्था के अंग थे और अपनी बुद्धिमत्ता और क्षमता के बावजूद नई व्यवस्था को स्वीकार करना और शेख अब्दुल्ला की जनवादी नीतियों को गले से नीचे उतारना उनके लिए संभव न था। दूसरी तरफ शेख अब्दुल्ला एक चमत्कारी जननेता और कश्मीरी के एक उत्कृष्ट वक्ता होते हुए भी डोगरा विरोधी और राजतंत्र विरोधी कटु प्रवृत्ति से ओत प्रोत थे। उनकी सामाजिक आर्थिक नीति जिसकी व्याख्या कई साल पहले 'नया कश्मीर' शीर्षक एक पुस्तिका में की गई थी समानतावादी और समाजवादी विचारधारा पर आधारित थी, जिसमें शासक अधिक से अधिक एक सत्ताहीन, नाममात्र का अध्यक्ष भर होगा।

उनके बीच इस सैद्धांतिक मतभेद के साथ साथ एक और पेचीदा बात यह थी कि शेख वास्तव में कश्मीरी मत का प्रतिनिधित्व करते थे, जो संख्या की दृष्टि से बहुमत होते हुए भी राज्य के केवल एक ही क्षेत्र तक सीमित था। पिताजी को इधर डोगरों की पारंपरिक निष्ठा प्राप्त थी, जिनका जम्मू क्षेत्र में बहुमत था। इस प्रकार मेरे पूर्वजों द्वारा संस्थापित जम्मू और कश्मीर राज्य की बहुक्षेत्रीय प्रकृति में अंतर्निहित विरोधाभास 1947 में अंग्रेजों के जाने के बाद की घटनाओं के साथ-साथ ऊपर उभड़ आए। इस सारी परिस्थिति के ऊपर यह तथ्य अध्यारोपित था कि राज्य एक अंतर्राष्ट्रीय विवाद का विषय बन चुका था और अनेक वर्षों तक संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्यसूची का एक स्थायी मद बना रहा, जिसके परिणामस्वरूप रायशुमारी का प्रस्ताव निरंतर हमारे सिरों पर लटका रहा और तनाव और अस्थिरता का एक अनिश्चित कारण बना।

पिताजी और कश्मीरी नेताओं के बीच जो शत्रुता थी, वह इस बात से और भी गहरी हो गई कि कबाइली हमले के दौरान वी० पी० मेनन की आग्रहपूर्ण सलाह पर 29 अक्तूबर 1947 की रात को उनके जम्मू प्रस्थान को लेकर शेख ने बढ़ चढ़ और नाना तरीके से उन पर वार किया और उन्हें बदनाम करने की कोशिश की। देश का और सारे संसार का यह प्रचलित किया गया कि देखो इस कायर राजा को जो रात के अंधेरे में अपने परिवार, रत्नों और स्वर्णाभूषणों को लेकर अपनी राजधानी से भाग खड़ा हुआ और ऊपर चढ़ आते हुए घातक हमले की प्रचंडता का सामना करने के लिए अपनी प्रजा को छोड़ गया। ऐतिहासिक कारणों

के नेताओं ने तीखे शब्दों में धुआंधार प्रचार शुरू किया जिसकी प्रतिध्वनि दिल्ली और देश के अन्य भागों के समाचार पत्रों में गूंज उठी। परिस्थिति की विडंबना तो इस बात में थी कि शेख अब्दुल्ला स्वयं, जब हमने श्रीनगर छोड़ा उसके दो दिन पहले ही 25 अक्टूबर को हवाई जहाज से दिल्ली चले गए थे और तब तक नहीं लौटे जब तक कि भारतीय सेना पहुंच नहीं गई। उससे भी बदतर यह कि शेख अब्दुल्ला ने पिताजी पर खुले आम जम्मू में साम्प्रदायिक झगड़ों को प्रोत्साहित करने का आरोप लगाया, जिनमें मुसलमानों का कत्लेआम किया गया, और कई बरसों तक अपने भाषणों में वे कहते रहे कि डोगरों के हाथ खून से रंगे' हैं। पिताजी के समान संवेदनशील व्यक्ति के लिए इस प्रकार के आरोप स्वभावतया, नितांत कष्ट और आक्रोश के कारण बने। इसके लिए वे स्थायी श्रेय के पात्र माने जाएंगे कि भारी उत्तेजनाओं के बावजूद उन्होंने सार्वजनिक रूप से एक भव्य मौन बनाए रखा, और अपने संपूर्ण शेष जीवन में ऐसा कुछ भी नहीं कहा या किया जिससे उस संगीन मौके पर राष्ट्रीय हितों को क्षति पहुंचती।

फिर भी, दिनांक 3 दिसम्बर, 1948 के ज्ञापन में शेख अब्दुल्ला को उन्होंने अपना विरोध अवश्य प्रकट किया जो इस प्रकार है

"प्रधान मंत्री,

मैं आपका ध्यान उस विद्वेषपूर्ण प्रचार की ओर दिलाना चाहता हूं जो मेरे व्यक्तित्व के विरुद्ध राज्य में और राज्य के बाहर किया जा रहा है। मैं समझता हूं कि यह प्रधानमंत्री और मंत्रालय की जानकारी में आया होगा, लेकिन मैं यह देखता हूं कि इसका निराकरण करने के लिए अथवा ऐसी गतिविधियों पर रोक लगाने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए हैं। मैं इसके साथ ही कुछ मंत्रियों और नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं द्वारा दिए गए भाषणों की कुछ प्रतियां भेज रहा हूं जिनमें भी इसी प्रकार की आपत्तिजनक बातें हैं।

मुझे विश्वास है कि आप भी इस बात से सहमत होंगे कि संवैधानिक और नैतिक दोनों ही आधारों पर मंत्रियों के लिए इस प्रकार के प्रचार में अपने को लगाना नितांत गलत है। मैं इस बात को आपके सामने रखता हूं कि यह जितनी मेरी जानी उतनी ही मेरी सरकार की भी जिम्मेदारी होनी चाहिए कि राज्य के संवैधानिक अध्यक्ष के व्यक्तित्व, उसके गौरव और उसकी प्रतिष्ठा का पूरा सम्मान किया जाए और उसके विपरीत कोई भी प्रवृत्ति यदि कहीं किसी ओर से हो सरकार और मंत्री न करें जाए। मैं आशा करता हूं आप इन प्रवृत्तियों को और इस प्रकार के निराकरण करने के लिए तत्काल आवश्यक कार्यवाई करेंगे।

मुझे प्रसन्नता होगी यदि आप यथाशीघ्र यह बताएं कि आपका क्या करने का प्रस्ताव है।

महाराजाधिराज
3 12 48"

इस पत्र का कोई उत्तर फाइल पर नहीं है, लेकिन शेख अब्दुल्ला से यह आशा की भी नहीं जा सकती थी कि उनकी प्रतिक्रिया अनुकूल होगी। वस्तुत उन्होंने अपनी यह माग दुनी कर दी, कि पिताजी को भौतिक रूप में राज्य को छोड़कर चले जाने के लिए मजबूर कर देना चाहिए चाहे गद्दी छोड़कर या किसी और तरह।

पिताजी के साथ इच्छाशक्तियो के टकराव मे शेख अब्दुल्ला को एक बडी अनुकूलता इस बात से थी कि उन्हे जवाहरलाल नेहरू का हार्दिक समर्थन प्राप्त था। इसके विपरीत पिताजी सरदार पटेल के निकट सपर्क मे थे, जो गृह मत्रालय और राज्यो के मत्रालय के मत्री थे और शेख अब्दुल्ला द्वारा निरतर परेशान किए जाने पर उनके पक्ष मे प्राय खडे हो जाते थे। जम्मू और कश्मीर के भूतपूर्व प्रधान मत्री गोपालस्वामी आयगर भी जवाहरलाल के मत्रिमडल मे थे और उनकी राज्य सम्बन्धी व्यक्तिगत जानकारी के कारण कश्मीर के मामलो मे अनेक अवसरो पर उनकी सेवाओ का उपयोग किया जाता था। सरदार को यह बेहद नापसद था, यह उनके प्रकाशित पत्रो के प्रथम खड से स्पष्ट है। जिससे यह पता चलता है कि एक स्थिति ऐसी आ गई थी और मामला इतना गभीर हो गया था कि उन दो नेताओ के बीच एक बडी दरार पडने का अदेशा हो गया था और इसी बात पर सरदार ने अपना इस्तीफा तक लिख डाला था (पर भेजा नहीं)।

अधिमिलन से ही पिताजी ने सरदार पटेल के साथ निकट सपर्क बना रखा था और अनेक महत्वपूर्ण मामलो पर उन्हे पत्र लिखे थे। पत्राचार मे शेख द्वारा निरतर तग और अपमानित किए जाने के विरुद्ध पिताजी की ओर से की गई अनेक अपीलें सम्मिलित थी और जाहिरा तौर पर बहुत से मौको पर मामला को सुलझाने के लिए सरदार ने हस्तक्षेप भी किया। लेकिन उस समय अहम मसला सुरक्षा परिषद मे हो रहा वाद विवाद था, और राज्य के आतरिक प्रशासन मे आमूल परिवर्तन की आवश्यकता को टाला नहीं जा सकता था। ऐसा लगता है कि पहले "मैसूर नमूने" पर विचारार्थ प्रस्तुत किया गया था, जिसमे शेख अब्दुल्ला को प्रधानमत्री नियुक्त किया जाना और पिताजी का आरक्षित विषयो की देखरेख के लिए एक दीवान मिलना। कुछ ऐसी प्रकार का प्रयोग कुछ समय के लिए वास्तव मे किया भी गया, लेकिन लोकप्रियता की लहर पर आरूढ़ शेख अब्दुल्ला सत्ता के सपूर्ण हस्तातरण से कम कोई चीज स्वीकार करने को बिल्कुल

तैयार नही थे। पत्राचार मे यह भी पता चलता है कि पिताजी आक्रमणकारियो के खिलाफ सैनिक अभियान की धीमी प्रगति से बहुत असंतुष्ट थे। यह उनके एक लंबे और भावावेशपूर्ण पत्र से स्पष्ट है जो उन्होने सरदार को 31 जनवरी, 1948 को लिखा था। असंतोषजनक सैनिक स्थिति, कभी न रुकने वाले शरणार्थियो के तांते और सुरक्षा परिषद् मे अवरुद्ध विचार विमर्श के बारे मे लम्बा विवरण देने के बाद उन्होने कुछ टिप्पणिया की, जिन्हे मैं ब्यौरे मे उद्धत कर रहा हू, क्योकि उनसे उनकी उस समय की मन स्थिति का पता चलता है और दृश्य-पटल से उनके हट जाने की संभावना का पहला संकेत भी उनमे निहित है।

"ऊपर वर्णित परिस्थिति मे, जहा तक मेरा सबध है, स्थिति को साफ साफ अंगीकार करने के लिए मैं क्या संभव कदम उठा सकता हू, इसके सबध मे मेरे मन मे एक भावना आई है। कभी-कभी मैं महसूस करता हू कि मैं उस अधिमिलन को वापस ले लू जो मैंने भारतीय सघ मे किया है। सघ ने केवल आरजी तौर पर ही अधिमिलन का स्वीकार किया है और यदि सघ हमारे इलाके को वापस नही दिला सकता और आखिर मे सुरक्षा परिषद के फैसले को ही मजूर करने जा रहा है जिसका यह नतीजा हो सकता है कि हम पाकिस्तान को सौंप दिया जाए तो फिर भारतीय सघ मे राज्य के अधिमिलन से चिपके रहने का कोई प्रयोजन नही। इस वक्त तो पाकिस्तान से बेहतर शर्तें हासिल करना मुमकिन हो सकता है लेकिन वह बेमानी है क्योकि उसका मतलब होगा राज्य मे वश का अत और हिन्दुओ और सिक्खो का भी अत। मेरे लिए एक विकल्प सभव है और वह है अधिमिलन को वापस ले लेना और उससे सयुक्त राष्ट्र सघ को किया गया हवाला रद्द हो जाएगा, क्योकि यदि अधिमिलन वापस ले लिया जाता है तो भारतीय सघ को परिषद के सामने कार्यवाही जारी रखने का कोई हक नही होगा। लेकिन उस स्थिति मे कठिनाई यह होगी कि भारतीय फौजो को राज्य मे नही रखा जा सकेगा, सिवाय राज्य की मदद के लिए स्वयसेवको की हैसियत से। मैं अपनी फौजो के साथ साथ राज्य की मदद के लिए स्वयसेवको के रूप मे भारतीय सेना की कमान भी अपने हाथ मे लेने को तैयार हू, और भारतीय सघ सहमत हो तो उनकी फौजो की कमान भी ले सकता हू। इससे निश्चय ही मेरे लोगो का और फौजो का हौसला बढ़ेगा। मैं अपने देश को जितना आपके जानने मे से कोई आगे कई महीनो या बरसो मे जान पाएगा, उससे कही बेहतर जानता हू और मैं इस मामले को दृढ़ता के साथ उठाना चाहता हू बजाय इसके कि हाथ पर हाथ धर बिना कुछ किए यहा केवल बैठा रहू। यह आपके विचार करने की बात है कि भारतीय सघ इन दोनो स्थितियो मे स्वीकार करेगा, चाहे अधिमिलन वापस लेने के पश्चात् अथवा यदि अधिमिलन जारी रहता है, तब भी। मैं अपनी मौजूदा स्थिति मे

आजिज़ आ गया हू और अपने लोगो की दिल तोडने वाली तकलीफ को बेबसी से देखते रहने की बजाय लडते हुए मर जाना कही बेहतर समझता हू।

'जहा तक अन्दरूनी राजनैतिक स्थिति है, यह मामला मैंने व्यक्तिगत रूप से आप पर छोड दिया है। मैं राज्य का सवैधानिक शासक बनने को तयार हू, और जब नया सविधान बन जाए तो मैं उत्तरदायी सरकार देने के लिए भी बिल्कुल तयार हू, लकिन मैं मसूरे नमूने से आगे जाने के लिए तयार नही हू क्योकि मुझे इस बात का भरोसा नही है कि नशनल कान्फ्रेंस के नेता इस समय बहुत उपयुक्त प्रशासक हैं या उन्हे हिंदुओ और सिक्खो का अथवा मुसलमानो के ही एक बडे तबके का विश्वास प्राप्त है। इसलिए मुझे कुछ आरक्षित सत्ताए रखनी जरूरी हैं जिनसे आप वाकिफ है ही और मेरे पास अपनी मर्जी का एक दीवान होना चाहिए जो मन्त्रिपरिषद् का एक सदस्य हो और सभव हो तो उसका अध्यक्ष हो।

एक दूसरा विकल्प जो मेरी समझ म आता है वह यह कि यदि मैं कुछ नहीं कर सकता तो मैं राज्य को छोड दू (पद परित्याग नही) और बाहर निवास करू जिससे लोग यह न सोचें कि मैं उनके लिए कुछ कर सकता हू। अपनी शिकायतो के लिए व नागरिक प्रशासन को जिम्मेदार ठहरा सकते हैं याकि भारतीय फौजो को जिनके ऊपर राज्य की रक्षा का कार्यभार है। तब जिम्मेदारी साफ तौर पर या तो भारतीय सघ की होगी या फिर शेख अब्दुल्ला के प्रशासन की। यदि कोई नुक्ताचीनी होती है तो जो जिम्मेदार हैं वे उसे ग्रहण कर सकते हैं और लोगो की यातना के लिए मेरा कोई उत्तरदायित्व नही होगा। अलबत्ता मेरा अदाज है कि —जसा लोग तब कहन लग थ जब मि० मैनन की सलाह पर मैंने कश्मीर छोडा था कि मैं श्रीनगर स भाग गया था—व यह कहगे कि विपत्ति की घडी म मैंने उन्हे छोड दिया, लकिन केवल आलोचना बचाने के लिए ही ऐसी स्थिति म बने रहने म भी क्या लाभ जहा कोई कुछ कर ही नही सकता। बल्कि अगर मैं राज्य से बाहर जाता हू तो मुझे जनता को विश्वास म लेना पडेगा और उन्हे यह बताना पडेगा कि किन कारणो स मैं बाहर जा रहा हू।

सरदार का जवाब 9 फरवरी को आ गया। उसम जो कारगर प्रत्युत्तर था वह सक्षिप्त लेकिन ठोस था। उन्होने लिखा

मैं अच्छी तरह यह समझ रहा हू कि कितनी यन्त्रणा म आपका वक्त गुजर रहा है। मैं आपको विश्वास दिला सकता हू कि मैं भी कश्मीर की स्थिति के बार म और जो कुछ सयुक्त राष्ट्र सघ म हो रहा है उसके विषय म कम चिंतित नही हू मगर वर्तमान स्थिति जो भी हो राज्य को उसम कोई स्थान नहीं है।

बाद के पत्रों में जो मुद्दे उठाए गए उनमें शेख अब्दुल्ला को कारगर सत्ता सौंपने के संबंध में पिताजी द्वारा जारी की गई एक घोषणा, दीवान ठाकुर बलदेव सिंह पठानिया का कार्यालय और कार्य आरक्षित विषयों की परिभाषा और प्रशासन, जम्मू और कश्मीरी फौजों का भविष्य और स्वभावतः शेख अब्दुल्ला की उदघोषणाएं शामिल थीं। अपने दिनांक 20 अप्रैल 1948 के एक रहस्योद्घाटक पत्र में पिताजी ने सरदार को लिखा

"प्रिय सरदार पटेल,

जैसा कि मैंने आपको और मि० मेनन और मि० शंकर को भी एक या दो बार बताया था, मेरे विरुद्ध किए जाने वाले प्रचार का एक ऐसा पहलू है जिसने मुझे इतनी तकलीफ दी है कि शब्दों में बयान नहीं की जा सकती विशेषकर जब उसका असर न केवल एक शासक के रूप में मेरी स्थिति पर पड़ता है बल्कि मेरे व्यक्तिगत सम्मान को भी ठेस पहुंचाता है। मेरा तात्पर्य उन निरंकुश और निराधार आरोपों से है जो मेरे खिलाफ लगाए जा रहे हैं कि मैंने रात के सन्नाटे में राजधानी छोड़ दी और ट्रकें भरकर फर्नीचर और दूसरी वस्तुएं उठा ले गया। सामान्यतया मैं इन आरोपों को तरह दे गया होता लेकिन यह जानकर मुझे बड़ा अपमान हुआ और काफी सदमा पहुंचा कि उन्हें मेरे वर्तमान प्रधानमंत्री के कुछ वक्तव्यों में भी अभिव्यक्ति मिली। मैं आपका ध्यान सुरक्षा परिषद में शेख अब्दुल्ला द्वारा दिए गए उस भाषण की ओर दिलाना चाहूंगा जिसमें उन्होंने निम्नलिखित शब्द कहे

(1) 'महाराजा रात के सन्नाटे में अपने दरबारियों के साथ राजधानी छोड़कर चले गए जिसका नतीजा यह हुआ कि लोगों में दहशत फैल गई। अब वहां ऐसा न था जो सूरते हाल पर काबू पा सकता। इस तरह शासन में तब्दीली हुई और हम हुकूमत की बागडोर सम्हालनी पड़ी। महाराजा ने आगे चलकर इस कानूनी जामा पहना दिया।'

(2) जितना यह आरोप तथ्यों से एकदम अलग है, इसकी गवाही मुझे विश्वास है, आपके सचिव मि० मेनन देंगे, जिनके आग्रह पर मैं श्रीनगर से जम्मू छोड़कर गया। दूसरा आरोप, कि मैं ट्रकों में भरकर अपना सामान ले गया बिल्कुल झूठा और काल्पनिक है। बात यह है कि कुछ मोटरों में उन अधिकारियों के परिवार जो सरकारी काम में लगे हुए थे जम्मू गए और नौकर-चाकरों के परिवार मेरे पीछे पीछे आए। इन परिवारों को यात्रा की सुविधाएं उपलब्ध कराना मैंने अपना नैतिक उत्तरदायित्व समझा। मेरा सारा सामान जो सामान्यतया श्रीनगर में स्थायी रूप में रहता है वह अब भी वहीं है। मुझे विश्वास है कि आप भी इस बात को मानेंगे कि ऐसे भाषण और

आरोपण जिम्मेदार और प्रशासन में ऊंचे ओहदे पर बैठे लोगों और नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्यों द्वारा किए जाएंगे तो निश्चय ही शासक और उसकी प्रजा के बीच मनमुटाव और विच्छेद की भावनाएं बढ़ेंगी।

(3) आप यह पूछ सकते हैं कि भाषण दिए हुए इतना अरसा बीत जाने के बाद इस बात को मैं फिर से उठा रहा हूं लेकिन बावजूद इस तथ्य के कि इन आरोपों को अभी भी जारी रखा जा रहा है और लगातार प्रचार द्वारा इनमें विश्वास पैदा किया जा रहा है मेरे प्रधान मंत्री के भाषण को कश्मीर विश्व चेतना की अपील शीर्षक से एक पुस्तिका के रूप में भी बंटवाया जा रहा है। मैं आशा करता हूं कि आपका मंत्रालय एक अधिकृत घोषणा या विज्ञप्ति द्वारा, सही तथ्य समझाकर और शेख अब्दुल्ला को, जो चूक उन्होंने की है, उसकी क्षतिपूर्ति करने के लिए राजी करके, इस प्रचार को गलत साबित करने में कामयाब होगा।

(4) इस विषय पर बात करते हुए मैं इस प्रचार के एक महत्वपूर्ण पहलू का उल्लेख भी करना चाहूंगा जो मेरे विरुद्ध चलाया जा रहा है, कि मैं एक तानाशाही और एकतंत्री शासक था कि जन आंदोलन डोगरा अत्याचारों के विरुद्ध संचालित किया गया था कि आज जो स्थिति पहुंची है वह लोगों द्वारा मेरे और मेरी हुकूमत के खिलाफ प्रस्तुत की गई लड़ाई का ही परिणाम है। इस तथ्य के अलावा कि मैं किसी भी निष्पक्ष व्यक्ति के समक्ष संतोषप्रद रूप से इस बात को रख सकता हूं और साबित कर सकता हूं कि 1934 से लेकर किसी समय जो सुधार मैंने अपने लोगों को दिए हैं, वे भारत के किसी राज्य के शासक द्वारा दिए गए सुधारों में आगे हैं और भारत की संवैधानिक तरक्की के प्रति मेरा रवैया किसी और शासक के मुकाबिले कहीं ज्यादा प्रगतिशील रहा है, मैं यह पूछना चाहता हूं कि यह मुझे उखाड़ने से लगा कौन सा उपयोगी उद्देश्य सिद्ध हो सकेगा। अपने तई तो मैं अतीत में वह सभी जो अप्रिय था भूल जाने का प्रयत्न कर रहा हूं। क्या मैं उन सभी लोगों से भी जो सत्ता में हैं अपने प्रति ऐसे ही सलूक की मांग करने में गलती कर रहा हूं? और भी, मुझे एक निरंकुश एकतंत्री शासक के रूप में प्रस्तुत करने में शायद इस बात को नहीं समझा जा रहा है कि इससे पाकिस्तानी प्रचार को ही मदद मिलती। मैं तो यह समझता था कि वे खुद ही पाकिस्तान के इस प्रचार को गलत साबित करने की जरूरत महसूस करेंगे, बजाय पुरानी भावना को ताजा बनाए रखने के क्योंकि जैसा कुछ जानकार लोगों ने मुझे बताया पूंछ और मीरपुर के विनाश का समय मंत्रालय द्वारा जारी की गई प्रचार सामग्री के पन्नों में पढ़ा जा सकता है।

(5) मैं आशा करता हूं कि इस विषय में शेख अब्दुल्ला को आपकी ओर से दिए गए निर्देश अब तक भी इस क्षति को पूरा करने में कुछ हद तक सहायक

होंगे। मैं आपको विश्वास दिला सकता हू कि यदि मैंने यह महसूस न किया होता कि य दोना बातें प्रचार की दष्टि से जम्मू और कश्मीर को जीतकर भारतीय डोमिनियन के साथ स्थाई रूप से मिलाने के लिए महत्वपूण हैं, ता मैंने उन पर इतना जोर न दिया होता।

आपका
हरि सिंह"

तयापि, यह स्पष्ट है कि सरदार भी इस स्थिति मे नही थे कि शेख अब्दुल्ला को रोक सकें, और फरवरी 1949 म जब तक मैं भारत लौटा, तब तक हालत बहुत नाजुक हो गई थी और एक सपूण गतिरोध आ पहुचा था। माच म मैं अठारह का हो गया, लेकिन इस घटना की ओर किसी का ध्यान ही नही गया क्योंकि वातावरण तनाव और अनिष्ट की आशका से भरा था। इसके शीघ्र बाद ही पिताजी को सरदार पटेल का एक आमत्रण मिला जिसम यह सुझाव था कि व मा और मुझको लेकर मशविरे क लिए दिल्ली आ जाए। हम एक चाटर किए गए डी सी 3 विमान से चले। जब हम हवाई जहाज पर चढे तो मुझे इसका कोई आभास नही था कि पिताजी की केवल भस्म ही अब अपने प्यार जम्मू को लौट पाएगी।

आठ

दिल्ली पहुंचने पर पहले हम पुरानी दिल्ली में मेडंस होटल में ठहरे और बाद में इंपीरियल में चले गए। वहां पहुंचने के शीघ्र बाद ही पिताजी, मां और मुझको पं० जवाहरलाल नेहरू ने तीनमूर्ति हाउस में अपने साथ लंच पर आमंत्रित किया। इंदिरा गांधी मेजबान थीं, और यद्यपि पिताजी और जवाहरलाल जी एक दूसरे की उपस्थिति में असुविधाजनक अनुभव कर रहे थे, फिर भी कोई खुली दुश्मनी नहीं थी। जाहिरा तौर पर जवाहरलाल जी ने उनसे वास्तविक व्यवहार की बातें तय करने की जिम्मेदारी सरदार पर छोड़ दी थी। 29 अप्रैल को हमने सरदार के साथ भी भोजन किया, जिसमें उनकी बेटी मणिबेन और उनके निजी सचिव वी० शंकर भी उपस्थित थे। डिनर के बाद मेरे माता पिता और सरदार दूसरे कमरे में चले गए, और वहां ही वह आघात लगा। सरदार ने पिताजी से नम्रता से किंतु दृढ़तापूर्वक यह कहा कि यद्यपि शेख अब्दुल्ला उनके राज परित्याग पर जोर दे रहा है लेकिन भारत सरकार यह समझती है कि यदि वे और मां राज्य से कुछ महीनों के लिए अनुपस्थित हो जाते हैं तो इतना ही काफी होगा। उन्होंने कहा कि उस वक्त संयुक्त राष्ट्र संघ में रायशुमारी का जो प्रस्ताव सक्रिय रूप से आगे बढ़ाया जा रहा है उसे मद्देनजर रखते हुए यह राष्ट्र के हित में होगा। उन्होंने यह भी कहा कि चूंकि अब मैं अमेरिका से लौट आया हूं, उनकी अनुपस्थिति में उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का पालन करने के लिए उन्हें मुझको रीजेंट नियुक्त कर देना चाहिए।

पिताजी स्तब्ध रह गए। यद्यपि कुछ समय से ऐसी अफवाह थी कि उन्हें राज्य से बाहर भेजा जा सकता है, फिर भी उन्हें यह कभी विश्वास नहीं था कि सरदार भी इस तरह का रास्ता अख्तियार करने की सलाह देंगे। बैठक से निकल कर वे बाहर आए तो उनका चेहरा फक था, जबकि मां को अपने आंसुओं को रोकने में बड़ी जद्दोजहद करनी पड़ रही थी। सरदार भी, जब हम दरवाजे तक पहुंचाने आए, तो गम्भीर दिखलाई पड़ रहे थे। मुझे तुरंत यह महसूस हुआ कि गम्भीर रूप से कुछ गलत हो गया है लेकिन वहां कुछ भी पूछने की हिम्मत नहीं हुई। हम चुपचाप होटल वापस आए। पिताजी तुरंत अपने सलाहकारों,

बक्शी टेकचन्द और मेहरचन्द महाजन के और अपने स्टाफ आफिसरों के साथ गुत्थी हो गए। मां अपने कमरे में गई जहां वे अपने बिस्तर पर गिरकर रो पड़ी। मैं उनके पीछे वहां गया और जब वे थोड़ी शांत हुई तो उन्होंने बताया कि उन्हें और पिताजी को राज्य के बाहर धकेला जा रहा है और यह कि भारत सरकार मुझे रीजेंट नियुक्त कराना चाहती है।

इसी संगीन मौके पर जवाहरलाल जी ने अपने निवास स्थान पर दिए गए अनेक नाश्तों में से पहले नाश्ते पर मुझे आमंत्रित किया। टेबुल दो ही व्यक्तियों के लिए लगाई गई थी, चूंकि इंदिरा गांधी और लड़कों ने अपना भोजन पहले ही समाप्त कर लिया था। जवाहरलाल जी फुर्ती से चलते हुए आए, दोस्ती से "हैलो, टाइगर" शब्दों के साथ हाथ मिलाया, और हम नाश्ता करने बैठ गए। भोजन करते हुए, जो लगभग एक घंटे चला, जवाहरलाल जी ने मुझसे कुछ सामान्य प्रश्न पूछे और तब जमकर एक लंबा एकालाप किया। बड़ी शायस्ता जुबान में उन्होंने इस बात का जिक्र किया कि एक नए भारत का सृजन किया जा रहा है, पुरानी सामंतशाही व्यवस्था तेजी से ढहती जा रही है और नौजवान होते हुए मुझे अपने को नई परिस्थिति के अनुरूप ढाल लेने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। तब उन्होंने कश्मीर समस्या की रूपरेखा, शेख अब्दुल्ला की भूमिका और राष्ट्रीय हित में राज्य के सामंजस्य स्थापित की आवश्यकता बयान की। फिर उन्होंने संक्षेप में कहा कि जाहिरा तौर पर पिताजी नई व्यवस्था को स्वीकार करने में असमर्थ हैं या उसमें सहमत नहीं हैं और उनका और शेख अब्दुल्ला दोनों ही का यह मत था कि मुझे रीजेंट नियुक्त कर दिया जाए, जिससे वर्तमान गतिरोध को दूर किया जा सके। तब उन्होंने भारत के भविष्य का उल्लेख किया तो एक धीमी आग में उनकी आंखें चमक उठीं और उनकी आवाज में एक निनाद का स्वर गूंजने लगा।

मैं उनके इस व्यक्तित्व का प्रशंसक तब से था जब मैं स्कूल में पढ़ता था और उनके सान्निध्य में होना और उनकी बातें सुनना मनोमुग्धकारी अनुभव होता था। जब वे उन व्यापक ऐतिहासिक प्रभावों की बात करते जो सारे विश्व में प्रवाहित हो रहे हैं, तो ऐसा लगता कि जैसे सारी आत्मा के सामने भारत की गाथा साकार हो रही हो। यह उन संकुचित दृष्टिकोणों से जो मैं पिताजी के महल में सुना करता और घर के उस सर्वव्यापी तनाव और षड्यंत्र से भरे वातावरण से कितना भिन्न था। मैंने अपने स्कूल के दिनों में एक प्रख्यात डाक्टर होने का और अपने लोगों के लिए कुछ ठोस काम करने का स्वप्न देखा था। अब राजा बनने की बात तो चली गई और वह कभी वापस आने की नहीं। लेकिन व्यापक राष्ट्रीय हित में कुछ काम करने का यह उससे भी अधिक शानदार मौका था और वह भी अपने समय के एक महानतम नेता के व्यक्तिगत आदेश पर।

अगले कुछ दिनों तक तनाव धीरे धीरे बढ़ता चला। हम इंपीरियल होटल मे चले गए थे जहां हमने कई सुइटों पर कब्जा कर रखा था और वहां पिताजी से मिलने आने वाले लोगों का लगातार तांता बंधा रहता था। उनमें सबसे प्रमुख वी० शंकर थे जो, सरदार के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण, राज्यों के मंत्रालय में उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण बन गए थे। सरदार पटेल ने एक दिन शाम को मुझे बुलाया और पूरी परिस्थिति के बारे में मैत्रीपूर्ण ढंग से विशद चर्चा की। जवाहर लाल जी की बातचीत भारतीय राष्ट्रीयता के व्यापक संदर्भ में थी, जबकि सरदार ने एक सीमित दायरा चुना। उन्होंने कहा कि यद्यपि वे पूरी तरह महसूस करते हैं कि पिताजी के साथ अन्याय किया जा रहा है तो भी विस्तृत राष्ट्रीय हित में खासतौर पर शेख अब्दुल्ला के जोर देने की वजह से उन्हें इससे सहमत होना पड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि मैं बहादुरी से परिस्थिति का सामना करूं और साहस और विश्वास के साथ अपनी नई जिम्मेदारियों को सम्हालूं। उस नाजुक मौके पर उनकी बात से मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला। उसके तुरन्त बाद ही वे देहरादून के लिए रवाना हो गए, और यह तय हुआ कि पिताजी, मां और मैं भी बाद में उनसे भेंट करने वहां जाएंगे। इस बीच पिताजी भारत सरकार द्वारा उन्हें जो वस्तुतः अंतिम चेतावनी दी गई थी, उससे जूझने में लगे थे और राज्य को छोड़ देने की नियति को स्वीकार करने के लिए धीरे धीरे तैयार हो रहे थे। मेरे ऊपर रीजेंटी को अस्वीकार कर देने के लिए भी कुछ दबाव डाला जा रहा था लेकिन मैंने जितना हो सका उतनी विनम्रतापूर्वक यह इंगित कर दिया कि मेरे विचार में यह उचित नहीं होगा कि पूरा परिवार ही राज्य को छोड़ दे और जम्मू और कश्मीर से सभी नाते तोड़ दे।

मैं मुश्किल से अठारह का था, लेकिन संभवतः उन परिस्थितियों के कारण जिनमें मैं बड़ा हुआ था मैंने पाया कि बहुत वरिष्ठ नेताओं के साथ बातचीत करने में भी मैं अपनी जान रखने में पूरी तरह समर्थ था। हालांकि ऊपरी तौर पर मैं आत्म विश्वास की कमी जाहिर नहीं होने देता था, तो भी मुझे मानना पड़ेगा कि मैं अंदर ही अन्दर प्रायः आतंकित सा होने लगता। पिछले कुछ वर्ष इतने परिवर्तनशील थे और अमरिका में मेरी अपनी लम्बी अनुपस्थिति ने भी एक अजीब से और उखड़े हुए वातावरण को पैदा करने में हिस्सा बंटाया। मेरे बचपन के सभी चिह्न तिरोहित हो चुके थे, यहां तक कि मां भी, जिनके साथ मेरे स्नेह नजदीकी भावात्मक सम्बन्ध थे, मानसिक रूप से टूटन की था। वस्तुतः उनकी स्थिति पीड़ादायक रूप से कठिन थी, एक ओर तो अपने स्वभावगत भेद के बावजूद पिताजी के प्रति उनकी निष्ठा थी और दूसरी ओर अपनी एक मात्र संतान के प्रति उनका स्नेह था। अपने स्वभाव के कारण पिताजी ने समस्या के सम्बन्ध में साधे मुझसे चर्चा कभी नहीं की। कथोपकथन या तो उनके निजी

सचिव पडित भीमसेन साहे, या मेहर चद महाजन के माध्यम से होना था, जो प्रधान मत्री का पद छोड देन के बाद भी उनके नजदीकी विश्वासपात्र बन रहे। एसा लगता है कि शुरू के आघात के पश्चात पिताजी ने थोडे समय के लिए राज्य छोड दन के लिए अपने को अनुकूल बना लिया था, हालाकि मैं सोचता हू कि व यह जान गए थे कि उनका अब कभी वापस जाना उतना आसान नहीं होगा। लेकिन राज परित्याग के व बिल्कुल खिलाफ थ और 6 मई को सरदार पटेल को लिखे गए एक पत्र म उन्होने इसे स्पष्ट कर दिया था। मैं नीचे उनके पत्र और जो उत्तर सरदार पटेल न देहरादून स भेजा था, उनको पूरा प्रस्तुत कर रहा हू, क्योकि उनका मेरे जीवन की बाद की घटनाओ स महत्वपूर्ण सम्बध है।

"प्रिय सरदार पटल,

मेरी आप से 29 अप्रल और 1 मई 1949 को जो चर्चा हुई थी उसे अपन मस्तिष्क म घुमाता रहा हू और अब मैं इस स्थिति म हू कि राज्य से मेरी अस्थायी अनुपस्थिति क सम्बध म आपने जो प्रस्ताव मेरे सामन रखा था, उसके बारे म अपनी सुस्थिर प्रतिक्रिया आपको बता सकू।

मैं शुरू म ही यह कहना चाहूगा कि जब आपके जैसे व्यक्ति के मुख स यह प्रस्ताव सुना जिसम प्रारम्भ स ही मैंन अगाध निष्ठा और विश्वास रखा था और व्यक्तिगत रूप से मेरे और मेरी रियासत के वतमान और भविष्य दोनो स ही सम्बध रखन वाले अनेक प्रश्नो के विषय म जिनकी सलाह मैंन बराबर मानी तो मैं एकदम हैरान रह गया था, लकिन अब मैंन अपने को उसके अनुकूल बना लिया है। लेकिन यदि मैं प्रतिष्ठा, सम्मान और पद के एस त्याग की माग के प्रति घोर निराशा और विस्मय की भावना को व्यक्त न करू तो यह मानवीय नहीं होगा, जबकि कभी कभी अपन विवेक और आत्मचेतना के विपरीत भी और कभी तो कुछ ही महीनो पहल स्वीकार की गई व्यवस्था के भी विरुद्ध, राज्य की सवधानिक स्थिति क सम्बध म मुझ भारत के प्रधान मत्री और आपस जो सलाह मिलती रही है, उसका पालन करन म ही मैं बराबर सतोष करता रहा हू। और न मेरे आपस अपनी भावना को छिपाना उचित होगा कि, जबकि मेरा अब्दुल्ला को समय-समय पर, जब आप उसके मत म आगए अपन वादा किए गए और निश्चित [illegible] स हटन की, जेल स छूटने के पहल मेरे प्रति जो निष्ठा उसन व्यक्त की थी और जिस निष्ठा की शपथ उसने कार्यभार ग्रहण करते समय ली थी उसके विपरीत निरतर काय करता रहा, और खुले तौर पर अपनी महत्वाकाक्षाओ [illegible] राज्य के भीतर और बाहर दोनो म मेरे खिलाफ विद्वेषपूर्ण और दूषित आदोलन का अभियान चलाता रहा, छूट दी गई मुझे एक स्थिति स दूसरी स्थिति म [illegible] जाता रहा [illegible] प्रत्यक्ष था ही, मैं समझता हू कि मैं राज्य स बाहर [illegible]

अगले कुछ दिनों तक तनाव धीरे धीरे बढ़ता चला। हम इंपीरियल होटल में चले गए थे जहां हमने कई सुइटों पर कब्जा कर रखा था और वहां पिताजी से मिलने आने वाले लोगों का लगातार तांता बंधा रहता था। उनमें सबसे प्रमुख वी० शंकर थे जो, सरदार के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण राज्यों के मंत्रालय मे उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण बन गए थे। सरदार पटेल ने एक दिन शाम को मुझे बुलाया और पूरी परिस्थिति के बारे में मैत्रीपूर्ण ढंग से विशद चर्चा की। जवाहर लाल जी की बातचीत भारतीय राष्ट्रीयता के व्यापक संदर्भ में थी, जबकि सरदार ने एक सीमित दायरा चुना। उन्होंने कहा कि यद्यपि वे पूरी तरह महसूस करते हैं कि पिताजी के साथ अन्याय किया जा रहा है तो भी विस्तृत राष्ट्रीय हित मे खासतौर पर शेख अब्दुल्ला के जोर देने की वजह से उन्हें इसमें सहमत होना पड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि मैं बहादुरी से परिस्थिति का सामना करूं और साहस और विश्वास के साथ अपनी नई जिम्मेदारियों को सम्हालूं। उस संगीन मौके पर उनकी बात से मुझे बहुत प्रोत्साहन मिला। उसके तुरंत बाद ही वे देहरादून के लिए रवाना हो गए, और यह तय हुआ कि पिताजी, मां और मैं भी बाद में उनसे भेंट करने वहां जाएंगे। इस बीच पिताजी भारत सरकार द्वारा उन्हें जो वस्तुतः अंतिम चेतावनी दे दी गई थी, उससे जूझने में लगे थे और राज्य को छोड़ देने की नियति को स्वीकार करने के लिए धीरे धीरे तैयार हो रहे थे। मेरे ऊपर रीजेंटी को अस्वीकार कर देने के लिए भी कुछ दबाव डाला जा रहा था, लेकिन मैंने जितना हो सका उतनी विनम्रतापूर्वक यह इंगित कर दिया कि मेरे विचार मे यह उचित नहीं होगा कि पूरा परिवार ही राज्य को छोड़ दे और जम्मू और कश्मीर से सभी नाते तोड़ दे।

मैं मुश्किल से अठारह का था, लेकिन संभवतः उन परिस्थितियों के कारण जिनमें मैं बड़ा हुआ था, मैंने पाया कि बहुत वरिष्ठ नेताओं के साथ बातचीत करने में भी मैं अपनी बात रखने में पूरी तरह समर्थ था। हालांकि ऊपरी तौर पर मैं आत्म विश्वास की कमी जाहिर नहीं होने देता था, तो भी मुझे मानना पड़ेगा कि मैं अंदर ही अंदर प्राय आतंकित सा होने लगता। पिछले कुछ वर्ष इतने परिवर्तनशील थे और अमेरिका में मेरी अपनी लंबी अनुपस्थिति ने भी एक अजीब से और उखड़े हुए वातावरण को पैदा करने में हिस्सा बटाया। मेरे बचपन के सभी चिह्न तिरोहित हो चुके थे, यहां तक कि मां भी जिनके साथ मेरे इतने नजदीकी भावात्मक सम्बन्ध थे, मानसिक रूप से टूटने को थी। वस्तुतः उनकी स्थिति पीड़ादायक रूप से कठिन थी, एक ओर तो अपने स्वभावगत भेदों के बावजूद पिताजी के प्रति उनकी निष्ठा थी और दूसरी ओर अपनी एक मात्र संतान के प्रति उनका स्नेह था। अपने स्वभाव के कारण पिताजी ने समस्या के सम्बन्ध में सीधे मुझसे चर्चा कभी नहीं की। कथोपकथन या तो उनके निजी

सचिव पंडित भीमसेन साहे, या मेहर चंद महाजन के माध्यम से होना था, जो प्रधान मंत्री का पद छोड़ देने के बाद भी उनके नजदीकी विश्वासपात्र बने रहे। ऐसा लगता है कि शुरू के आघात के पश्चात पिताजी ने थोड़े समय के लिए राज्य छोड़ देने के लिए अपने को अनुकूल बना लिया था, हालांकि मैं सोचता हूं कि वे यह जान गए थे कि उनका अब कभी वापस जाना उतना आसान नहीं होगा। लेकिन राज परित्याग के वे बिल्कुल खिलाफ थे और 6 मई को सरदार पटेल को लिखे गए एक पत्र में उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया था। मैं नीचे उनके पत्र और जो उत्तर सरदार पटेल ने देहरादून से भेजा था, उनको पूरा प्रस्तुत कर रहा हूं, क्योंकि उनका मेरे जीवन की बाद की घटनाओं से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

"प्रिय सरदार पटेल,

मेरी आप से 29 अप्रैल और 1 मई 1949 को जो चर्चा हुई थी उसे अपने मस्तिष्क में घुमाता रहा हूं और अब मैं इस स्थिति में हूं कि राज्य से मेरी अस्थायी अनुपस्थिति के सम्बन्ध में आपने जो प्रस्ताव मेरे सामने रखा था, उसके बारे में अपनी सुस्थिर प्रतिक्रिया आपको बता सकूं।

मैं शुरू में ही यह कहना चाहूंगा कि जब आपके जैसे व्यक्ति के मुख से यह प्रस्ताव सुना, जिसमें प्रारम्भ से ही मैंने अगाध निष्ठा और विश्वास रखा था और व्यक्तिगत रूप से मेरे और मेरी रियासत के वर्तमान और भविष्य दोनों से ही सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रश्नों के विषय में जिनकी सलाह मैंने बराबर मानी तो मैं एकदम हैरान रह गया था, लेकिन अब मैंने अपने को उनके अनुकूल बना लिया है। लेकिन यदि मैं प्रतिष्ठा, सम्मान और पद के ऐसे त्याग की मांग के प्रति घोर निराशा और विस्मय की भावना को व्यक्त न करूं तो यह मानवीय नहीं होगा, जबकि कभी कभी अपने विवेक और आत्मचेतना के विपरीत भी और कभी तो कुछ ही महीनों पहले स्वीकार की गई व्यवस्था के भी विरुद्ध राज्य की संवैधानिक स्थिति के सम्बन्ध में मुझे भारत के प्रधान मंत्री और आपसे जो सलाह मिलती रही है, उसका पालन करने में ही मैं बराबर संतोष करता रहा हूं। और न मेरे आपसे अपनी भावना को छिपाना उचित होगा कि, जबकि शेख अब्दुल्ला को समय-समय पर जब जैसा उनके मन में आया अपने वादों किए गए और लिखित शब्दों से हटने की, जेल से छूटने पर पहले मेरे प्रति जो निष्ठा उसने व्यक्त की थी और जिस निष्ठा की शपथ उसने बारबार ली, परन्तु हर समय ही वो उसके विपरीत निरंतर काम करता रहा और खुले तौर पर अपने सहयोगियों सहित राज्य के भीतर और बाहर दोनों में मेरे खिलाफ मिथ्याप्रचार और दूषित लांछन का अभियान चलाता रहा, छूट भी दी गई, मुझे एक स्थिति से दूसरी स्थिति में ढकेला जाता रहा, जिसमें से प्रत्यक्ष था ही, मैं समझता हूं कि इस राज्य मंत्रालय की

सलाह पर ही ग्रहण किया था।

यह विरोधाभास स्वभावतया मुझ में तलखी उत्पन्न करता है। तो भी, एक बार फिर आपके विवेक और अपने प्रति आपकी सदभावनाओ म पूरा विश्वास रखत हुए मैं आपकी इच्छा पूर्ति के लिए और उस तथ्य पर विचार करते हुए जिस पर आपने जोर दिया अर्थात संयुक्त राष्ट्र सघ का प्रेषण से उत्पन्न जटिलताए और रायगुमारी का मुद्दा, मैं राज्य से तीन या चार महीने की अवधि के लिए अपने को अनुपस्थित करने के लिए कदाचित तैयार हो जाऊ।

लेकिन इसी प्रस्ताव से उत्पन्न कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनके सबध मे मैं आपको अपनी स्थिति स्पष्ट करने का साहस करूगा और जिन पर आपका आश्वासन पाकर आभार मानूगा। मैं आशा करता हू कि मेरे द्वारा इन आश्वासना को मागने की आवश्यकता का आप कृपया सराहेंगे। पिछले कई महीनो के अपने कटु अनुभव के प्रकाश मे मुझे निकट भविष्य के विषय म सोचने का विवश होना पड रहा है और इन बातो के सबध म स्पष्ट घोषणा प्राप्त करना मेरा अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति और अपने वश के प्रति दायित्व है।

(1) यह कदम राज परित्याग के किसी विचार की भूमिका नही है, इस बात से मैं आश्वस्त होना चाहूगा। मैं यह अभी स्पष्ट कर देना चाहता हू कि इस पिछले विचार को मैं एक क्षण के लिए भी स्वीकार नही कर सकता और इसके जो भी परिणाम हो मैं उन्हें भुगतने के लिए पूरी तरह तयार हू। अपने प्रधान मत्री और उनके सहयोगियो की इस प्रकार की माग को मैं उन अनेक समझौतो का, जिनके आधार पर समय समय पर सवधानिक व्यवस्था की जाती रही है, स्पष्ट उल्लघन और उनकी निष्ठाहीनता, विश्वासघात और धोखेबाजी का एक पक्का जाल मानता हू।

(2) शेख अब्दुल्ला को साफ साफ यह कह देना चाहिए कि वे मेरे विरुद्ध मिथ्यापवाद के अभियान को बद करें और अपनी और अपने अनुयायिओ की एसी सभी कारवाइया को छोड दें जिनका मकसद मेरा राज परित्याग करवाना हो। मैं महसूस करता हू कि यदि मुझे उनके सावजनिक और निजी आघाता का शिकार बनाया जाता रहा ता मुझसे जो त्याग करने को कहा जा रहा है वह व्यर्थ होगा।

(3) यह स्पष्ट आश्वासन दिया जाना चाहिए कि मेरा और मेरे समर्थको का किसी भी प्रकार के उत्पीडन के विरुद्ध सरक्षण किया जाएगा। इस सबध म मैं आपका ध्यान विशेष रूप से उन तथ्यो की ओर दिलाना चाहूगा जिनकी रिपोर्ट मुझे दी गई है और जो उन लोगो के बारे म है जिन्हे मेरे राज परित्याग के पक्ष म हस्ताक्षर न करने के कारण जेल म बदी बना लिया गया है।

(4) इस बात पर कि मैं स्वास्थ्य के कारणो से तीन या चार महीना तक राज्य से बाहर रहूगा मुझे डर है कोई भी विश्वास नही करेगा और इससे राज्य

के भीतर और बाहर भी तरह-तरह की भ्रातिया पैदा हागी और अटकल लगाए जाएग क्योकि—

(क) सभी यह जानते हैं कि मेरा स्वास्थ्य इतना खराब नही है कि मुझे राज्य स बाहर लबे आराम की आवश्यकता हा। मैं आपकी सलाह पर अभी हाल ही मैं जम्मू प्रदेश के कुछ भागो मे अप्रैल की गर्मी म भी दौरा करता रहा हू।

(ख) हर ऐसे व्यक्ति के लिए जिसकी तदुरुस्ती खराब हो, कश्मीर सबसे उत्तम स्वास्थ्य और विश्राम स्थल माना जाता है और सचमुच यह अजीब-सा लगगा यदि यह बनाकर कि ऐसा मैं स्वास्थ्य के कारणा से कर रहा हू, मैं राज्य से बाहर चला जाऊ।

(ग) मैं जहा भी अस्थाई रूप से निवास करूगा अपने को चहार दीवारी मे बद ता नही रख पाऊगा। लागा स मिलना ही पडेगा और जब व लोग मुझसे मिलेंगे तो उन्ह कभी यह विश्वास नही हागा कि मैं स्वास्थ्य के कारणा स वहा रह रहा हू।

(घ) कुछ और कारण, जो युक्तिसगत हो और साथ ही जिसम मेरे गौरव और प्रतिष्ठा को समझौता न करना पडे, बताना चाहिए। सबस अच्छी बात ता यह हागी कि भारत सरकार दिल्ली म मेरे लिए कोई एसी स्थिति खाज ले जहा उपरोक्त 3 या 4 महीना म मेरी सेवाआ का उचित ढग से उपयाग म लाया जा सके।

(5) इस बात की परम आवश्यकता है कि महारानी साहिबा मेरी अनुपस्थिति म राज्य म युवराज के साथ रह। वह तरुण और प्रभावशील है और उस माता पिता के मार्गदर्शन और उनम स कम से कम एक की देखभाल की आवश्यकता है। एक मा का उसके एकमात्र बच्चे स, जिस वक्त विदेश म तरह महान की अनुपस्थिति के कारण देख रही हो, अलग करने की हठ म मुझे न ता राजनतिक औचित्य और न ही न्यायपरता के विचार म कोई कारण दिखाई दता है। महज इसानियत का खयाल ही इसको एकदम रद्द करन के लिए काफी हाना चाहिए।

(6) मेरे निजी इलाको, घरा और दूसरी जायदाद का, जिन अनुपस्थिति की पार्टी की आक्रामक कारवाइया स सरक्षण किया जाना चाहिए। ये मरे घरा बागीचा, जमीना तथा दूसरी सपत्ति पर कब्जा करन की कोशिश करेंगे। एसे आक्रामक काम के विरुद्ध भारतीय डोमिनियन की गारटी भी चाहिए। मरे यहा रहते हुए भी हरकतें करन की उनकी हिम्मत नहा पडती, लकिन मरी गर मौजूदगी म व यह कोशिश करेंग। मुझे यह सूचना मिली है कि गत दिनो कब जिन म हा जब मैं जम्मू म रहा था तो श्रीनगर म मेरी जमीना पर अनधिकार प्रवेश किया गया है।

(7) जिस मेरा सरकारी कागज की फौजो की फाइला व्यवस्था म स

सलाह पर ही ग्रहण किया था।

यह विरोधाभास स्वभावतया मुझ में तलखी उत्पन्न करता है। तो भी, एक बार फिर आपके विवेक और अपने प्रति आपकी सदभावनाओं म पूरा विश्वास रखते हुए मै आपकी इच्छा पूर्ति क लिए और उस तथ्य पर विचार करत हुए जिस पर आपने जोर दिया अर्थात सयुक्त राष्ट्र सघ को प्रेषण से उत्पन्न जटिलताए और रायशुमारी का मुद्दा, मैं राज्य से तीन या चार महीन की अवधि के लिए अपने को अनुपस्थित करने क लिए कदाचित तैयार हो जाऊ।

लेकिन इसी प्रस्ताव म उत्पन्न कुछ प्रश्न एस हैं जिनके सबध मे मैं आपको अपनी स्थिति स्पष्ट करने का साहस करूगा और जिन पर आपका आश्वासन पाकर आभार मानूगा। मैं आशा करता हू कि मेरे द्वारा इन आश्वासनो को मागने की आवश्यकता को आप कृपया सराहेग। पिछले कई महीनो के अपने कटु अनुभव के प्रकाश मे मुझे निकट भविष्य के विषय म सोचने को विवश होना पड रहा है और इन बातो के सबध म स्पष्ट घोषणा प्राप्त करना मेरा अपन प्रति, अपने परिवार के प्रति और अपने वश के प्रति दायित्व है।

(1) यह कदम राज परित्याग के किसी विचार की भूमिका नही है इस बात से मैं आश्वस्त होना चाहूगा। मैं यह अभी स्पष्ट कर देना चाहता हू कि इस पिछले विचार को मैं एक क्षण के लिए भी स्वीकार नही कर सकता और इसके जो भी परिणाम हो मैं उन्हे भुगतन के लिए पूरी तरह तयार हू। अपने प्रधान मत्री और उनके सहयोगियो की इस प्रकार की माग को मैं उन अनेक समझौतो का जिनके आधार पर समय समय पर सवैधानिक व्यवस्था की जाती रही है स्पष्ट उल्लघन और उनकी निष्ठाहीनता विश्वासघात और धोखेबाजी का एक पक्का जाल मानता हू।

(2) शेख अब्दुल्ला को साफ साफ यह कह देना चाहिए कि व मेरे विरुद्ध मिथ्यापवाद के अभियान को बद करें और अपनी ओर अपने अनुयायिओ की एसी सभी कारवाइयो को छोड दें जिनका मकसद मेरा राज परित्याग करवाना हो। मैं महसूस करता हू कि यदि मुझे उनके सावजनिक और निजी आघातो का शिकार बनाया जाता रहा तो मुझसे जो त्याग करने को कहा जा रहा है वह व्यथ होगा।

(3) यह स्पष्ट आश्वासन दिया जाना चाहिए कि मेरा और मेरे समर्थको का किसी भी प्रकार के उत्पीडन के विरुद्ध सरक्षण किया जाएगा। इस सबध मे मै आपका ध्यान विशष रूप से उन तथ्यो की ओर दिलाना चाहूगा जिनकी रिपोट मुझे दी गई है और जो उन लोगो क बारे म है जिन्हे मेरे राज परित्याग के पक्ष म हस्ताक्षर न करने के कारण जेल मे बदी बना लिया गया है।

(4) इस बात पर कि मैं स्वास्थ्य क कारणो स तीन या चार महीना तक राज्य से बाहर रहूगा मुझे डर है, कोई भी विश्वास नही करगा और इससे राज्य

के भीतर और बाहर भी तरह तरह की भ्रांतिया पैदा होगी और अटकल लगाए जाएगे क्योकि—

(क) सभी यह जानते हैं कि मेरा स्वास्थ्य इतना खराब नही है कि मुझे राज्य से बाहर लबे आराम की आवश्यकता हो। मैं आपकी सलाह पर अभी हाल ही मैं जम्मू प्रदेश के कुछ भागो मे अप्रल की गर्मी म भी दौरा करता रहा हू।

(ख) हर ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसकी तदुरुस्ती खराब हो, कश्मीर सबसे उत्तम स्वास्थ्य और विश्राम स्थल माना जाता है और सचमुच यह अजीब-सा लगगा यदि यह बताकर कि ऐसा मैं स्वास्थ्य के कारणो से कर रहा हू, मैं राज्य से बाहर चला जाऊ।

(ग) मैं जहा भी अस्थाई रूप से निवास करूगा, अपने को चहार दीवारी म बद तो नही रख पाऊगा। लोगो स मिलना ही पडेगा और जब वे लोग मुझसे मिलेंगे तो उन्हे कभी यह विश्वास नही होगा कि मैं स्वास्थ्य के कारणो से वहा रह रहा हू।

(घ) कुछ और कारण, जो युक्तिसगत हो और साथ ही जिनसे मेरे गौरव और प्रतिष्ठा को समझौता न करना पडे, बताना चाहिए। सबस अच्छी बात तो यह होगी कि भारत सरकार दिल्ली मे मेरे लिए कोई ऐसी स्थिति खोज ले जहा उपरोक्त 3 या 4 महीनो मे मेरी सेवाओ का उचित ढग से उपयोग मे लाया जा सके।

(5) इस बात की परम आवश्यकता है कि महारानी साहिबा मेरी अनुप स्थिति मे राज्य मे युवराज के साथ रह। वह तरुण और प्रभावशील है और उसे माता पिता के मार्गदर्शन और उनम स कम से कम एक की देखभाल की आव श्यकता है। एक मा को उसके एकमात्र बच्चे से, जिसे वह विदेश म तरह महीने की अनुपस्थिति के बाद देख रही हो, अलग करने की हठ मे मुझे न तो राजनतिक औचित्य और न ही न्यायपरता के विचार से कोई कारण दिखाई दता है। महज इसानियत का खयाल ही इसको एकदम रद्द करन के लिए काफी होना चाहिए।

(6) मेरे निजी इलाको, घरो और दूसरी जायदाद का, शेख अब्दुल्ला की पार्टी की आक्रामक कारवाइयो से सरक्षण किया जाना चाहिए। वे मेरे घरो बागीचो, जमीनो तथा दूसरी सपत्ति पर कब्जा करने की कोशिश करेंगे। ऐसे आक्रामक काय के विरुद्ध भारतीय डोमिनियन को गारटी देनी चाहिए। मेरे वहा रहते हुए ऐसी हरकतें करने की उनकी हिम्मत नही पडती, लेकिन मरी गैर मौजूदगी मे वे यह कोशिश करेंगे। मुझे यह सूचना मिली है कि इन पिछले कुछ दिनो म ही जब मैं जम्मू मे दिल्ली गया था, तो श्रीनगर मे मेरी जमीनो पर अनधिकार प्रवश किया गया है।

(7) बिना मेरी सहमति के राज्य की फौजो की वतमान व्यवस्था म या

कि शासक की सवैधानिक स्थिति, विशेषाधिकारा आदि के बार मे कोइ परिवतन न किया जाए। अपने स्टाफ के लिए (राज्य और निजी दोना विभागो क) अपनी फौजो के अफ्सरो म स चुनने की जो व्यवस्था है वह जारी रहगी। मेरी फौजा क गार्डों की मेरे महला पर तैनाती वतमान के अनुसार ही जारी रहेगी जसा कि मेरे दिनाक 30 अगस्त के पत्र और उसक उत्तर मे मि० मनन के 3 अक्टूबर के पत्र द्वारा समझौता हुआ था। मुझ जिस स्टाफ की भी, जसी जरूरत हागी, उस मैं अपन साथ बाहर ले जाऊगा।

(8) मेरे भारत म आवास की अवधि म, मैं जहा भी रह, वहा उपयुक्त सख्या म सनिक गाड रखन का अधिकार मुझे हाना चाहिए।

(9) युवराज की हिफाजत और सुरक्षा का भार भारतीय डोमिनियन पर होगा। राज्य और भारतीय सेना को उसकी अगरक्षा करनी चाहिए।

(10) राज्य सना, सिविल लिस्टा, हुजूर विभागा आदि से सबधित शष बातें भी मेरे साथ शीघ्र ही तय की जानी चाहिए।

निष्कष स्वरूप मैं यह कहना चाहूगा कि उपरोक्त बिंदुआ पर आपके आश्वासन प्राप्त होने पर ही मैं अतिम निणय ले पाऊगा।

इपीरियल होटल,
नई दिल्ली।
6 मई, 1949

अति सद्भाव सहित, आपका,
हरि सिंह"

लगभग एक पखवाडे बाद देहरादून से सरदार पटेल का उत्तर आया।

कप दून कोट,
देहरादून
23 मई, 1949

प्रिय महाराजा साहिब,

आपके दिनाक 6 मई, 1949 के पत्र के लिए धयवाद।

(2) मुझे बडी खुशी है कि आपस चर्चा के दौरान मैंन आपके सामने जो प्रस्ताव रखा था उसके लिए आपने अपने को राजी कर लिया है। मैंने जो एसा किया वह काई हलके हृदय से नही था। अधिमिलन क अभिलेख पर हस्ताक्षर करन के बाद से ही महाराजा साहिब ने जो रख अख्तियार किया है उसकी जानकारी मुझम ज्यादा और किसी को नहीं हो सकती। महाराजा साहिब ने मेरे प्रति हमेशा जा सहयोग और समझदारी की भावना दर्शाई है और कृपा भाव व्यक्त किए हैं उनके लिए मैं आपका आभारी हू। मैं महाराजा साहिब का यह

विश्वास दिला सकता हू कि अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करने स पहले मैं सावधानी से विचार करने के पश्चात् इस नतीजे पर पहुचाया था कि समान रूप से महाराजा साहिब के अपने, उनके वश के और दश के हितो की यह माग है कि वे कदम उठाए जाए जिन्ह आपने स्वीकार कर लिया है। इसमे जो व्यक्तिगत त्याग निहित है उसे मैं भली भाति जानता हू, लेकिन मुझे भरोसा है कि जैस महाराजा साहिब ने और कितने ही परिवतनो से अपने को अभ्यस्त बना लिया है, वसे ही अपसे देश के प्रति कत्तव्य भाव के साथ और घटनाओ के गुरुतर विधान के आगे शाति समपण की भावना से यह कदम भी उठा लेंगे।

(3) उन बिंदुओ के विषय मे जो महाराजा साहिब न मेरे समक्ष रखे हैं, मैं यह निवेदन करना चाहूगा कि महाराजा साहिब के राज परित्याग का प्रश्न नही उठता। हमने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट कर दी है और हम आशा करते है कि इस बात को लेकर जो सावजनिक विवाद उठ खडे हुए हैं, और महाराजा साहिब के सबध मे प्रेस मे और राज्य मे मच पर से जो अपमानजनक बातें कही जा रही है, उनका अत हो जाएगा। लेकिन महाराजा साहिब यह तो मानेंगे ही कि राज्य का जो भावी सविधान होगा उसका निणय तो विधिवत निर्वाचित सविधान सभा करेगी। मुझे खेद है कि महाराजा साहिब ने परा 4 (3) मे जिस उत्पीडन का उल्लेख किया है उसके काई स्पष्ट उदाहरण न होने के कारण मेरे लिए कोइ आश्वासन देना सभव नही है, लेकिन मैं महाराजा साहिब से यह कह सकता हू कि यदि ऐसे कोई उदाहरण हमारी जानकारी मे लाए गए तो हम उन पर अवश्य ध्यान देंगे और कोशिश करेंगे कि न्याय किया जाए।

(4) महाराजा साहिब ने अपने राज्य से बाहर रहने के कारणा के बारे मे जो कछ कहा है उस मैं समझता हू, लेकिन मेरे विचार मे केवल इतना ही कहना बेहतर होगा कि पिछले कई महीनो की थकान और तबियत बराबर खराब रहन की वजह से महाराजा साहिब न कुछ महीनो के लिए राज्य से बाहर रहना तय किया है। वास्तविक अवधि देने की जरूरत नही है।

(5) आपकी अनुपस्थिति म महारानी साहिबा के युवराज के साथ रहन के सवाल के बारे मे हमने सावधानी से विचार किया, लेकिन विभिन्न कारणो से हम यह समझते हैं कि फिलहाल यही सबस अच्छा होगा कि कुछ समय के लिए वे भी अलग रहें। बाद म समय समय पर वे अवश्य ही युवराज से मिल सकती हैं और युवराज भी महाराजा साहिब और महारानी साहिबा स कभी-कभी भेंट कर सकते है।

(6) अपने पत्र क पैरा 6 मे महाराजा साहिब न अपने जिन निजी इलाको, मकानो और अन्य सपत्ति का हवाला दिया है यदि उनकी एक सूची मुझे भिजवा सकें ता मैं महाराजा साहिब का आभारी हाऊगा। सूची प्राप्त होने पर हम आप

के मन्त्रालय से बात करेंगे। इस बीच मे, मैं आशा करता हू कि विभिन्न विवादास्पद मामलो पर शेख माहम्मद अब्दुल्ला के साथ समझौता हो जाने से वे अब स्वय ही महाराजा साहिब की सम्पत्ति की अधिक्रमण के खिलाफ हिफाजत करने के लिए कदम उठाएगे। विशेष रूप से, मैं आशा करता हू कि उनकी युवराज के प्रति जो भावनाए ह, वे पिछले कई महीनो के अध्याय का समाप्त करने म, और महाराजा साहिब और परिवार को व्यक्तिगत रूप स और वश को सामान्य रूप स प्रभावित करने वाली इन और अन्य समस्याओ क प्रति सरकार और नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओ, दाना ही के रुख मे एक स्वस्थ सामान्य परिवर्तन लान म सफल होगी। मैं उम्मीद करता हू कि महाराजा साहिब ने परा 7 म जिस व्यवस्था का जिक्र किया है इसमे तब्दीली की कोइ जरूरत पडनी नही चाहिए फिर भी अगर ऐसी कोई जरूरत पडी तो हम बेशक महाराजा साहिब स सलाह करेंगे। हम आपके भारत मे निवास के दौरान आपकी सुरक्षा की आवश्यक व्यवस्था भी करेंगे और युवराज की हिफाजत और सुरक्षा की भी पूरी जिम्मेदारी हमारी हागी।

(7) जहा तक बाकी बचे मामला की बात है, हम महाराजा साहिब को सूचित कर ही चुके है कि आपकी सिविल लिस्ट 15 लाख रुपए पर बाध दी गई है, जिसमे स आपात अवधि मे 6 लाख रुपए का भुगतान राज्य द्वारा और 9 लाख रुपए का भारत सरकार द्वारा किया जाएगा। इस राशि मे से महाराजा साहिब को महारानी साहिबा और युवराज के लिए नियतन करना होगा। रीजेंट बन जाने स युवराज के खर्चे निस्सदेह पहले स कही ज्यादा हागे। मुझे उम्मीद है कि उनकी जरूरता को ध्यान मे रखते हुए महाराजा साहिब उनके लिए उपयुक्त भत्ता दना स्वीकार करेंगे। इस विषय मे आपका सुझाव जानकर मुझे प्रसन्नता होगी। इसी तरह महारानी साहिबा के भत्ते के बारे म भी मैं आपके प्रस्ताव का स्वागत करूगा। ऐसे विषयो की सूची जिन पर महाराजा साहिब का, और आपकी अनुपस्थिति म रीजेंट के रूप म युवराज का नियत्रण होगा शेख साहिब को दे दी गइ है और उन्होने जल्दी स जल्दी अपनी टिप्पणी देने का वायदा किया है। उनकी टिप्पणी प्राप्त होने पर हम पूरे मामले को अतिम रूप द देंगे, लेकिन इस बीच महाराजा साहिब 5 लाख रुपयो के नियतन म से राज्य विभागो के ऊपर व्यय के प्रमुख और अन्य शीर्षों को उपयुक्त आवटन कर सकते हैं।

समादर सहित

आपका शुभेच्छु
वल्लभ भाई पटेल

उसी दिन सरदार पटेल ने इस पत्र की एक प्रति जवाहरलाल नेहरू को भेज दी। यह टिप्पणी मे निम्नलिखित परा है "जहा तक युवराज का सम्बध है, हमारी उसस ब्यौरे से बात हुई और मैंने उसे किए गए समझौतो की विशपता

और महत्व और उनसे जो परिणाम निकलते हैं उनके बारे म जार देकर समझा दिया है। वह समझदार लडका है और मेरे विचार म उसने स्थिति को काफी अच्छी तरह से समझ लिया है और उसे अपनी जिम्मेदारिया का एहसास है। निस्सदेह अभी वह अपनी किशोरावस्था म है और उस थोडे मागदशन की जरूरत होगी। मैं उसके लिए एक उपयुक्त सलाहकार देख रहा हू जिसकी सलाह पर वह निभर हा सके। उपयुक्त व्यक्ति के चुनाव म हमे बहुत सतक होना पडेगा।"

यह पत्र-व्यवहार होने के शीघ्र बाद ही हम सब सरदार पटेल के सुझाव पर देहरादून गए, जो खुद भी वहा स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। मेरे माता पिता एक होटल मे ठहरे, लेकिन सरदार के विशेष आमत्रण पर तीन हफ्ते मैं "दून कोट" के नाम से मशहूर सकिट हाउस म उनका मेहमान रहा जो सुदर फूला, वृक्षो और झाडियो से भरे एक विस्तत इलाके मे स्थित है। जाहिरा तौर पर उन्होने और जवाहरलाल जी न यह तय किया कि अपनी नई जिम्मेदारियो को सम्हालने से पहले उनके साथ कुछ समय रहना मेरे लिए उपयोगी होगा। उस समय सरदार का स्वास्थ्य बहुत खराब था और उनकी बेटी मणिबेन बडी आस्थापूवक उनकी सुश्रुता मे बराबर लगी थी, व आमतौर पर अपने कमरे मे ही भोजन करते थे पर कभी कभी मुझे बुला लिया करते थे और कश्मीर के बारे मे बातचीत करते थे। यद्यपि उनम प्रधानमत्री जसी चिनगारी और जोश नही था, तो भी व जिस शात विश्वास के साथ बात करते थे वह बडा प्रभावशाली था। लगता था कि यह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके लिए कोई समस्या इतनी दुर्जेय नही है जिसे हल न किया जा सके। केवल कश्मीर के बार मे ही, जिसका काम जवाहर लाल जी स्वय देख रहे थे, सरदार प्रत्यक्ष रूप से प्रमन्न नही थे। यद्यपि उन्होने मेरी उपस्थिति मे जवाहरलाल जी की कभी आलोचना नही की, ता भी उनकी बातचीत से साफ जाहिर था कि वे शेख अब्दुल्ला के साथ उनके विशेष सम्बन्ध की हिमायत नही करते थे, जिन्हे वे जाहिरा तौर पर विश्वास योग्य नही मानते थे और नापसन्द करते थे।

जब मैं देहरादून मे था तो मैं दून स्कूल एक बार फिर तीन साल पहले जब उसे छोडा था उसके बाद पहले-पहल, जा सका। अब तक मैं बिना छडी की सहायता के चलने लगा था हालाकि चलने मे एक हचक ता शेष जीवन मे मेरे साथ बनी ही रहेगी। उस स्कूल मे फिर से आकर उन्ही कमरो और मैदानो को एक बार फिर देखना जहा एक लडके के रूप मे मैंने इतने सारे वष गुजारे, बडा कौतूहल-पूण लग रहा था। मि० फुट इग्लैड वापस चले गए और ज० ए० के० मार्टिन हेडमास्टर थे। जक गिल्सन न, जो तब भी कश्मीर हाउस के हाउस मास्टर थ, मेरा इस तरह स्वागत किया मानो एक बहुत दिना का बिछुडा दास्त हा और उनके काटेज मे हमने शतरज की कई बाजिया खेली। सप्ताहात म मैं ऊपर मसूरी

भी गया और यह समय हमने ज्यादातर श्री लक्ष्मी निवास बिड़ला और उनके परिवार के साथ गुजारा जो सरदार और वी० शंकर के नजदीकी थे।

मेरे माता पिता दिल्ली जल्दी चले आए और यह निर्णय लिया गया कि जब तक मैं लौटूं तब तक पिता जी मुझे रीजेंट नियुक्त कर दें और मैं 20 जून को अपनी नई जिम्मेदारियों का सम्हालने के लिए हवाई जहाज से श्रीनगर तक जाऊं मुझे मालूम हुआ कि मां भी बहुत बेमन से राज्य को छोड़ने के लिए तो राजी हो गई थी, लेकिन चूंकि उन्हें बम्बई की गर्मी बर्दाश्त नहीं थी, इसलिए वे वहां की बजाय कसौली जाएंगी। इससे पहले कि मैं श्रीनगर जाऊं एक बात करनी बाकी रह गई थी। एक श्रद्धालु हिन्दू होने के नाते मां ने जोर दिया कि मेरा यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न कर देना चाहिए। यह कार्य 5, हेस्टिंग्ज रोड में किया गया जहां मेहर चंद महाजन रहते थे। पंडित लोग जम्मू से आए थे और पिताजी के दो नव युवक राजपूत नौकरों का संस्कार भी मेरे साथ ही हुआ। हम सबने धोतियां पहनीं, लेकिन राज पंडित के जोर देने पर भी मेरे घोर विरोध प्रकट करने के कारण मैं सिर मुंडाने से बच गया, जैसा कि परंपरा के अनुसार इस अवसर पर किया जाता है। इसके एवज में प्रतीक रूप में बालों की एक लट काट ली गई और इस तरह मैं जम्मू और कश्मीर की रीजेंसी का कार्यभार ग्रहण करते समय संन्यासी जैसा दिखलाई पड़ने की नियति से बच गया।

19 जून की रात को मैं सो ही नहीं सका। मेरे मस्तिष्क में विरोधी भावनाओं और विचारों की उथल पुथल मची थी। यह स्पष्ट था कि मैं एक नाजुक काम को हाथ में ले रहा था जिसमें जोखिम था, यहां तक कि खतरा भी। पिताजी ने इस सारी स्थिति से अपनी अप्रसन्नता को छिपाया नहीं, और हालांकि नियति के आगे उन्होंने अपना सिर झुका लिया था लेकिन मैंने यह महसूस किया कि इस प्रक्रिया में हमारे आपस के सम्बन्ध बिगड़ गए थे। मां भी अपने तई विच्छिन्न हुई जा रही थी जिसने सारी स्थिति की भावनात्मक अस्थिरता में एक नया तत्त्व जोड़ दिया था। निर्भर करने के लिए मेरे पास सिवाय जवाहरलाल जी के अवलंब के, और इस कठिन अवसर पर जिन आंतरिक स्रोतों को मैं प्रेरित कर सकता था उनके, और कोई नहीं था। 20 जून, 1949 मेरे जीवन का एक महत्वपूर्ण दिन है। पिताजी उनका स्टाफ और नौकर बड़े सवेरे ही ट्रेन से बम्बई के लिए रवाना हो गए। मां, मामा और मां की नौकरानियां कार के उसके शीघ्र बाद ही कसौली के लिए चल दिए। आधे घंटे तक मैं अपने होटल के कमरे में एकाकी बैठा रहा अतीत के भार और भविष्य के बोझ के बीच लटका हुआ। यह जीवन के उन क्रांतिकारी क्षणों में से एक था जो एक व्यक्ति के स्मृति पटल पर हमेशा-हमेशा के लिए अंकित हो रहते हैं। काफी प्रयत्न के साथ मैंने अपने को बटोरकर उठाया और अपने स्टाफ आफीसर कैप्टेन माहल सिंह को साथ ले होटल के बाहर चल

दिया। कार मे हम सफदरजग हवाई अडडा पहुचे जहा कश्मीर मामला के सचिव और एक वरिष्ठ आई० सी० एस० आफीसर श्री विष्णु सहाय के साथ, जिन्हे प्रधान मत्री ने मेरे साथ जाने के लिए तनात किया था श्रीनगर ले जाने के लिए डी सी 3 विमान हमारी प्रतीक्षा कर रहा था।

जिस घोषणा पत्र पर उसी सुबह रवाना होने से पहले पिताजी ने हस्ताक्षर किए थे, वह बहुत सक्षिप्त था। उसकी इबारत निम्नलिखित थी

घोषणा पत्र

चूकि मैंने स्वास्थ्य के कारणो से एक अस्थाई अवधि के लिए राज्य को छोडने और उस अवधि म राज्य के प्रशासन से सम्बन्ध रखने वाले अपने सभी अधिकारो और कार्यों का युवराज श्री कर्ण सिह जी बहादुर का सौंपने का निश्चय किया है।

अत अब मैं इसके द्वारा निर्देश देता हू और घोषित करता हू कि सभी अधिकार और काय, व चाहे विधिक हो, कार्यपालक हो अथवा न्यायिक जो राज्य और उसके प्रशासन के सम्बन्ध मे मेरे द्वारा प्रयोग किए जा रहे है, जिनमे विशेष रूप से मेरा कानून बनाने का घोषणा पत्रो का जारी करने का अपराधियो को माफी देने का हक और विशेषाधिकार शामिल है, मेरी राज्य म अनुपस्थिति की अवधि म युवराज श्री कर्ण सिह जी बहादुर के द्वारा प्रयोग किए जा सकेंगे।

हरि सिंह
महाराजाधिराज

जसे ही हवाई जहाज ऊपर उठा, मुझे ध्यान आया कि मेरे जीवन की कई सगीन घटनाए हवाई उडान के साथ जुडी हुई हैं। मुझे याद आया कि एक अपग के रूप मे मैंने अमेरिका की हवाई उडान भरी थी और लौटने पर भारत म एक अजीब-सा दबा घुटा स्वागत मिला था। एक बार फिर मैं वस्तुत अज्ञात की ओर ही उडकर जा रहा था। यह ठीक है कि घाटी से मैं भली भाति परिचित था लकिन मैंने महसूस किया कि मैं अब जिस कश्मीर को जा रहा था वह उससे मूलत भिन्न था जिसकी अब तक मुझे जानकारी थी। यद्यपि मैं राज्य के अध्यक्ष के रूप म जा रहा था, लेकिन दरअसल यह शेख अब्दुल्ला की रजामदी से ही था, जिसके हाथ मे प्रभावी शक्ति थी। अपने एक उखडे हुए मूड म लच के समय पिताजी ने एक बार कहा था, जिससे मा चिढ गई थी यदि मैं रीजेंट के रूप म भी गया तो भी शेख अब्दुल्ला के द्वारा कुछ ही महीनो म मैं बिना किसी औपचारिकता के बेइज्जती के साथ बाहर फेंक दिया जाऊगा। यद्यपि मैं इस भयास्पद भविष्यवाणी के प्रति मा के रोष से सहमत था, तो भी पिछले कुछ वर्षों के राज

ननिक घटनाक्रमो को देखते हुए उस मैं आसानी से टाल भी नहीं सकता था।

यद्यपि नियत कायक्रम के अनुसार हम उडकर सीधे श्रीनगर पहुचना था, कि तु मौसम की खराबी और उस जमाने की पुरानी हवाई व्यवस्था क कारण हम आग बढन स पहल जम्मू मे एक घटे ठहरना पडा। जब हवाई जहाज जम्मू से उडा तो हम एक घन बादल म घिर गए। जब हम बनिहाल दर्रे को लाघ गए तब कही जाकर बादल फटे और सामने कश्मीर घाटी दिखलाइ पडी। अपन समूच अवणनीय सौन्दय के साथ देदीप्यमान विशाल हिमालय क हृदय मे निहित किसी दुलभ रत्न के सदश।

नौ

श्रीनगर हवाई अड्डे पर शेख अब्दुल्ला और उनका पूरा मन्त्रिमण्डल वरिष्ठ अधिकारियों सहित मेरा अभिनन्दन करने एकत्र हुए थे। शेख मुझे सीढ़ियों के ऊपर आकर मिले और अपने सहयोगियों से मेरा परिचय कराया। उस वक्त मन्त्रि मंडल के नौ सदस्य थे, जिनमें प्रमुख थे, उप प्रधान मन्त्री बख्शी गुलाम मोहम्मद, शेख की पार्टी मे मुख्य सगठनकर्त्ता, और चालाक राजस्व मन्त्री मिर्जा मोहम्मद अफजल बेग, जो कुछ वर्ष पहले थोड़े ही समय चले स्वायत्त शासन के प्रयोग मे पिताजी के अधीन भी सरकार में रहे थे। गुलाम मोहम्मद सादिक, गिरधारी लाल डोगरा, शामलाल सराफ, कर्नल पीर मोहम्मद और सरदार बुध सिंह भी मन्त्रिमंडल मे थे जबकि दाढ़ी वाले मौलाना मसूदी नेशनल कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे।

स्वागत के पश्चात् हम सब मोटरों पर कर्ण महल गए। जिस घर मे एकदम भिन्न परिस्थितियों मे मैंने अपने बचपन के इतने सारे वर्ष गुजारे उसी मे एक बार फिर लौटकर आना बड़ा रोमांचकारी था। मुझे उल्लास और आशंका की उन मिश्रित भावनाओं की अब तक याद है जो मेरे मन में तब उठी जब मैं कार मे से उतरा और उस सुन्दर महल मे प्रविष्ट हुआ जिसका बगीचा फूलों से और झील पर से आती हुई शीतल बयार से दमक रहा था। दिल्ली की गर्मी बड़ी कष्टकारी थी, और उस गर्मी से दूर चले आने मे ही बड़ी राहत मिली। विष्णु सहाय, जो अशकालिक सलाहकार के रूप मे कार्य कर रहे थे, सड़क के पार वाली अतिथि काटेज मे ठहरे, और दिल्ली लौटने से पहले एक पखवाड़ा श्रीनगर में रहे। वे योग्य व्यक्ति थे जिन्हे फुसलाया नही जा सकता था और जिनकी निगाह बड़ी पैनी थी और मेरी रीजेंसी के प्रारम्भिक दिनों मे बिना किसी भावनात्मकता के अथवा तूल तमाशे के चीजों को अपने सही संदर्भ में रखने में वे सहायक सिद्ध हुए।

यद्यपि नवप्राप्त स्वतन्त्रता का स्वाद मुझे मिला तो भी मैं यह भली भांति अनुभव कर रहा था कि वस्तुतः मैं एक कठिन स्थिति में हूं। शेख अब्दुल्ला दृश्यपटल पर छाए हुए थे और जवाहरलाल नेहरू ने उनके साथ सामंजस्य में कार्य करने के लिए मुझसे विशेष रूप से कहा था। शारीरिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तित्व, वे

उस समय अपनी शक्तियों की पराकाष्ठा पर थे। व प्राय आते और राजनैतिक स्थिति पर मुझे लम्बे लेक्चर दे जाते। उन्होंने पिताजी के बारे म सीधा कभी उल्लेख नही किया और मैंने पाया कि मेरे प्रति उन्होंने कुछ सच्ची दोस्ती के भाव का प्रदर्शन किया। गोकि मुझे एहसास था कि मेरी स्थिति नाजुक है और एक तरह से मेरा इम्तिहान लिया जा रहा है। मेरे रीजेंट बन जाने से पिताजी को वास्तविक प्रसन्नता नहीं थी और जम्मू म डोगरा जनता का भी इसम एक प्रकार का खिन्न असमर्थन था। इसलिए अपने सभी कृत्यो मे मुझ ऐसा प्रदर्शन करना था कि एक ओर यह न जान पडे कि शेख क मातहत हू और दूसरी ओर उन्हे और जवाहरलाल जी को नाराज भी न करू इन दोनो के बीच का मध्य माग निकाल सकू।

इसी बीच बहुत सा दिलचस्प काम भी करने को था। कश्मीर का मामला सयुक्त राष्ट्र सघ के सामने होने के कारण सयुक्त राष्ट्र सघ के प्रेक्षकों और प्रतिनिधियो को जो उस समय श्रीनगर म थे और जिनके अध्यक्ष एक फ्रांसीसी, जनरल दल्वो थे काफी महत्व दिया जाता था। इस दल का चयन विविध यूरोपीय और दक्षिण अमरीकी देशो से किया गया था और कई लोग अपने परिवार भी साथ लाए थे। जिन विभिन्न जगहों म पार्टियां हुआ करती थी उनम तेज तर्रार और विनोदी डिवीजनल कमाडर जनरल के एस थिमय्या और उनकी पत्नी नीना का निवास भी शामिल था। 'टिमी' बहुत मजेदार व्यक्ति थे और व मोहकता और करिश्मा बिखेरते थे। उनके फौजी उनकी पूजा करते थे और असैनिक प्रशासन के साथ भी वे बहुत लोकप्रिय थे। श्रीनगर पहुचने के शीघ्र बाद ही मैं उनके साथ युद्धबदी रेखा पर स्थित कुछ अग्रवर्ती इलाको म गया। हमने 10 000 फुट की ऊचाई पर स्थित नस्तचून दर्रा पार किया और टगधर और टिथवाल गए। कश्मीर घाटी से परे वहद हिमालय क प्रत्यक्ष दर्शन का मेरे लिए यह पहला अवसर था और यह अनुभव अविस्मरणीय रहेगा। अपने श्रीनगर के घर स पर्वतो की ओर देखना एक बात थी उनके बीच विचरण करने का स्पन्द बिलकुल अलग बात है। हवा मे ताजगी और स्फूर्ति थी और वह दूर तक फैले देवदार के वृक्षो म सरसराती रहती।

टिमी बडी मौज म थे, जीप खुद ही ड्राइव कर रहे थे और साल भर पहले ही इन इलाको को हमलावरो से मुक्त करने क लिए लडी गई लडाइयो के सजीव ब्योरो से हमे आह्लादित कर रहे थे। फौजी अच्छी स्थिति म थे और हम देखकर वास्तव म खुश नजर आए। अत्यत कठिन परिस्थितियो म रह रहे भारतीय सेना क जवानो से मेरी जो अनेक मुलाकातें हुई उनम यह पहली थी और उनकी कर्तव्य निष्ठा और वातावरण क अनुकूल अपने को ढाल लेने की अदभुत क्षमता स प्रभावित हुए बिना मैं कभी नहीं रहा। सेना और आम जनता क बीच सद्भाव

भी बहुत था। एक बार दर्रे के पार हुए कि पजाबी भाषी लोग मिलने लगे—कश्मीरी नही, लेकिन भौतिक और जातीय रूप से पाकिस्तान अधिकृत क्षेत्र के निकट होते हुए भी मुझे उनमे शत्रुता या विद्वेष का लेश भी नही दिखलाई पडा। वास्तव मे मैं शायद डोगरा राज परिवार का पहला सदस्य था जो उन इलाको मे गया, और उन्होने बडे प्यार के साथ मेरा स्वागत किया। बाद मे इसी तरह हमने जोजीला दर्रे के पार की भी यात्रा की, जहा एक विलक्षण अभियान के द्वारा, जिसकी तुलना हैनीबाल के अपने हाथियो को साथ लेकर आल्प्स पार करने से की जाती है, टिमी मानव इतिहास मे पहली बार इतनी ऊचाइयो पर टैंक को ले गए थे और आश्चयचकित आक्रमणकारियो को रौंद डाला था। जोजीला के उस पार हम एक रात द्रास के छोटे से गाव मे रहे जो दुनिया की सबसे ठडी बस्तियो मे एक मानी जाती है।

और लोगो के अतिरिक्त यहा मेरी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से हुई जिसे मेरे राजनैतिक जीवन मे एक महत्वपूण भूमिका अदा करनी थी, और वह थे, दुर्गा प्रसाद धर। खूबसूरत और कुशाग्र बुद्धि, "डी पी" घाटी के सबसे प्रतिष्ठित कश्मीरी पडित परिवारो मे से एक की युवा सतति थे। लेकिन नशनल कान्फ्रेंस के साथ वे बहुत पहले से ही सक्रिय रूप से सम्बद्ध हो गए थे। यद्यपि वे केवल उप मत्री थे, किन्तु माना जाता था कि शेख अब्दुल्ला के शासन के पीछे असली दिमाग उन्ही का था। सेना सिविल सपक मे वे उत्कृष्ट थे, और राज्य सरकार और भारत सरकार के बीच बहुमूल्य कडी के रूप मे काय करते थे। उनका मस्तिष्क विलक्षण था जिसका उपयोग वे किसी ठोस उपलब्धि की बजाय प्राय कुशल व्यवहार मे ही अधिक करते थे। वे दूसरे मत्रियो से उम्र मे छोटे थे और हमारी आपस मे अच्छी पटती थी। यह दोस्ती उस सकट मे बहुत उपयोगी सिद्ध हुई जो केवल चार वष बाद ही आने को था।

1949 की गर्मियो में जवाहरलाल जी श्रीनगर दो बार आए और दो बार मैं दिल्ली गया और उनके साथ तीन मूर्ति भवन मे ठहरा। वे बडे प्यारे मेजबान थे, और बेहद व्यस्त रहने के बावजूद अपने मेहमानो की पूछताछ के लिए हमेशा वक्त निकाल लिया करते थे। हम प्राय खाने के समय मिला करते थे और यही मैं पहले पहल पडित गोविंद वल्लभ पत से मिला, जो विशालकाय थे और जिनकी लम्बी और झूलती हुई मूछें और हिलता हुआ सिर, उनके तेज और चालाक दिमाग को नकारता सा लगता था, और यही मैं दुबले पतले तीखे स्वभाव वाले कृष्ण मेनन से भी मिला। पद्मजा नायडू भी भवन मे ही रह रही थी, निरतर स्वास्थ्य खराब रहने के बावजूद सरसता और जीवन का आनन्द बिखेरती हुई। वर्षों बाद जब जवाहरलाल जी दिवगत हो गए तब वे नजदीकी दोस्त बन गई और हमने पाया कि वे असाधारण तरलहृदया और स्नेहमयी थी। जहा तक

जवाहरलाल जी का सम्बन्ध है, उनकी शारीरिक और दिमागी फुर्ती ने मुझे हमेशा प्रभावित किया। जब व कमरे म प्रवेश करते तो मानो ऊर्जा का एक झोंका आ जाता। व उछलते हुए चलते थे जैसे किसी भी क्षण दौड पडने के लिए तैयार हो। फिर जब वे सोफे पर पीछे टिककर बैठ जाते तो उनका चेहरा विचार मग्न हो जाता और एक विचित्र सी उदासी उनके खूबसूरत नाक नक्शे पर छा जा जाती। व बहतरीन अदाज मे बोलते थे मुलायमियत और शराफ्त से हर लफ्ज का तकरीर देते हुए। लकिन वह उनकी मुस्कराहट थी जो भुलाए नही भूलती—ख्यालो म डूबी और अजीब तरह स असरकारी।

उस गर्मी की ऋतु म घाटी मे मैं फिर कई स्थानो पर गया जहा बचपन म जाया करता था विशेषकर डचिगाम और त्रिक्कड। मैंने कुछ शिकार खेला और मछलियां पकडी, और आगतुक प्रतिष्ठित मेहमानो और स्थानीय प्रतिभा सपन्न व्यक्तियो के लिए अनत नाच और चाय पार्टियो की मेजबानी की। मैं बस अठारह का हुआ ही था लेकिन आत्म विश्वास और पहली बार अपने परो पर खड होने के औत्सुक्य स भरा हुआ था। मैं घाटी के प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ स्थानो को भी गया जहा पिताजी शायद ही कभी गए होग। धर्म के प्रति उनका रवैया अधिकतर औपचारिक ही रहा किन्तु अपनी मा का अनुसरण करते हुए भेंट मुलाकात, कामकाज शुरु करने स पहले प्रतिदिन प्रात काल मैं नियमित रूप स थोडी पूजा अवश्य करता रहा और मदिरो और तीर्थस्थानो म भी मुझम रुचि विकसित हुई।

एक घटना एसी हुई जिसमे आगे आने वाले तनावो का पूर्वाभास मिला। देवी खीर भवानी के प्रसिद्ध तीर्थस्थान का वार्षिक त्योहार जून म एक शुभ दिन पडा। कश्मीरी पडितो की जिनका नेतृत्व पडित परमानन्द कर रहे थ, बडी इच्छा थी कि इस अवसर पर मैं वहा अवश्य जाऊ। पडित परमानन्द बड ईमानदार और योग्य अफसर थे और एकाउन्टेंट जनरल के पद से तभी सेवा निवृत्त हुए थे। यह स्पष्ट था कि शेख अब्दुल्ला की धर्मनिरपेक्षता की दृढ प्रतिज्ञाओ के बावजूद अल्पसंख्यक पडितो का छोटा सा समुदाय नई व्यवस्था म अपने को बहुत सुखी महसूस नही कर रहा था। मैं जाने के लिए तैयार हो गया और मेरे आगमन की घोषणा भी कर दी गई। उसके शीघ्र बाद मुझे शेख अब्दुल्ला का एक सन्देश मिला कि उस दिन मैं वहा न जाऊ तो अच्छा होगा। इसने मुझे एक उलझन भरे मनोवेश म डाल दिया, लकिन पडितो को वायदा कर चुकने के बाद मुझे ऐसा लगा कि उन्हे हताश करना ठीक नही होगा। तीर्थ पर जहा हजारो लोग इकट्ठे हुए थे, मुझे उनका भावाहतपूर्ण सत्कार मिला। वयोवृद्ध महिलाओ ने मेरा माथा चूमा। उनकी यह भगिमा केवल उन्ही के लिए सुरक्षित होती है जो उनके बहुत प्रिय होते हैं। मुझ उस पवित्र जलाशय की परिक्रमा और

पूजा पूरी करने मे लगभग तीन घटे लग गए जिसमे पानी का रग रहस्यात्मक रूप से समय समय पर बदलता रहता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि रगा से भविष्य की घटनाओ का पूर्वाभास मिलता है और गहरे रग अशुभ लक्षण होते हैं। यह एक अद्भुत तथ्य है कि पाकिस्तानी आक्रमण के पहले महीनो तक पानी एकदम काला हो गया था, और यह भी कि यद्यपि यह तीर्थ महीना उस इलाके म आक्रमणकारियो के अधीन रहा, जिन्हाने हिन्दू सिक्ख और ईसाइया के सभी पूजास्थलो को नष्ट कर दिया था, खीर भवानी का एक पत्ता भी छुआ नही गया। जब तक मैं तीर्थ म मौजूद रहा स्वागत के नारा से हवा गूजती रहा, जिनम कुछ "डोगरा राज जिन्दाबाद" के नारे भी शामिल थे। यद्यपि शेरा ने इस बात का उल्लेख मुझसे कभी नही किया तो भी मुझे पता चला कि मेरे वहा जान से वे काफी परेशान थे। कश्मीर का सिंह किसी भी प्रतिद्वदी को कसे सहन कर सकता था, चाह वह अभी केवल शेर का बच्चा ही क्यो न हो ?

पडित परमानन्द के प्रति मैं इस बात क लिए भी बहुत आभारी हू कि उन्हाने सस्कृत स मेरा परिचय कराया। न तो स्कूल मे और न कालेज मे ही मैंने उस भव्य भाषा का एक शब्द भी कभी पढा। पडित परमानन्द ने ही आग्रह किया और जार दिया कि मैं सस्कृत सीखना शुरू करू और वे कुछ सरल श्लोका को सिखान मेरे घर हफ्ते म तीन बार आन लगे। इस प्रकार जैसा कि अग्रेजी क मामले म हुआ, मैंने सस्कृत भी व्याकरण क द्वारा नही बल्कि सीधे कानों के द्वारा ही सीखी और मुझे जल्दी ही पता चल गया कि मैं बिना किसी विशेष कठिनाई के उद्धरणो को मुहजबानी याद करके सुना सकता हू। चाह वह वेदो की उपासना पद्धति सबधी गरिमा हो, उपनिषदा का ज्वलत ज्ञान हो, भगवदगीता की अमतमयी शिक्षाए हा अथवा आदि शकराचाय के भव्य मन्त्र हा, इन सबक मूल म जो गुण था वह था सस्कृत पद्य की सगीतमयता और छदात्मकता का गुण।

इस स्थल पर एक और बात का मेरे भावी जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा। श्रीनगर पहुचने के शीघ्र बाद ही मैंने साचा कि क्या न फिर से अकादमिक दुनिया के अपने सपर्कों को ताजा किया जाए। मैंने शिक्षा निदेशक से कहा कि व किसी ऐसे विद्वान का नाम सुझाए जा वतमान आर्थिक और राजनतिक समस्याओ के सबध मे चर्चा करने के लिए नियमित रूप से आ सके। उन्हान एक प्रोफेसर पी० एन० चाकू को मेरे पास भेजा, जिनके साथ शीघ्र ही मेरा सामजस्य बठ गया जा बहुत मूल्यवान सिद्ध हुआ। प्रोफेसर चाकू एक निष्पन्न बुद्धिजीवी थे और उन्होंने मेरा परिचय अनेक महत्वपूर्ण राजनतिक और आर्थिक सकल्पनाओ से कराया जिनमे अथशास्त्र के क्षेत्र म कीनिस के विचार, राजनीति विज्ञान म लास्की, और विकासशील अथ व्यवस्था के सन्दभ म मार्क्स के विचार सम्मिलित थे। विचारा के ससार म एक बार फिर मेरी वास्तविक रुचि जागत हो गई और मैंने विस्ता

स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। उस समय बर्ट्रेंड रसेल और आल्डस हक्सले—ये दो ऐसे लेखक थे जिन्होंने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। रसल के पारभासक गद्य और हक्सले के कल्पनाशील चिंतन ने मेरे ऊपर गहरा प्रभाव डाला। मेरे पास अभी भी इन लेखकों का एक एक पत्र है जो उन्होंने मेरे "फैन" पत्रों के उत्तर में भेजे थे और कुछ बातों में उनसे असहमति के बावजूद उनके प्रति मेरा आदरभाव ज्यों का त्यों बना हुआ है।

रीजेंट की हैसियत में मैंने पिताजी के स्थान पर जम्मू और कश्मीर राज्य की फौजों के कमांडर इन चीफ का औपचारिक पद ग्रहण किया। उस समय तक ये फौजें सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए भारतीय सेना का ही एक अंग बन चुकी थीं, और फिर भी जिन अनेक हिंदुस्तानी रियासतों ने भारतीय संघ में अधिमिलन कर लिया था उनकी फौजों से भिन्न, हमारी फौजों का औपचारिक विलय नहीं हुआ था और वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए हुए थीं। यह ठीक है कि कमांडर इन चीफ का पद बिल्कुल औपचारिक ही था जिसमें समय समय पर कुछ कागजों पर हस्ताक्षर करने के सिवा और कोई काम नहीं था। एक और औपचारिक किंतु मेरी अपनी रुचियों के अधिक समीप पद नवनिर्मित जम्मू और कश्मीर युनिवर्सिटी के चांसलर का था जिसे राज्य का अध्यक्ष होने के नाते मैंने पदेन ग्रहण किया। 1947 से पहले राज्य की शिक्षा संस्थाएं लाहौर स्थित पंजाब युनिवर्सिटी से सम्बद्ध थीं। किंतु विभाजन के पश्चात राज्य में एक अलग युनिवर्सिटी की आवश्यकता अविलम्ब महसूस की जाने लगी। चूंकि उस समय राज्य में कोई विधान मंडल नहीं था। 1948 में यह पिताजी द्वारा एक अध्यादेश जारी करके स्थापित कर दी गई। नई युनिवर्सिटी का पहला औपचारिक दीक्षांत समारोह श्रीनगर में 24 सितम्बर, 1949 को हुआ था जिसकी अध्यक्षता चांसलर के रूप में मैंने ही की थी। इस अवसर पर जवाहरलाल जी श्रीनगर आए थे। मैंने उन्हें अपने भाषण की एक अग्रिम प्रति भेज दी थी और 11 सितम्बर के एक पत्र में उन्होंने मुझे लिखा। 'शेख साहब आज शाम यहां पहुंचे और उन्होंने मुझे तुम्हारे उस भाषण की एक प्रति दी जो युनिवर्सिटी के चांसलर के रूप में तुम देना चाहते हो। मैंने अभी अभी सरसरी तौर से उस पर निगाह डाली और मुझे वह बड़ा दिलचस्प लगा। निश्चय ही तुम अब तक के सबसे कम उम्र चांसलर होगे जो किसी भी युनिवर्सिटी को मिला होगा।

दीक्षांत समारोह स्वयं रंगमय था। हम सबने काले चोगे और गुलाबी पगड़ियां पहन रखी थीं, और अहाते में एक विधिवत् जुलूस बनाकर प्रविष्ट हुए। शेख अब्दुल्ला प्रो चांसलर थे इसलिए वे जवाहरलाल जी और मैं साथ साथ रहे। डिग्रियां और पुरस्कार वितरित करने के बाद मैंने अपना भाषण पढ़ा और जवाहरलाल जी से निवेदन किया कि वे सभा को संबोधित करें। मैंने शुरू में ही

तब यह सिद्धात बना लिया था कि अपने भाषण मैं स्वय ही लिखा करूगा और इसका मैंने बराबर अनुसरण किया। हा, इसके अपवाद केवल विधान मडल को किए जाने वाले सशोधन थे जो मुझे प्रतिवर्ष करने पडते थे, किंतु उनके लिए भी मैं प्रारूप माग लेता था और तब सामग्री को अपने शब्दो म रखने का प्रयत्न करता था। जाहिरा तौर पर उस दिन के मेरे भाषण को लोगो ने पसन्द किया क्योंकि समारोह के बाद उपस्थित लोगो द्वारा काफी बधाइया मिली, पर शायद यह केवल इसलिए हो कि किशोर चालर का होना एक नई बात थी।

अपराह्न मे हम सभी को झेलम पर एक नावो के जुलूस म निकाला गया। मुझे याद है, कई साल पहले इसी तरह के एक जुलूस मे मैं पिताजी के साथ बैठा था, जिसमे जरी के काम से ढके बजरे दजनो सफेद वर्दी और पीली पगडी पहने सधे हुए कश्मीरी नाविको द्वारा धारा के प्रतिकूल खे कर ले जाए गए थे। नावें और नाविक अभी भी वही थे लेकिन एक दशक के बाद सारा सदर्भ आमूल परिवर्तित हो गया था। जवाहरलाल जी, शेख अब्दुल्ला और मैं प्रमुख बजरे पर बैठे जब कि नेहरू जी की पार्टी के अन्य सदस्य, जिनमे गोपाल गोस्वामी आयगर, सरदार बलदेव सिंह, राजकुमारी अमत कौर, एन०वी० गाडगिल (सभी उनके मत्रिमडल के सदस्य थे), सम्मिलित थे तथा भारतीय सेना के कमाडर इन चीफ जनरल करिअप्पा छोटी नावो मे पीछे पीछे आए। झेलम के किनारो पर कश्मीर के लोगो की भीड लगी थी जो हजारो की सख्या मे जवाहरलाल जी का स्वागत करने इकट्ठे हुए थे। जैसे ही हम सात ऐतिहासिक पुलो म से प्रत्येक के नीचे से गुजरते तो ऐसा लगता कि स्वागत के झडो को फहराते और नारे लगाते हुए लोगो के बोझ से वे भरभरा पडेंगे। हजारो की सख्या मे अपने स्कूली लिबास मे चुस्त दुरुस्त स्कूली बच्चो के आ जाने से दृश्य और भी सजीव और रगीन हो उठा था। मेरे लिए वह एक नाटकीय और स्मरणीय घटना थी और उन परिस्थितियो म जवाहरलाल जी के स्तर के एक राष्ट्रीय नेता के सान्निध्य म होने पर मुझे गौरव का अनुभव हुआ। शेख अब्दुल्ला के और उनकी नेशनल कान्फेंस के लिए भी वह राजनैतिक शक्ति का एक प्रभावशाली प्रदर्शन था जिसने पाकिस्तान द्वारा लगातार किए गए इस दुष्प्रचार को झूठा साबित कर दिया कि कश्मीरी लोग भारतीय फौजो की सैनिक दखलदाजी से पिसकर कराह रहे हैं। जिसने भी उस जुलूस को देखा—और वहा अनेक विदेशी पत्रकार और कमरा टीमें मौजूद थी—वह उस ऐतिहासिक अवसर पर जवाहर लाल जी के प्रति स्नेह, अपनत्व और आशा का जो हार्दिक उफान उमडा उससे प्रभावित हुए बिना नही रहा।

कश्मीर का मौसम अब समाप्त होने को आ रहा था, और हमने वार्षिक "दरबार स्थानातरण" के लिए जम्मू जाने की तैयारिया शुरू कर दी। तब जमा

कि अब भी है राज्य सरकार गर्मी में छह महीने (मई से अक्टूबर तक) ग्रीष्म राजधानी श्रीनगर म आधारित रहती और दूसरे छह महीना म शीत राजधानी, जम्मू म। यह एक राजनतिक अनिवायता है, क्योकि जम्मू और कश्मीर राज्य म दोनो ही प्रमुख क्षत्रो को बराबर का महत्व देना होता है। वस्तुत दोनो क्षेत्रो के पलड़े बराबर न रख पाने के कारण ही भविष्य म बहुत से तनाव और झगडे उत्पन्न हुए। मैंने यह तय किया कि हम 7 नवबर को नीचे जाएगे, पर उसके पहले मैंने सोचा कि क्यो न थोडी मछली मारी और शिकार कर लिया जाए क्याकि जसे जैसे शरद ऋतु शीत की ओर बढती है, उसम सुधार हो जाता है। मैंने अपन कूल्हे की जकडन के बावजूद थोडा टेनिस तक खेलना शुरू कर दिया था। मेरा इरादा था कि कुछ हफ्ते जम्मू ठहरूगा और तब पिताजी से मिलने बबई जाऊगा। उन्हे नेपाल के राणा लोगो का उत्तर मिल गया था और मेरे विवाह की तिथि अगले वष 15 जनवरी निश्चित कर दी गई थी। सभी बातें सुगमता से चल रही प्रतीत होती थी।

29 अक्टूबर को श्रीनगर से कुछ मील बाहर रिवज म चकोर के शिकार की व्यवस्था की गई थी। हम सवेरे चल पडे मैं आगे की सीट म ड्राइवर के साथ बैठा जबकि ब्रिगडियर रावत, कैप्टन मोहन सिंह, मेरे ए डी-सी और शिकार खोजकर लाने वाला मेरा लेब्रेडोर कुत्ता, इसकी पीछे चढ गए। पिछली रात पानी बरसा था और कोलतार वाले हिस्से को छोडकर सडको पर फिसलन थी। हमने पाच मिनट मुश्किल स ड्राइव किया होगा, कि प्राचीन पडोयन मदिर स जरा आगे एक ट्रक हमारी कार को रास्ता देने के लिए रुखडे मे हट गई। एकाएक भयभीत होकर म क्या देखता हू कि वह तजी से फिसलते हुए हमारी ओर चली आ रही है। सहज ही मैंने अपन दाहिने कूल्हे को बचाने के लिए बाए पैर को आगे दबाया। ट्रक ने एक चक्कर देने वाले धमाके के साथ हमे टक्कर मारी। मैंने नीचे देखा, मेरा बाया पर घुटने और टखने के बीच टूट गया था और नब्बे डिग्री मुड गया था। मेरे खराब कूल्हे म भी तेज दद था। मैंने सोचा मैं एक दु स्वप्न देख रहा हू, जिसम से जागन पर मैं अपने को बिस्तर पर पडा पाऊगा। वह सचमुच एक दु स्वप्न था किन्तु जागत अवस्था का।

किस तरह मुझे कार म से निकाला गया, कुछ सौ गज दूर सनिक अस्पताल म ले जाया गया, एक्स रे किया गया तुरन्त बेहोश किया गया, और जब अस्पताल के एक कमरे म जागा ता भयकर दद था और मरा पैर और कूल्हा दोनो प्लास्टर मे बध थे—यह सारी घटना एसी है जिनका वणन करना इतना समय बीत जाने क बाद भी मेरे लिए असभव जान पडता है। अगले दो दिन पीडा म कोई कमी नहीं हुई। माता जी दुग्गा बडे चिंतित मर कमरे म आए और सच्ची सवेदना दर्शाते हुए मरे चेहरे और सिर पर उन्होने अपना हाथ फेरा। जब मरे

दिल्ली में इस दुर्घटना की खबर सुनी तो उन्होंने जोर दिया कि मुझे तुरन्त हवाई जहाज में बम्बई भेज दिया जाए। मैं कुछ दिन रुकना चाहता था ताकि दर्द कम हो जाए लेकिन वे ज़िद पकड़े हुए थे। एयर फोर्स का एक डी. सी.-3 चार्टर किया गया और एक बार फिर मुझे उठाकर उसमें रखा गया और ले जाया गया। हवाई जहाज ईंधन भरने के लिए दिल्ली रुका रहा था तो मां कमौली से भागी आईं, मुझे हवाई अड्डे पर मिलीं, सूखी हुई हालत में, बोलने में असमर्थ। जैसे ही मैं 19 नेपियन रोड पहुंचा, प्रसिद्ध विख्यात विशेषज्ञ डा० किनी और डा० मुलगावकर बुलाए गए। तब तक मेरा पैर खतरनाक रूप से सूज गया था और एक बार और बेहोश करके प्लास्टर हटाने पर उन्होंने पाया कि वह सारा का सारा फफोलों से भर गया है। यदि मैंने आने में देर की होती तो हो सकता था कि पैर कटवाना पड़ता।

तो इस तरह मैं न केवल जहां था वहीं पहुंच गया बल्कि एक सीढ़ी और नीचे आ गिरा। अमेरिका में तो केवल मेरे कूल्हे में ही तकलीफ थी, अब मेरे बाएं पैर की दोनों हड्डियां टूट गई थीं, और कूल्हे में फिर से दुर्घटना से झटका लगने से दरार पड़ गई थी। नीचे के दोनों अंग प्लास्टर में बंधे थे और मैं बड़े कष्ट में था, मुझे अब कोई संदेह नहीं रह गया था कि विधाता मुझे दुगनी ज़िन्दगी जीने न देने के लिए दृढ़संकल्प है। यह ईश्वर की कृपा है कि पीड़ा को फिर से स्मरण करना आसान नहीं है क्योंकि इस दूसरे हादसे में जितनी तकलीफ मुझे उठानी पड़ी है उतनी एक आम आदमी को अपनी सारी ज़िंदगी में नहीं उठानी पड़ती। हफ्तों मैं प्लास्टर में रहा लेकिन हड्डियों व घाव भरने को ही नहीं छोड़े थे। मां कमौली से आ गई थीं और सबसे बड़ा सवाल तो यह था कि अब शादी का क्या किया जाए। आशा के चाचा, जनरल विजय शमशेर जो बाद में नई दिल्ली में भारत के राजदूत रहे बम्बई आए यह देखने के लिए कि मैं कैसा हूं। ज़ाहिर था कि जनवरी की तिथि स्थगित करनी पड़ेगी, लेकिन कब तक के लिए यह मेरी हालत पर निर्भर था। डॉ० किनी और डा० मुलगावकर ने बेहोश करके कई तरह के जोड़-तोड़ की कोशिश की लेकिन उनमें से कोई भी कारगर नहीं हुई। मेरे टूटे हुए पैर के फफोलों को ठीक होने में ही एंटीबायोटिक दवा लेते-लेते कई हफ्ते लग गए। कश्मीर में ग्रीष्म के संक्षिप्त आह्लाद के बाद मैं फिर से अवसाद में वापस आ पहुंचा था।

इस बीच स्वभावतः देश में घटनाएं आगे बढ़ती जा रही थीं। 26 जनवरी को भारत का नया संविधान स्वीकृत कर लिया गया था। यह बड़े उत्पात का दिन था, भारत अंततोगत्वा पूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न गणतंत्र के रूप में उभरा था, और डा० राजेन्द्र प्रसाद ने निवर्तमान गवर्नर जनरल सी० राजगोपालाचारी से भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में कार्यभार ग्रहण कर लिया था।

एक अभूतपूव जुलस निकला था जो घटा चला था। अपनी रोग शय्या पर पडे हुए भी मुझे इस बात पर खुशी का उफान महसूस हुआ कि मैं अब एक प्रभुसत्ता सपन्न प्रजातात्रिक भारत का नागरिक हू। प्रसन्नता इस बात की थी कि मैं उस पीढी का व्यक्ति था जिसने पुरानी राजशाही व्यवस्था मे वास्तविक रूप से शासन शक्ति का प्रयोग नही किया था, इसलिए हालाकि मुझे अपने राज्य से विशेष लगाव था, लेकिन उससे कही ज्यादा गव एक भारतीय होने का था। मेरा केवल एक ही गिला था और वह यह कि दोना महत्वपूव अवसरा पर, 1947 म स्वत त्रता दिवस पर और अब 1950 मे गणतत्र दिवस पर मैं उन एतिहासिक घट नाओ मे सक्रिय रूप से भाग लेने मे असमथ चित्त लेटा पडा रहा।

जब मेरी हड्डियो ने यह हठ ठान ली कि जुडेगी नही तब डाक्टरा ने अत म यह फसला किया कि वे आपरेशन करेंगे। आपरेशन किया गया और जब मैं बाहर निकला तो दाहिने कूल्हे मे लगी धातु की कील की तौल के बराबर बाए पर मे भी एक धातु की पट्टी और छह पच लग हुए थे। आपरेशन के दिन मा तो अपने पूजा के कमरे मे ताला बद करके बठ गई थी और हिदायत दे दी थी कि उन्ह सब कुछ हो जान पर ही और जब मैं होश म आऊ तभी सूचित किया जाए। बाद म पता चला कि यह अच्छा ही हुआ जो धातु की पट्टी का प्रयोग किया गया क्योकि टूटी हुई हड्डिया असाधारण रूप स बिलकुल अडियल साबित हो रही थी और प्ला स्टर म एक साल और भी बिता देता तो भी वे जुडने वाली नही थी। प्रकृति की विधिया अदभुत हैं लेकिन किन्ही परिस्थितियो म होशियार सजनो से मिली थोडी सी सहायता भी बहुमूल्य सिद्ध हो सकती है।

जब मैं आपरेशन से स्वस्थ हो रहा था, उस दौरान मैं राज्य के नेताओ के सपक म भी था शेख अब्दुल्ला और उनके उप प्रधान मत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद के जो बिलकुल अलग प्रकार के व्यक्ति थे और जिन्हे आगे आनेवाली राजनतिक गतिविधियो म एक महत्वपूण भूमिका अदा करनी थी। शेख अब्दुल्ला मुझे समय समय पर लिखा करते थे, न्यूयाक से भी, जहा वे सयुक्त राष्ट सघ मे भारतीय प्रतिनिधि मडल क सदस्य होकर दूसरी बार जब कश्मीर का झगडा अभी एक जीवत विषय बना हुआ था, गए थे। इस बीच डाक्टरा से परामश करके जिनका यह विचार था कि आपरेशन के छह हफ्त बाद मैं फिर से अपने परा चलने लायक हो जाऊगा मेरी शादी की नई तारीख निश्चित कर दी गई। पिताजी दृढ सकल्प थे कि शुभ तिथि स उनके घुडदौड के कायक्रम म बाधा नही पडनी चाहिए और पडित जिन्हें समुचित ताकीद कर दी गई थी 5 माच का सुविधाजनक मुहूत निकाल लाए। आशा के पितामह तब भी नेपाल के प्रधान मत्री थे और राणा नरेशा के, जिनके वश ने नपाल का प्राय एक शताब्दी तक शासन किया, अतिम व्यक्ति थे। यह एक विचित्र सयोग है कि हमारे दोनो वशा की

आधारशिला लगभग एक ही समय मे क्रमश महाराजा गुलाब सिंह और महाराजा जग बहादुर द्वारा रखी गई और एक शताब्दी बाद उनका अत भी प्राय एक साथ ही हुआ।

एक बार तारीख निश्चित हो जाने पर, आशा के पिता माता जनरल और रानी शारदा शमशेर—अपने पाचो बच्चो को साथ लेकर बम्बई आए और कच्छ कसिल मे रहने लगे जिसकी महलो जैसी इमारत उस समय नेपियन सी रोड पर खडी थी। साधारणतया बरात लेकर हम नेपाल गए होते, लेकिन चूकि मैं यात्रा करने की स्थिति मे नही था, अत यह तय किया गया कि शादी बबई मे ही की जाए। हालाकि मेरे माता पिता आशा और उसके परिवार से मिलने गए थे लेकिन यह उचित नही समझा गया कि वास्तविक रूप स विवाह होने के पहले हम लोग दोबारा मिलें। एक औपचारिक सगाई की रस्म कश्मीर हाउस के सीढी वाले हाल म सपन्न की गई, जब राणाओ का एक प्रतिनिधि दो नेपाली पडितो को साथ लेकर शुभसूचक केसरिया तिलक और सगाई की अगूठी के साथ आया।

धीरे धीरे मैं बिस्तर से बाहर आने लगा और छडियो की मदद से, जो मैं अमेरिका से लाया था, इधर उधर चलने फिरने लगा। जसे जसे विवाह की तारीख नजदीक आने लगी, घर मेहमानो और रिश्तेदारो से भरने लगा। यदि शादी जम्मू म होती तो सारा शहर ही चहल-कदमी करने लगता, लकिन बबई म पिताजी ने आमत्रितो का खास रिश्तेदारो तक ही सीमित रखा। अपनी स्वभावगत बारीकी के साथ उन्होने शादी के पहले के और शादी के बाद होने वाले विभिन्न समारोहो का पूरा ब्यौरा तैयार कर लिया, जबकि मा ने अपना ध्यान मुख्य रूप से खरीद फरोख्त पर ही केंद्रित रखा।

यह अचरज की बात नही कि इस महान घटना की प्रतीक्षा मैं प्रसन्नता और आशका के मिले जुले भाव से कर रहा था। इकलौती सन्तान के रूप म पाले पोसे जाने और लडको के स्कूल मे पठन पाठन होने से तब तक मेरा लडकियो से सपर्क सतही ही रहा था, और शादी से पहले तीन साल मेरी टूटी हुई हड्डियो ने, जहा तक सामाजिक सम्बधो का प्रश्न है, मुझे प्रभावी रूप स अलग रखा। फरवरी के अन्त तक मैं बस बिना सहारा लिए चल भर पाता था, लेकिन मन मे यह द्विविधा बनी हुई थी कि विवाह की लबी रस्मो को बिना बीच म ही ढेर हुए पूरा कर पाऊगा या नही। लेकिन यह हो गया और सामतशाही की एक प्रतीक तलवार ने मुझे बचा लिया—जिसे राजपूत विवाह मे दूल्हे के लिए साथ म रखना अनिवार्य है। बिना अनावश्यक उलझन पैदा किए, कारगर छडी के रूप म उसने दोहरा काम किया।

विवाह के एक दिन पहले स्वयवर की रस्म हुई जो हिन्दुओ की बडी प्रसिद्ध और प्राचीन परम्परा रही है और जिसम वधू प्रत्याशियो की पक्ति म स अपना

पति स्वय चुनती है। कालातर मे हिदू समाज मे नारी की स्थिति उत्तरोत्तर गिरती गई, जिसके भयकर परिणाम हुए, लेकिन प्रतीक रूप म अनेक समुदायो ने इस रस्म को बरकरार रखा, विशेषकर नेपाल के राणाओ ने। मुझे खुशी थी कि प्रत्याशियो म मैं अकेला था, कुछ देशो के 'स्वत त्र मतदान" की तरह जहा पूर क्षत्र मे एक ही प्रत्याशी रहता है। स्वयवर के लिए मैंने जरी का लबा कोट पहना पन्ना का ताज लगी पगडी लगाई और रत्नजटित तलवार लटकाई। धोन के ठाकुर साहिब की, जो दुनिया के सबस मोटे आदमियो म स एक थे, विशाल खुली पैकड कार, मे पिताजी और मं कच्छ कैसिल गए। वही एक गाडी थी जिसमे मैं आराम क साथ भीतर जा सकता था, इसलिए उसके आसानी से मिल जाने से बडी सुविधा हुई। जनरल शारदा और जनरल सिंघा ने हमारा स्वागत किया और वे हमे एक बडे हाल म ले गए जहा आशा लाल जरी के वस्त्रो म इस कदर लिपटी बैठी थी कि एक क्षण को मैंने सोचा कि वह कपडा की गठरी मात्र है। वह मेरे सामन फश के उस ओर कुर्सी पर बैठी थी। सस्कृत के श्लोको के उच्चार के साथ वह उठी और उठकर उसन मुझे माला पहनाई जो चुनने की प्रक्रिया का ही प्रतीक है, और उसके बाद मैंने भी वसा ही किया। आशा को फिर एक सजी सजाई पालकी मे नपाली नौकरो और परिचारिकाओ द्वारा ले जाया गया। उस पूरी रस्म क दौरान उसका चेहरा घूघट से पूरी तरह छिपा रहा।

5 माच 1950 को दूसरे दिन सुबह जब मैं उठा तो बगीचे म बिस्मिल्ला खा और पार्टी की शहनाई की मगन ध्वनि सुनाई दे रही थी। बढिया स बढिया दिनो म भी विवाह करना एक प्रकार का जुआ है और मैं था कि तेरह बरस की एक लडकी से विवाह करने चला था जिसम मैं केवल एक बार ही बस आध घटे के लिए मिला था और वह भी दो जाडे माता पिता की उपस्थिति म। इसलिए जब मैंने शादी के कपडे—हल्क गुलाबी रग की रेशमी कमीज चुस्त पायजामा, लम्बा जरीदार कोट ताज पगडी, और हीरे के आभूषणो का सेट—पहले तो मेरे मन म थोडी घबराहट थी। पिताजी भी अवसर क अनुरूप कपडे पहन थे, अपना नायाब पन्ना और हीरे का ताज, जिसकी जोडी की तलवार भी थी और साथ म उनक तमगे भी, जिनका उह बडा गर्व था, हमारी पार्टी के सभी अय सदस्य भी जिनम अनेक—भूतपूर्व नरेश थे जरीदार कपडे पहने हुए थे। बरात का नेतत्व सनिक बड कर रहा था। उसके पीछे वर्दी पहने 24 नौकर थे जिनम स प्रत्यक के सिर पर गहनो, कपडा, सूखे मेवे और मिठाइया स भरे चादी के थाल थे जो हम वधू की भेंट के लिए ल जा रहे थे। उनके पीछे अय नरेशो, रिश्तदारो और स्टाफ के अय सदस्यो क साथ पिताजी पदल चल रहे थे। अत म सुरुचिपूण ढग से सजी मेरी खुली कार थी जिसम पीछे मैं अकेला बडे ठाठ स बैठा था। 19, नेपियन राड म नेपियन सी राड पर स्थित कच्छ कसिल तक पहुचन म आधे घटे स कुछ

ऊपर लगा। कच्छ कैंसिल के प्रवेश द्वार पर एक आर बैंड ने हमारा स्वागत किया और अन्त से मुख्य इमारत के सामने आकर हम रुक गए, जहा मरे और आशा दोनो के पिता औपचारिक रूप से गले मिले —मिलनी की रस्म हुई—और दोना पक्षा के अन्य सदस्यो ने भी एक दूसरे का अभिवादन किया।

विवाह की रस्मो के विभिन्न तत्व राजपूता के शौर्य की परम्परा को प्रतिबिंबित करते ह। मध्ययुग मे यात्रा कठिन और जोखिम मे भरी होती थी और विरोधी दलो और डाकुआ का खतरा हमेशा बना रहता था, इसलिए आत्म रक्षा के लिए तलवारें रहती थी। उन दिना बहिर्गोत्र म विवाह अनिवाय होन से विवाह व धन म बधने वाल दो दलो के अधिपतिया के बीच जा औपचारिक मिलन होता था वह एक महत्व की घटना होती थी। सभी राजपूत अपनी वश परम्परा का उदगम राजपूताने के किसी प्रमुख घरान को मानत हैं। इस प्रकार हमारा परिवार कछवाहा घरान का है जिसके अधिपति जयपुर के नरेश थे, जबकि राणा लोग अपनी वश परम्परा का उद्गम उदयपुर के सीसोदियाआ स मानते है। अस्त्र शस्त्रो स भरपूर सुसज्जित हाकर बरात का वधू के घर आना और उस गठबधन करके साथ लेकर सकुशल अपने दुग का वापस पहुच जाना—यह समूची सकल्पना—गुजरे जमाने की बाध्यताआ का प्रतिबिम्बित करती ह, और फिर भी एक ऐसा रगीन नजारा प्रस्तुत करती है, जो आज दिन तक चला आ रहा है।

मिलनी के बाद पिताजी तथा अन्य बराती एक विशाल और रग बिरगे शामियाने के नीचे, जो इस अवसर के लिए विशेष रूप स लगाया गया था, बठा दिए गए और मुझे मडप मे ले जाया गया, जहा धार्मिक सस्कार किए जाने थे। सवव्याप्त ईश्वर के विभिन्न पक्षा का प्रतिनिधित्व करन वाले अनेक देवी देवताआ की कुछ प्रारम्भिक स्तुतियो के पश्चात आशा को आठ नौकर पालकी मे लेकर अहात म आए, जिनके आगे-आगे लाल साडिया पहने और सफेद घोडो की पूछा म बन मगल चवर लिए आठ नेपाली दासिया आईं। आशा के आ जाने पर शादी की रस्मे प्रारम्भ हुइ जो एक घटे स ऊपर चली और जिसम आशा, उसक माता और मैंन प्रमुख रूप स भाग लिया। वास्तविक कन्यादान यहा माता और पिता द्वारा सम्मिलित रूप मे किया जाता है जो पाश्चात्य परम्परा स भिन्न है, जहा वह केवल पिता द्वारा ही किया जाता है।

इसके पश्चात मूल सस्कार की बारी आती है जिसम वर और वधू पवित्र अग्नि के चारो आर सात फेरे लगाते हैं जा विवाह सस्कार के दैवी साम्य का प्रतीक है। आशा इत नी तेज चलन लगी कि मैं मुश्किल स उसके साथ अपनी विश्वसनीय तलवार का छडी के रूप मे इस्तेमाल करते हुए चल पाना और पिताजी का उठकर उसके कान मे और धीरे चलने के लिए कहना पडा। परिक्रमा के पश्चात् हमन एक छोटी-सी पर मजेदार नेपाली रस्म अदा की, जिसम नव-दपति

को एक बिस्तर पर बैठकर लम्बे हाथी दात के पासो से चौसर का खेल खेलना पडता है। नतीजे का एलान करने से पहले ही नेपाली प्रधान पुरोहित के चेहरे पर विजयोल्लास का भाव देखकर मैं समझ गया था कि आशा आसानी से जीत गई है।

शादी की रस्म पूरी हो जाने पर हम सब कश्मीर हाउस वापस आ गए और आशा को कच्छ कैंसिल ही छोड आए। दूसरे दिन वधू को अपने नए गृह म प्रवेश का शुभ मूहूर्त था। मैं वापस कैसिल गया और कुछ और रस्मो के पश्चात हम अत म एक साथ 19, नेपियन रोड आए जहा मेरे माता पिता और मेहमानो के एक बडे समूह ने हमारा स्वागत किया। गाडी स उतरने से पहले एक विशाल काय काले बकरे को हमारी बलाय उतारने के लिए, हमारे सर के ऊपर से उठा कर ले जाया गया और तब हम सीढिया चढकर हाल म गए जहा उस अवसर के लिए पहिने ओढे भाई मा और अ य महिलाआ के मुकुट और आभूपण जगमगा रह थे। सयोग स उस समय बम्बई के गवनर और कोई नही, राजा महाराजा सिह थे, जो कई बरस पहले कुछ समय के लिए पिताजी के प्रधान मत्री रहे थे। व और लडी महाराज सिह भी वहा थ, और बम्बई क मुख्य मत्री बी०जी० खेर भी। राज्य क गह मत्री मोरारजी देसाई उपस्थित नही थे। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ क्योकि वहा शेम्पेन पानी की तरह बह रही थी और आधी रात के बाद जब तक पार्टी समाप्त हा जब तक नब्बे प्रतिशत मेहमान नशे म धुत हो चुके थे।

जब अन्ततोगत्वा हम ऊपर अपन कमर म पहुचे तब रात के दो बज चुके थे। हम अपने आभूपण और जरीदार कपडे उतार चुके तब हमे यह महसूस हुआ कि हम तो, वास्तव मे बहुत कम उम्र क अजनबी हैं। इस तरह हम पति पत्नी बन गए।

दस

अगले कुछ हफ्तों तक पार्टी पर पार्टी के दौर चले जो हमने, नेपालियों ने और हमारे आपसी मित्रो ने दी । इनमे से कुछ मे पिताजी मुझसे गाना गवाते । मैंने सगीत मे अपनी रुचि बनाए रखी थी, और कई साल के अन्तराल के बावजूद जिन रागों और गानों को मैंने लडकपन मे सीखा था, उन्ह बडी आसानी से फिर से दोहरा लेता था । मेरा उन्नीसवा जन्मदिन शादी के चार दिन बाद पडा था जिस अवसर पर आशा ने मुझे एक जापानी ट्राजिस्टर भेंट किया जो उस समय बडी नायाब चीज मानी जाती थी । हमारी शादी के दो महीने पहले ही वह तरह की पूरी हुई थी । पीछे मुडकर देखने पर यह अविश्वसनीय सा जान पडता है कि हम कितने कम उम्र थे और कैसे, नई परिस्थिति के अनुरूप अपने को ढालने म कठिनाइयो के बावजूद हमारा वैवाहिक जीवन सुखी बन सका । आशा के लिए, निस्सदेह परिवतन अपेक्षाकृत अधिक था, एक विशाल सयुक्त परिवार म पाच बच्चा म स एक होते हुए एकाएक उसने अपने को एक एसे व्यक्ति स विवाहित पाया जो बिलकुल अजनबी था और ऐसे परिवार मे जिसमे वह अकेला ही लडका था और एसी भाषा बोली जाती थी जिसे वह शायद ही जानती थी । जिस पर मा का जो रवैया था, जो मेरे प्रति हमेशा से बहुत स्वत्वात्मक रही हैं वह प्राय उसके प्रति उतना सहानुभूति पूण नही रहा जितना कि होना चाहिए था । मेरे लिए भी वह परिवतन काफी बडा था । इकलौती सन्तान होने और प्राय अकेले ही पालित पोषित होने के कारण, जीवन म अजनबी एक व्यक्ति के प्रवश स एक नया ही आयाम जुड गया था जिसके लिए भावात्मक और मानसिक रूप मे मैं पूरी तरह तैयार नही था । किसी भी सफल वैवाहिक जीवन के लिए बहुत कुछ आपसी समझौते की जरूरत पडती है, लेकिन हमारे मामले मे तो सामान्य से और भी अधिक इसकी आवश्यकता थी ।

कई महीनो तक स्वास्थ्य-लाभ करने मे और विवाह के कारण, मेरा दिमाग राज्य की राजनतिक समस्याओं से हट गया था, लेकिन अब समय आ गया था जब मुझे रीजेंट होने के अपने उत्तरदायित्व को फिर से सम्हालना था। यह तय हुआ कि हम 28 अप्रैल को बम्बई से प्रस्थान करेंगे । बम्बई म गर्मी पडनी शुरू हो

गई थी और मा ने, जिन्हे गर्मी कभी अच्छी नही लगती थी, निश्चय किया कि वे वापस कसौली चली जाएगी। इससे पिताजी क्षुब्ध हुए क्योकि उन्होने शायद यह समझा था कि शादी हो जाने के बाद वे वही रहेगी। जिस दिन हम जाने वाले थे उसके तीन दिन पहले जाने का उन्होने निर्णय किया। मुझे अभी भी याद है उस शाम को जब उनकी ट्रेन जाने वाली थी, वे कश्मीर हाउस की सीढियो से उतर कर नीचे आइ, हाथ जोडकर पिताजी के आगे झुकी और विदा मागी। तब मैं यह नही जानता था कि परस्पर उनकी दोबारा भेंट अब कभी नही होने वाली है।

आशा और मैं अपने स्टाफ और नौकरो के साथ बम्बई से बडे सबेरे चार्टर किए हुए डी सी 3 हवाई जहाज से चल दिए। हम दिल्ली दस बजे पहुच गए, जहा हम रुककर सरदार पटेल को देखने गए जो तब 1 औरगजेब रोड पर रहते थे। वे बहुत बीमार थे लेकिन विशेष प्रयत्न करके उन्होने कुछ समय हमारे साथ बिताया और हमसे मिलकर वे वास्तव मे खुश दिखलाई पडे। चकि हमारी शादी तय कराने मे एक तरह से उनका ही हाथ था, इसलिए हमने सोचा कि रुककर कम से कम हम उन्हे अपना समादर तो सौंप आए। उस समय जवाहरलाल जी दिल्ली मे नही थे इसलिए उनसे हम नही मिल सके। दोपहर का भोजन हमने नेपाली दूतावास मे राजदूत के साथ किया जो आशा के चचेरे दादा थे और तब हम हवाई जहाज से जम्मू के लिए रवाना हुए, जहा हम ठीक चार बजे पहुच गए। वहा वस्तुत एक विशाल जन समुदाय हमारी अगवानी की प्रतीक्षा मे था। बख्शी गुलाम मोहम्मद और अन्य अधिकारियो के अतिरिक्त ऐसा लगता था कि जम्मू का सारा शहर ही उमड पडा हो और इस अपार भीड ने अत्यन्त उत्साह और स्नेहपूर्वक हमारा स्वागत किया।

हमारे पहुचने के दूसरे दिन शेख अब्दुल्ला श्रीनगर से आए और हमारे सम्मान मे शहर के पुराने महल, मडी मुबारक मे एक औपचारिक स्वागत समारोह की मेजबानी की, जहा उन्होने राज्य की ओर से मुझे मेरी पगडी के लिए हीरे का एक सरपेच भेंट कर सदभावना का प्रदर्शन किया। महिलाओ का भी एक स्वागत समारोह हुआ और महल मे भेंट करने वालो की सख्या तो अनत थी। आशा ने इस सारे तमाशे को ऐसे लिया जैसे मछली जल को लेती है और यद्यपि उसे डोगरी का एक शब्द भी नही आता था तो भी उसने जो थोडी बहुत हिन्दी सीख रखी थी उसी से बडे मजे मे काम चला ले रही थी। जम्मू मैं पन्द्रह दिन रुकने के बाद हम हवाई जहाज से श्रीनगर चले गए और मैं अपनी सुदर बाल पत्नी को साथ लिए वापस कर्ण महल पहुच गया, और बम्बई और जम्मू की गर्मी और भीड भाड के बाद। श्रीनगर के घर को देखकर वहा शानदार आबोहवा मे आशा रोमाचित हो उठी।

धीरे धीरे हम अपने मिल-जुले नवजीवन मे प्रतिष्ठित होने लगे। मुझे यह

समभने मे थोडा वक्त लगा कि अब मैं केवल एक व्यक्ति नही हू और कोई और भी है जो मेरे जीवन और कार्यों म निरतर सहभागिनी रहेगी। पीछे मुडकर देखन पर मुझे यह बडी असाधारण बात मालूम होती है कि आशा ने कितनी जल्दी अपने को नई परिस्थिति मे ढाल लिया। उसने हिदी सीखनी शुरू कर दी और अग्रेजी सिखाने के लिए मैंने मिसेज हेनले को लगा दिया। वे एक भारतीय महिला थी, जिनका पालन पोषण कश्मीर मे मिशनरियो ने किया था और लेखक जीराल्ड हेनले से ब्याही थी। आशा ने पेंटिंग म कुछ रुचि दिखाई, अत हमने एक अग्रेज महिला मिसेज लिलियन पुर्वी का, जो एक सेवा निवत कश्मीरी अधिकारी स ब्याही थी, उसे सिखाने के लिए नियुक्त कर दिया। जहा तक मेरा अपना सबध है, मैंने प्रोफेसर चाकू से पुन सपर्क स्थापित कर लिया। एक दिन, जब हम राज नीति विज्ञान म कुछ बिंदुओ पर चर्चा कर रहे थे, उ होने सुझाव दिया कि बिखरे और अनियमित रूप से अध्ययन करने की बजाय यदि मैं जम्मू और कश्मीर विश्व विद्यालय का बी० ए० का पाठयक्रम ले लू और अगले साल निजी परीक्षार्थी के रूप मे परीक्षा मे बठ जाऊ तो अच्छा होगा। इस सुझाव न मुझे उत्साहित किया और राजनीति विज्ञान, अथशास्त्र और अग्रेजी विषय लेकर शीघ्र ही मैंने अध्ययन आरम्भ कर दिया। इस सुझाव के लिए प्रोफेसर चाकू का बडा कृतज्ञ और ऋणी हू क्योंकि इसन मुझे फिर स अपनी अकादमिक अभिरुचियो को जारी करना सम्भव बनाया और भावी विशेषज्ञता की नीव रखी। शायद यह अजीब बात थी कि जिस विश्वविद्यालय का मैं स्वय चासलर था उसकी स्नातक परीक्षा के लिए मैं अध्ययन भी कर रहा था।

बी०ए० के पाठयक्रम के अतिरिक्त पडित परमानन्द मुझे सस्कृत पढाने फिर से आने लगे। इस प्रकार सरकारी कतव्यो के साथ साथ, जिसम उदघाटन समा रोहो म भाषण देना और आगतुको के अनत प्रवाह का स्वागत करना शामिल थे, हमने काफी सख्त अकादमिक कायक्रम भी शुरू कर दिया। मैंने अपने प्रिय विचारको, बर्ट्रेंड रसेल और आल्डस हक्स्ले की रचनाए पढना फिर से शुरू कर दिया और जिस अधिकारिक रूप से वे अथपूण विचारो को उठात और स्पष्टता और कल्पना के साथ उनका विश्लेषण करत उसन मेरे ऊपर गहरा प्रभाव डाला। तब मुझे लगा कि मनुष्यो की दुनिया से विचारो की दुनिया कितनी ऊची थी, कहीं कोई छीन-झपट और भ्रष्टाचार नही, स्थूल अवसरवादिता नही, केवल निमल मस्तिष्क मे से गुजरती हुई जगमगाती सकल्पनाए मानो निस्सीम के निजन पथ पर उडती हुई हसो की पक्ति हो। मैंन प्लेटो का भी अध्ययन किया और भावाभिभूत हो उठा। 'सिपोजियम" आज भी मरी प्रिय पुस्तको म है और यद्यपि बाद मे मैं वेदात की ओर झुका, मैं पश्चिमी दुनिया क उस महान द्रष्टा स अपनी प्रारम्भिक मुलाकात की बराबर याद करता हू। उनकी 'रिपब्लिक' पुस्तक

म मुझे दार्शनिक राजा की सकल्पना के दर्शन हुए, और एक बार फिर उस महान आदर्श का अनुकरण करने की सभावना ने मेरी नवयुवा कल्पना को जागृत कर दिया।

इस बीच राजनतिक गतिविधिया जारी रही। 13 जुलाई, 1931 को, उस अवधि म जब शेख अब्दुल्ला की मुस्लिम कार्फेंस ने डोगरा विरोधी आदोलन पहले पहल छेडा था, हिंदू दुकानदारा पर आक्रमण की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटित हुई जिसके परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिक दगे हुए और डोगरा पुलिस द्वारा गोली चलाई गई जिसम अनेक कश्मीरी मार गए। तब से इसे नेशनल कार्फेंस शहीद दिवस के रूप म मनाती है। 1950 म उस दिन शेख अब्दुल्ला ज्यादा से ज्यादा राजनैतिक लाभ प्राप्त करन के उद्देश्य से कुछ नाटकीय घोषणाए करना चाहत थे और एक महीने पहले उन्होंने मेरे हस्ताक्षर के लिए जागीरदारी और जमीदारी को बिना मुआविजा के समाप्त करने म सम्बधित दो प्रस्ताव भेजे। यो मैं प्रस्तावित कदमो से आमतौर पर सहानुभूति रखता था लेकिन जाहिर था कि उनका असर बडे तबको क लोगो के खिलाफ पडना, खासतौर पर राज्य की गैर-मुस्लिम आबादी पर। विष्णु सहाय श्रीनगर किसी काम से आए हुए थे, और मैंने यह उचित समझा कि मामले को उन्ह सौप दिया जाए ताकि भारत सरकार उन प्रस्तावा के ऊच नीच के बारे म अपना मस्तिष्क लगा सकें। जब शेख अब्दुल्ला ने कागजा के बारे म मुझे याद दिलाई तो मैंने उन्ह जो मैंने किया था वह बता दिया।

इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उनका एक रोषपूर्ण ज्ञापन आया जिसमे उन्होंने घुमा फिराकर इस विषय को कश्मीर के मामला म सचिव को सौंपने के लिए मेरी खबर ली। उन्होंने लिखा

"जान पडता है कि सवधानिक सदरे रियासत की जो जाहिरी सीमाए हैं वे श्री युवराज के ध्यान से ओझल हो गई हैं। श्री युवराज क द्वारा जो कदम उठाया गया है वह 5 मार्च 1948 को किए गए एलान की रूह के, जिसक तहत मौजूदा सरकार बनाई गई थी, एकदम खिलाफ है। यह बराबर माना गया है कि राजा या उनका रीजेंट सिर्फ सवधानिक सदरे रियासत के बतौर ही काम करेंगे और साफ तौर पर इसी बिना पर ही मौजूदा सरकार ने काम हाथ म सम्हाला है।'

इसके बाद उन्होंने अथगर्भित रूप स आगे लिखा

'यह भी साफ है कि जिन विषयो क बारे म अर्ज किया गया था उनका ताल्लुक ऐसे किसी मामले से नही था जिनम रियासत भारत डोमिनियम म

शामिल हुई हो, और इसलिए मौजूदा सवैधानिक व्यवस्था मे भारत सरकार का इस मामले मे कोई दखल नही है।"

यह काफी सख्त गोलाबारी थी पर मैंने भी न झुकने की ठान ली थी। विष्णु सहाय दोनो प्रस्तावो को लेकर पहले ही हवाई जहाज से दिल्ली चले गए थे, इस लिए मैंने शेख अब्दुल्ला क रोष भरे नोट को लेकर एक ए डी सी को फौरन भेजा और श्री सहाय से कहा कि वे "हाई कमाड" के परामर्श कर लें, जिसका तात्पर्य दरअसल जवाहरलाल जी, सरदार पटेल और गोपालस्वामी आयगर से था, और मुझे उत्तर का प्रारूप शीघ्र भेजें। वह प्रारूप लेकर दूसरे दिन ही वापस आ गया जिसे मैंने शेख के ज्ञापन के साथ सलग्न करके 12 जुलाई को उन्हें वापस भेज दिया। वह इस प्रकार था

"5 मार्च, 1948 के एलान के तहत सवैधानिक स्थिति की मैं कद्र करता हू। फिर भी मैं यह समझता हू कि दूर तक असर करने वाले इन प्रस्तावो से आबादी के एक बहुत बडे हिस्से पर आर्थिक प्रभाव पडेगा और उसकी मजूरी देने के लिए ठीक से काम करने वाला अभी कोई विधानमडल मौजूद नही है। इसलिए वर्तमान नाजुक राजनैतिक परिस्थिति मे पहले इन प्रस्तावो की भारत सरकार के सहयोग से परीक्षा की जानी चाहिए और जब तक वह सतुष्ट न हो जाए तब तक हम इन कानूनो को बनाने मे जल्दबाजी नही करनी चाहिए।

'मैं मत्रालय से कहूगा कि व मामले के इस पहलू पर विचार करें।"

इसके बावजूद, दूसरे दिन शेख अब्दुल्ला ने श्रीनगर के लाल चौक म एक लबा भाषण दिया और इन कदमो का एलान कर दिया। यद्यपि इस विषय पर चर्चा के लिए उन्हे दिल्ली बुलाया गया था और बिना मेरे हस्ताक्षर क व कानून वैध नही थ। वह उनके और भारत सरकार के बीच दृष्टिकोण सबधी और वैचारिक मतभेदो की शृखला की पहली कडी थी जो अगले कुछ वर्षों म बढती गई और जिसकी परिणति अगस्त 1953 की नाटकीय घटनाओ म हुई। प्रारभ से ही मैंने राज्य क अध्यक्ष के रूप म अपनी भूमिका को एक ही दृष्टिकोण स देखा था—कि मैं किस तरह राज्य मे राष्ट्रीय हितो की रक्षा करन म सहायता दे सकता हू, जो उन स्थितियो स व्यक्त होते रहे हैं जिन्हें जवाहरलाल नेहरू क अधीन भारत सरकार समय-समय पर अपनाती रही है। जाहिरा तौर पर मेरे इन एलानो पर दस्तखत करने म इन्कार करने से शेख को जबदस्त धक्का पहुचा क्योकि उन्हें उम्मीद थी कि मैं सिर्फ रबर स्टैंप ही बना रहूगा। इस तरह नजरिए जुदा होना शुरू हुए और हमारे बीच हम खयाली काफूर होने लगी। यद्यपि इस अनबन

को अक्सर पुराने कश्मीरी डोगरा विद्वेष के रूप में पेश किया जाता रहा है, लेकिन असल बात यह है कि, हालांकि मुझे अपनी डोगरा विरासत का गर्व है मैंने एक डोगरा के रूप में नहीं बल्कि एक भारतीय की हैसियत से अपना काम करने की कोशिश की थी। वस्तुत यह कहना सही होगा कि शेख अब्दुल्ला और मुझमें मूल भेद इस तथ्य की वजह से पैदा हुआ कि जबकि वे अपने को कश्मीरी समझते थे जिसने परिस्थिति वश अपने को भारत में पाया मैं अपने को भारतीय मानता था जिसने परिस्थिति वश अपने को कश्मीर में पाया।

जम्मू और कश्मीर की ठीक ठीक स्थिति क्या है इस प्रश्न का हल अब तक नहीं हो पाया था। मैं पहले लिख चुका हूं कि किस प्रकार पिताजी के मन में एक स्वतंत्र राज्य के विचार के प्रति एक धुंधला सा आकर्षण था, लेकिन तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों ने उन्हें अभिभूत कर लिया। बाद में जो कुछ भी हुआ, अधिमिलन युद्ध युद्धबन्दी और संयुक्त राष्ट्र संघ का हस्तक्षेप, इन सबके बावजूद शेख भी आजादी की संकल्पना के किसी तरह खिलाफ नहीं था। यह अगले दो या तीन वर्षों में बिल्कुल स्पष्ट हो गया और स्टेट डिपार्टमेंट के कागजों में, जो अब सार्वजनिक रूप से प्रकाशित हो चुके हैं, अमरीकी राजदूत लॉय हेंडरसन की 1950 की ग्रीष्म में उनसे हुई बातचीत का जो उल्लेख है, उससे उसी बात की पुष्टि होती है, जो सर्वविदित है। लेकिन उस दिशा में कदम बढ़ाने से पहले, शेख अब्दुल्ला को यह महसूस हुआ कि उन्हें डोगरा शासन के सभी शेष चिह्नों को मिटाना होगा और अपने हाथों में पूरी ताकत इकट्ठी करनी होगी। राजस्व मंत्री मिर्जा अफजल बेग के नेतृत्व में, जिन्होंने अपने अकबर के लिए टोडरमल की भूमिका अदा की सहायकों और सलाहकारों के एक दल की सहायता और प्रोत्साहन के साथ एकनिष्ठ निष्ठुरता के साथ वे इसी लक्ष्य की ओर बढ़ चले।

इस अंधकारपूर्ण परिस्थिति में मेरी एक ही नीति थी और वह यह कि भारत सरकार से निकट संपर्क रखूं और प० जवाहरलाल से भी व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखूं। उद्घोषणा की घटना के शीघ्र बाद आशा और मैं दिल्ली गए। आशा मां से भेंट करने कार से कसौली चली गई और मैं कुछ दिन तीन मूर्ति भवन में प० जवाहरलाल का मेहमान रहा। उस समय पद्मजा नायडू भी वहां रह रही थी। वे बहुत मजेदार महिला थीं और कोई न कोई मजाकिया बातचीत छेड़ देती थी जिससे मुझे तुरंत घरेलूपन महसूस होने लगता था। इन्दिरा गांधी मेजबान थी, विनम्र किंतु संकोची और मितभाषी। उस समय राजीव और संजय बहुत छोटे थे और मुझे याद है जब मैं भवन के पीछे के लान में जवाहर लाल जी के साथ पहल कदमी कर रहा था तब उन्होंने अपने पौधों का विशालकाय पांडा दिखलाए थे जो हाल ही में भेंट स्वरूप चीन से आए थे।

सरदार पटेल के जीवन में कुछ ही महीने शेष थे और उनसे बार-बार मिलना

मुमकिन नही था। लेकिन मैंने राष्ट्रपति डा० राजेंद्र प्रसाद से नियमित रूप से मिलना प्रारभ किया। वे बहुत ही दयालु और सस्कृत व्यक्ति थे और मुझसे हमेशा बडे प्यार के साथ मिला करते थे और राज्य की परिस्थिति के बारे मे मेरी रिपोर्टों को बडी दिलचस्पी के साथ सुना करते थे। यह स्पष्ट था कि उनका दृष्टिकोण जवाहरलाल जी की अपेक्षा सरदार के अधिक नजदीक था और राज्य म हिंदू जिस कठिन स्थिति म पड गए थे, उसके बारे म विशेष रूप से चिंतित थे। शेख अब्दुल्ला के बारे मे सरदार की जो गहरी आशकाए थी उनसे व सहमत जान पडते थे लेकिन वे इतने विनम्र थे कि उन्ह साफ शब्दो म व्यक्त नही करते थे। कुछ दिन बाद डा० राजेन्द्र प्रसाद जो कश्मीर यूनिवर्सिटी के दूसरे दीक्षात समारोह मे भाषण देने श्रीनगर आए जिसकी मैंने एक बार फिर अध्यक्षता की।

यद्यपि नई दिल्ली की सलाह पर, जिसमे सरदार पटेल ने अपने अतिम हफ्ता मे भी दिलचस्पी ली, शेख अब्दुल्ला न आनाकानी के साथ कुछ तरमीमे की और जागीरदारी और भूमि-सुधार सबधी उदघोषणा की समस्या को सुलझा लिया गया लेकिन शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि अपनी स्थिति को मजबूत बनाने और हावी होकर सवधानिक वधता प्राप्त करने के उद्देश्य से सावधानी स बनाई गई योजना के तहत यह केवल उनकी पहली चाल ही थी। यहा यह ध्यान रखना जरूरी है कि कश्मीर का मसला सयुक्त राष्ट्र सघ म तब भी एक जीवित मुद्दा था जहा जवाहरलाल जी की आदशवादिता और न्याय भावना न इस सम्पूर्ण मामले को भारत के लिए एक असमजस और उलझनपूर्ण स्थिति म डाल दिया था। प्रस्तावित रायगुमारी के दबाव का फायदा उठाते हुए शेख अब्दुल्ला ने पिताजी के खिलाफ निष्ठुर आदोलन जारी रखा। उन्ह राज्य स निवासित कराके भी सतुष्ट न होकर वे अब राज परिवार को ही औपचारिक रूप से समाप्त करने के लिए जोर देन लगे और इसके लिए उन्होन जो साधन चुना वह था राज्य क लिए एक सविधान सभा की सकल्पना। लेकिन इसम जो पेंच था वह था कि ऐसी सभा कानूनन बिना मेरी स्वीकृति के अस्तित्व म नही आ सकती थी।

राज्य का सविधान तयार करने के लिए सविधान सभा की सकल्पना रायगुमारी के प्रश्न को निरथक बनाने के लिए और अधिक व्यापक राजनतिक चाल का ही एक अग थी। यद्यपि अनेक अवसरो पर जवाहरलाल जी ने सयुक्त राष्ट्र सघ और पाकिस्तान को आश्वासन दिया था कि भारत अपना पहले किए हुए वायदे पर कायम है तो भी यह साफ था कि यदि एक सविधान सभा की बठक होती है जिसम राज्य व भारत से अधिमिलन की पुन पुष्टि की जाती है तो उससे बाहर के सावजनिक मत पर असर पडेगा। शेख अब्दुल्ला का निस्सन्देह इससे डोगरा राजवश को अतिम आघात पहुचाने का और इस प्रकार अपने जीवन की एक सबसे अधिक अभिलषित आकाक्षा को पूरी करने का एक और उत्तम अवसर

प्राप्त हुआ। 1950 के पूरे वर्ष इसके विषय में राज्य सरकार और संघ के कश्मीर मामलों के मंत्रालय के बीच वार्तालाप होते रहे। यद्यपि पिताजी ने मुझे रीजेंट की पदवी दे दी थी तो भी उन्होंने राज परित्याग नहीं किया था और कानूनन वे अब भी शासक बने हुए थे। इसलिए भारत सरकार के लिए यह अनिवार्य हो गया कि संविधान सभा के सम्बन्ध में वह उनसे परामर्श करे, और 30 नवम्बर, 1950 को, कश्मीर मामलों के सचिव विष्णु सहाय ने उन्हें एक पत्र लिखा जिसके साथ मेरे द्वारा जारी की जाने वाली एक उदघोषणा का प्रारूप संलग्न किया गया और उनसे अपनी टिप्पणी देने को कहा गया। दस दिसम्बर को पिताजी ने सरदार पटेल को एक लंबा पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अनेक बातें कहीं, जो संक्षेप में इस प्रकार हैं—

1 उदघोषणा, जिसके उद्देश्य और निहित मंतव्य से मैं पूरी तरह सहमत हूं, शासक के रूप में जो उसे प्रवर्तित करने वाली नियमानुसार विधिवत निर्मित सत्ता है, मेरे द्वारा जारी की जानी चाहिए, न कि मेरे रीजेंट द्वारा।
2 निर्मित की जाने वाली सभा के अधिकार और कार्य सुस्पष्ट, भलीभांति परिभाषित और सही शब्दों में व्यक्त होने चाहिए और ऐसे मामलों को जो उन्हें विशेष रूप से सौंपे नहीं गए हों, उनकी जांच और विचार-परिधि से बाहर कर देने चाहिए।
3 उन्हें अपनी रिपोर्ट उस सत्ता को, जिसने उन्हें निर्मित किया, अर्थात शासक को देनी चाहिए जो इस विषय में भारतीय संसद की सलाह लेगा।

उपरोक्त टिप्पणियों के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने पर यह स्पष्ट होगा कि जिस रूप में उदघोषणा का प्रारूप तैयार किया गया है यदि उसे वैसा ही जारी किया गया तो उसमें समुचित संस्वीकृति की कमी होगी और वह अवैध होगी क्योंकि उसकी विभिन्न धाराएं परस्पर विरोधी हैं और मान्य संवैधानिक सिद्धांतों के भी विपरीत हैं तथा परिकल्पित योजना के वास्तविक कार्यान्वयन में गम्भीर कठिनाईयां आएंगी जिससे वह लक्ष्य ही समाप्त हो जाएगा जिसे प्राप्त करना उद्दिष्ट था।

उन्होंने मुझे भी लिखा कि चूंकि वे मामले को भारत सरकार के साथ उठा रहे हैं अतः जब तक मामला साफ न हो जाए, मैं उदघोषणा पर हस्ताक्षर न करूं।

इसके शीघ्र बाद ही सरदार पटेल दिवंगत हो गए और राष्ट्रीय जीवन में ऐसी एक रिक्ति हो गई जो फिर सचमुच कभी भरी नहीं जा सकी। 25 जनवरी को विष्णु सहाय ने उदघोषणा की एक प्रतिलिपि संलग्न करते हुए मुझे लिखा

और सुझाव दिया कि जब मुझे इस सम्बन्ध मे शेख अब्दुल्ला से 'निवदन' प्राप्त हो तो मुझे उस पर हस्ताक्षर कर देना चाहिए। यह निवेदन 27 जनवरी को प्राप्त हुआ और इस प्रकार था

"मौजूदा राज्य सरकार हमेशा इस स्थिति के प्रति प्रतिबद्ध रही है कि यह राज्य के लोगो के ऊपर है कि वे जिस प्रकार से चाहे राज्य का सविधान बनाए। इस काम के लिए उपयुक्त समय पर एक सविधान सभा बुलाई जाने वाली थी। शासक ने भी इस विचार का समर्थन किया था और 5 माच, 1948 को जारी की गई उदघोषणा मे जब स्थिति फिर मे सामान्य हो जाए तब एक राष्ट्रीय सभा बुलाने का प्रावधान किया गया था। अक्टूबर 1949 मे सरकार ने वतमान स्थिति का जायजा लेने के बाद भारत सरकार से सलाह करके यह फैसला किया कि अब इस सविधान सभा को स्थापित करने का समय आ गया है और इस फमले के मुताबिक राज्य मे चुनाव सूचिया तयार करने के लिए कदम उठाए गए। फिर भी यह ठीक समझा गया कि राज्य मे सविधान सभा बुलाई जाने के लिए एक उद्घोपणा जारी की जाए और 5 माच, 1948 की उद्घोषणा की 4 स 6 तक की दफाओ को निकाल दिया जाए क्याकि वे मौजूदा जरूरियात को पूरा नही करती। इस उदघोपणा की शर्ते और सविधान सभा के अधिकार और काय लंबे अरसे तक भारत सरकार के साथ गुफ्तगू और खतकिताबत का मजमून रहे हैं और वजीरे आजम यह तस्कीन महसूस करते है कि आखिर मे इस सरकार मे और भारत सरकार के खयालात मे इस मामले म पूरा इत्तिफाक हो गया है। साथ लगा उदघोपणा का मसौदा दोनो सरकारो ने मिलजुल कर तैयार किया ह और उसके साथ भारत सरकार की पूरी रजामदी है। भारत सरकार की ख्वाहिश ह कि इस उदघोपणा को, जो जल्द से जल्द तारीख मुमकिन हो, उस पर जारी कर दिया जाए। इसलिए गुजारिश ह कि श्री युवराज उस पर अपने दस्तखत करन के बाद उसे फौरन वापस कर दें।

शे मो अब्दुल्ला
वजीरे आजम
27 1-1951"

इन घटनाओ ने मुझे भारी पशोपेश मे डाल दिया। एक तरफ तो पिताजी का स्पष्ट निर्देश था कि उद्घोपणा पर हस्ताक्षर नहीं करना ह और दूसरी तरफ भारत सरकार और शेख अब्दुल्ला दोना हस्ताक्षर करने के लिए मुझ पर जोर दे रहे थ। मैंने तुरत हवाई जहाज म दिल्ली जाने का फैसला किया जहा मैं गोपाल स्वामी आयगर स मिला, जिन्होंने राज्यो के मत्री का कायभार ले लिया था, और

उन्हें स्थिति समझाई। लौटकर मैंने शेख अब्दुल्ला के निवेदन पर यह टिप्पणी लिखी

"प्रधान मन्त्री जी

जैसा कि आपको मालूम है, मुझे जो अधिकार मिले हैं व महाराजाधिराज के तारीख 20 जून, 1949 की उदघोषणा से मिले हैं, जिसमे मुझे रीजेंट नियुक्त किया गया है।

उदघोषणा का जो मसौदा आपने मेरे सामने पेश किया है वह बहुत महत्व पूर्ण दस्तावेज है क्योकि उसमे राज्य के लिए दूरगामी परिणाम निहित हैं। राज्यो के मन्त्रालय ने महाराजाधिराज के पास उद्घोषणा का एक मसौदा उनकी टिप्पणी के लिए भेजा था। महाराजाधिराज ने, उस समय जो राज्यो के माननीय मन्त्री थे (स्वर्गीय सरदार पटेल) उन्हे उस पर अपनी टिप्पणी भेजी थी और साथ ही मुझे हिदायत दी थी कि बिना उनकी जाहिर मजूरी के इस विषय की किसी उद्घोषणा पर अपने दस्तखत न करू।

आप यह मानेंगे कि चूकि मुझे अब तक उनसे ऐसी कोई मजूरी प्राप्त नही हुई है, इसलिए आपके द्वारा भेजे गए दस्तावेज पर दस्तखत करने का मुझे हक हासिल नही है। इसलिए मैं सुझाव दूगा कि आप भारत सरकार से कहें कि वे महाराजाधिराज से इस मामले की पैरवी करें।

कर्ण सिंह
रीजेंट
30 1 1951"

इस पत्र ने गेंद वापस भारत सरकार की गोद मे डाल दी। इस बीच पिताजी ने वकीलो की एक अग्रणी फर्म कागा एड कपनी से कानूनी सलाह ली जो एक ब्यौरेवार ज्ञापन का आधार बनी जिसे बाद मे उन्होने राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया। इस सलाह मे इस बात की पुष्टि की गई थी कि वे अभी भी शासक है और केवल उन्हे ही सविधान सभा को स्थापित करने के उद्देश्य से की जाने वाली उदघोषणा पर हस्ताक्षर करने का अधिकार है। दुर्भाग्य से उपस्थित प्रश्न कानूनी बारीकियो का नहीं, बल्कि राजनतिक शक्ति के कठोर यथार्थों का प्रश्न था। वी०पी० मेनन पिताजी से बम्बई मे मिले, और तब 5 अप्रैल को गोपालस्वामी आयगर ने उन्हे एक पत्र लिखा जिसमे स्थिति को बलाग रूप से इस प्रकार बताया गया

" तरंग राज्य मे तथा नेक सवसेम दोनो स्थलो पर जो घटनाए हुई हैं उनसे यह अनिवार्य हो गया है कि उद्घोषणा के मामले मे अब और अधिक देर न

की जाए। भारत सरकार एक सविधान सभा बुलाने के लिए प्रतिबद्ध है, जिसकी तैयारिया राज्य मे सक्रिय रूप से आगे बढाई जा रही हैं। वह सभा तो होगी ही चाहे औपचारिक उद्घोषणा जारी हो अथवा नही। भारत सरकार के विचार मे यदि कश्मीर के लोगो को दिए गए वायदे को और लेक सक्सेस मे वह जिस बात पर कायम है उस शब्दश और भावात्मक रूप से कार्यान्वित करना है तो सभा बुलानी ही हागी। प्रारम्भ से ही उनकी यह धारणा रही है कि सविधान सभा का भारत के सविधान के प्रावधानो के अधीन बुलाना चाहिए और यह कि व्यवहार कुशलता और सवैधानिक दोनो ही दष्टिकोणो से इसे राज्य के अध्यक्ष द्वारा जारी की गई उदघोषणा के प्राधिकार पर बुलानी चाहिए। उदघोणा क प्रारूप के सबध म भारत सरकार और जम्मू और कश्मीर की सरकार के बीच सहमति हो चुकी है। इसलिए महाराजाधिराज के किसी ऐसे काम से जिससे इस उदघोषणा पर श्री युवराज के हस्ताक्षर करने और उसे जारी करने पर रोक लगती हो, कोई प्रयोजन सिद्ध नही होने वाला है।

"उन दा वातो मे से किसी पर, जिनके बारे म मैं समझ सकता हू कि आपको आशकाए होगी, अर्थात् जम्मू और कश्मीर राज्य या उसके किसी भाग के भारत म अधिमिलन का बरकरार रखने और आपके वश से राज्य के अध्यक्ष के पद को सबधित रखने के विषय म, जो सविधान सभा बुलाई जायगी वह केवल अन्तिम निणय नही लेगी। य मूलत एसी वातें हैं जिन पर एक ओर भारत सरकार और ससद, और दूसरी ओर जम्मू और कश्मीर सरकार तथा राज्य की सविधान सभा या विधान सभा के बीच समझौता होने पर ही निणय लिया जा सकेगा। निस्सदेह भारत सरकार उपयुक्त समय पर इन वातो पर निणय लेगी, जो मुझे आपको विश्वास दिलाना आवश्यक नही, आपके वश और राज्य के लोगा, दोना ही के दष्टिकोण मे, न्यायोचित होगा। जाहिर है कि आपको राज्य के लोगो मे और भारत सरकार मे इस विषय मे अपना विश्वास रखना होगा। इसलिए मैं आशा करता हू कि उदघोषणा पर, जिसके विषय मे समझौता हो चुका ह, श्री युवराज के हस्ताक्षर करने पर जो रोक आपने लगा रखी है और जिसने उन्हें स्वभावतया बडे पशोपश मे डाल रखा है, उसे आप तुरन्त उठा लेंगे "

इसने पिताजी का सहमति के लिए राजी कर लिया और मुझे उन्होंने औप चारिक रूप से लिखा कि उन्होने प्रतिबध उठा लिया है और मैं जैसा उचित समझू वसा करू। कुछ दिनो बाद मुझे वी०पी० मेनन का पत्र मिला जिसम उन्होंने उद्घोषणा पर हस्ताक्षर करने का अनुरोध किया जो मैंने 21 अप्रल को कर दिए। इस बीच जाहिरा तौर पर मैंने जो पहले हस्ताक्षर करने से इकार किया था, उस शेख अब्दुल्ला न सरलता स नही लिया था। दबाव बनाए रखन के लिए उन्होने

9 अप्रैल को जम्मू से कुछ मील दूर हुई एक सावजनिक सभा मे पिताजी और मेरे ऊपर व्यक्तिगत कटु आक्रमण करना शुरू किया। उन्होने फिर से मेरे माता पिता पर 1947 मे साम्प्रदायिक दगे उकसाने का आरोप लगाया और कहा कि यदि मैं भी सावधान नही रहा तो मुझे भी वसे ही जाना पडेगा जैस वे चले गए। इस निहायत अकारण आक्रमण से मुझे धक्का लगा और मैंने तुरत उन्हे पत्र लिखा और उसकी एक प्रतिलिपि जवाहरलाल जी को, जो तभी कश्मीर से लौटे थे एक सहपत्र के साथ भेजी जिसमे मैंने लिखा "शेख साहब ने सावजनिक रूप से इस प्रकार जो टीका टिप्पणी की है, उससे मुझे गहरी चोट पहुची है, विशेष रूप से जबकि वह तथ्यो पर आधारित नही थी और परिणामस्वरूप बहुत भ्रामक थी।

शेख साहब ने मेरे पत्र का उत्तर पाच पृष्ठो के उपदेशात्मक लम्बे खर्रे से दिया जिसमे उन्होने यह स्पष्ट कर दिया कि वे मुझसे अपनी सरकार के एक बदी के रूप म काय करने की उम्मीद करते हैं, यहा तक कि सावजनिक उपस्थिति के लिए भी उनकी सलाह ली जाए। इस पत्र से यह जाहिर हुआ कि चाहे राज्य के अध्यक्ष के रूप म वे मुझे बर्दाश्त कर लें, लेकिन मेरे परिवार से अपने आतरिक विरोध को दबाने म वे असमथ थे। पर उस समय वे सत्ता के शिखर पर आरूढ थे, इसलिए सिवा इसके कि कुछ समय तक अपने को झुकाये रखू मैं और कुछ कर भी नही सकता था। मैंने जवाहरलाल जी से अपने सपक को बनाए रखा। हर बार जब दिल्ली जाता तो उनसे मिलता और व अनेक विषयो पर विस्तार से बातें करते। कश्मीर मेरे मस्तिष्क म सबस ऊपर था, और उस अवधि मे मुझ भेजे गए उनके अनक पत्रो मे राज्य स सबधित विभिन्न आतरिक और अतर्राष्ट्रीय घटनाओ के विषय मे ब्योरे से चर्चा होती। एसा लगता है कि मेर प्रति उनके मन मे कुछ स्नेह उत्पन्न हो गया था, क्योकि मुझसे मिलन पर उन्हे हमेशा आतरिक प्रसन्नता होती जान पडती थी। 13 मई, 1951 को मा को लिखे गए एक पत्र के अत में उन्होने लिखा '*मैं टाइगर स समय समय पर मिलता रहा हू और धीरे धीरे मैं उसको बहुत चाहने लगा हू। वह एक उत्तम नवयुवक है और मेरे विचार म उसके गुण उस कठिनाइयो का सामना करन मे सहायक होगे। मैं अवश्य ही हर प्रकार से उसकी सहायता और मागदशन करूगा।*'

मैं इसे इसलिए उद्धत कर रहा हू क्योकि आगे होने वाली घटनाओ मे इसका हाथ है, और इसलिए भी कि इससे पता चलता है कि शेख अब्दुल्ला की विशेष स्थिति क बावजूद ऐसा नही था कि जवाहरलाल जी दूसरे पक्ष को सुनते ही नही थे। डी०पी० धर को भी जवाहरलाल जी के पास सीधी पहुच थी और हम दोनो मिलकर लडने पर उतारू मुस्लिम कश्मीरी उग्र राष्ट्रवादिता का जिसका प्रति निधित्व शम करते थे और नेशनल कान्फ्रेंस क कट्टरवादियो का, जिनके नेता मिर्जा

अफजल बेग थे, कुछ हद तक प्रतिकार करने मे सफल होते थे। जवाहरलाल जी की मन स्थिति इस सम्बन्ध म दिलचस्प थी। यदि उन्होने किसी व्यक्ति की ईमानदारी का रद्द कर दिया तो फिर उधर स आने वाली कोई भी सम्मति या सलाह फौरन शक की नजरो से देखी जाएगी। इस तरह उन्हे जम्मू के प्रजा परिषद के नेता खास तौर पर नापसद थे, क्योकि उनका ख्याल था कि वे सप्रदायवादी है और उनके कारनामा मे कश्मीर के सम्बन्ध म भारत की स्थिति को हानि ही पहुचनी है। लेकिन अगर उन्होने किसी पर विश्वास किया—और जहा तक उनके दोस्ता का सम्बन्ध है, वे इतने वफादार थे कि इसे उनकी एक कमजोरी माना जा सकता है—तो वे उनके विचारा को बडे ध्यान से सुनते थे चाहे वे उनके अपने विचारो से मेल न भी खाते हो।

जवाहरलाल जी उस वर्ष श्रीनगर जून के प्रारम्भ मे आए। जाहिरा तौर पर शेख अब्दुल्ला न कुछ हफ्तो पहले अपने जम्मू के भाषण के परिणामस्वरूप हुई हमारी मुठभेड के बारे म बताया और सुझाव दिया कि मेरे स्टाफ म एक सचिव की नियुक्ति कर दी जाए। जवाहरलाल जी ने इस सम्बन्ध मे चश्माशाही हाउस स लिखा, जहा ठहरना वे हमेशा पसन्द करते थे। यह घर हमारा था और इसी म 1928 मे मेरे माता-पिता की शादी हुई थी। बाद म वह एक प्रकार से विशिष्ट अतिथि निवास के रूप मे प्रयोग मे आता था और सर तेज बहादुर सप्रू वहा ग्रीष्म म अपने परिवार के सदस्या के साथ कई हफ्तो ठहरा करते थे। बाद मे वह स्वामी सत देव का निवास स्थान रहा और 1947 के बाद जवाहरलाल का प्रिय आवास बना। घर से डल झील, शकराचार्य और हरि पवत की पहाडियो और उनके पीछे की ऊची पवत श्रेणियो का भव्य दृश्य दिखलाई देता है। यहा से देखने पर सूर्यास्त विशेष रूप से शानदार मालूम देता है और जवाहरलाल जी अक्सर बरामदे म चुपचाप बैठ जाते और सूय को क्षितिज के नीचे डूबते हुए देखा करत।

इस बीच मैंने बी० ए० की परीक्षा मे बैठने की तैयारिया जारी रखी, जबकि आशा न अग्रेजी और हिन्दी की पढाई और पेंटिग, सीखना भी शुरू कर दिया। सुबह हम अपने शिक्षको स लगभग दो घटे पढत जिसके बाद मैं कमचारियो और आगतुको के साथ कुछ औपचारिक बैठकें करता। हफ्त मे दा या तीन बार हमारे साथ दोपहर के भोजन के लिए कुछ लाग आते, जिनमे मिलने आने वाले कुछ विशिष्ट व्यक्ति होते, जस विदेशी राजदूत, सयुक्त राष्ट्र सघ के कमचारी और स्थानीय लोग। आशा ने वार्तालाप की अग्रेजी सीखना शुरू कर दिया था लेकिन अभी भी थोडी शरमीली थी इसलिए मुझे दोना ही की तरफ से बातचीत चलानी पडती जा प्राय मजेदार होती। हम डाइनिंग टेबुल क बीच मे एक-दूसरे के सामन बठत और महमान हमारे दानो ओर महत्ताक्रम सूची के अनुसार बठत। हमारी टेबुल पर अधिक से अधिक सोलह व्यक्ति बठ सकत थे, इसलिए पार्टिया अतरग होनी

थी। कई वर्षों के दौरान मैंने यह पाया कि इन भोजों का वास्तविक मूल्य था, क्योंकि नाना प्रकार के लोग, जिनमें से कुछ बहुत बुद्धिमान और प्रेरणादायक होते थे, भारत के विभिन्न भागों से और विश्व के अन्य अनेक देशों से आया करते थे। आरम्भ से ही जिज्ञासु होने के कारण मैं उन वार्तालापों से मूल्यवान सामान्य सूचना और विचार ग्रहण कर लेता था।

विचारों में रुचि होने के कारण मैंने पाया कि मेरा आकर्षण शिक्षा की ओर भी है और इससे मैंने पिताजी को सुझाव दिया कि हम श्रीनगर के अपने प्रमुख महल गुलाब भवन को नव स्थापित जम्मू और कश्मीर यूनिवर्सिटी को दान में दे देना चाहिए। मैंने इसका ज़िक्र जवाहरलाल जी और गोपाल स्वामी आयंगर से भी किया, जिनकी प्रतिक्रिया पक्ष में थी। जवाहरलाल जी ने लिखा "मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि तुम्हारा इरादा गुलाब महल पैलेस को जम्मू और कश्मीर युनिवर्सिटी को दान देने का है। भवन का यह सबसे उत्तम उपयोग है और मुझे विश्वास है कि जनता भी इसकी बड़ी तारीफ करेगी।' पिताजी उस समय भारत से बाहर गए हुए थे लेकिन उनके निजी सचिव भीमसेन माहे (कम्यूनिस्ट नेता धन्वतरि माहे के भाई) श्रीनगर आए हुए थे और मैंने उनसे इस दान के विषय में अपने विचार पिताजी को बता देने के लिए कह दिया था। ज़ाहिरा तौर पर उन्होंने ऐसा नहीं किया लेकिन इस बीच गोपाल स्वामी आयंगर ने उन्हें इस प्रस्ताव के बारे में लिखा और उनसे अनुरोध किया कि वे उसे स्वीकार कर लें। पिताजी का पारा आसमान पर चढ़ गया और उन्होंने मुझे एक रोष भरा पत्र लिखा। मैंने अपने उत्तर में वे कारण बताए जिनसे प्रेरित होकर मैंने भेंट का सुझाव दिया था और सार रूप से मैंने कहा

"इन सब बातों पर विचार करते हुए—एक तेजी से बिगड़ती हुई इमारत, जो यूनिवर्सिटी के लिए आदर्शरूप से उपयुक्त है और जो उपेक्षित और बेकार पड़ी हुई है, और यह तथ्य कि हमारी यूनिवर्सिटी को एक उपयुक्त भवन की सख्त जरूरत है तथा यह कि शिक्षा से बढ़कर महान और उपयुक्त हेतु मिलना संभव नहीं है—मैं हृदय से यह महसूस करता हूं कि आपकी ओर से यह सद्भावना का उदात्त प्रतीक होगा यदि आप इस भवन को दान दे दें। मुझे पूरा विश्वास है कि इस बात का जनता के ऊपर बिजली के समान असर पड़ेगा।'

लेकिन पिताजी सहमत नहीं हुए और अपने उत्तर में क्रोधपूर्वक उन्होंने लिखा

"जम्मू और कश्मीर सरकार ने जानी रूप से मुझे परेशान करने में और जनता की निगाह में खानदान की तौहीन करने में कोई कसर नहीं छोड़ी मैं

उम्मीद करता हू तुम यह समझोगे कि मौजूदा परिस्थितियो मे इस भेंट का -- चाहे उसके पीछे कितने ही ऊचे आदर्श हो—गलत अथ लगाया जाएगा, शासक की कोई हस्ती न होने, उसके किसी मसरफ के न होने के सबूत की एक और मिसाल।"

और कुछ समय के लिए बात वही की वही रह गई। उसके शीघ्र बाद ही गुलाब भवन को एक खूबसूरत होटल मे परिवर्तित कर दिया गया जहा पहली बार कश्मीर आने वाले पयटको को उत्कृष्ट आवासीय सुविधा प्राप्त हुई। लेकिन यूनिवर्सिटी को दिए गए वायदे को मैं भूला नही, और कुछ वर्षों बाद हजरतबल के पास 120 एकड का एक फलो का बाग (जिसका नाम मेरे पितामह के नाम से अमर सिंह बाग था) कश्मीर युनिवर्सिटी को दे दिया, जहा उसका वतमान परिसर स्थित है।

अक्टूबर के अत मे मैं बी० ए० की परीक्षा मे बठा। चूकि मैं चासलर था, इसी लिए यूनिवर्सिटी के अधिकारियो ने मेरे निवास पर ही एक विशेष केंद्र खोलन का प्रस्ताव किया, लेकिन मैंने सोचा कि यह नितात अनुचित होगा और तय किया कि मैं और विद्यार्थियो क साथ श्री प्रताप कालेज केंद्र म ही परीक्षा मे बैठूगा। मुझे केवल एक ही सुविधा दी गई, औरो से थोडी ऊची कुर्सी और डेस्क, क्योंकि मेरे अचल कूल्हे की वजह से नीची डेस्क पर बैठने मे मुझे कठिनाई होती थी।

5 नवबर, 1951 को जम्मू और कश्मीर सविधान सभा की बैठक हुई। इस गरिमामयी सस्था के चुनाव, जिसे मैंने उदघोषणा द्वारा बुलाया था, पहले हो चुके थे, किंतु एक ही प्रभावशाली विरोधी दल—जम्मू की प्रजा परिषद—ने चुनाव का बहिष्कार-सा किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि नेशनल कान्फ्रेंस क टिकट पर 75 म से 72 सदस्य निर्विरोध चुन लिए गए और तीन प्रजा परिषद् के सदस्य चुने गए जिनम पुराने अनुभवी और व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त नेता पडित प्रेम नाथ डोगरा भी थे। मैं उद्घाटन सत्र मे उपस्थित नही था, किंतु शेख अब्दुल्ला के लिए तो यह सर्वोत्कृष्ट घडी थी और उसका उन्होने भरपूर लाभ उठाया। कुछ-कुछ शब्दाडबर से भरे आलकारिक उदघाटन भाषण म, जिसम उन्होने औरो के साथ-साथ थॉमस एक्विनास को भी उद्धत किया, उन्होंने कहा, कि 'देश का भावी शासन चलाने के लिए" एक सविधान बनाने के अलावा यह सभा 'अधिमिलन के सम्बध म अपना तकसम्मत निष्कर्ष' घोषित करेगी और सरकार द्वारा पारित भूमि सुधारो पर भी विचार करेगी। फिर बडे चाव के साथ उन्होने कहा 'एक और मुद्दा जो राष्ट्र के लिए बहुत अहमियत रखता है, वह है राजघराने का भविष्य।" डोगरा वश और उसके कृतित्व की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म सम्बध म अपने दृष्टिकोण मे एक लबा विवरण देने के बाद उन्होने पिताजी के खिलाफ

गोलाबारी शुरू कर दी। उन्होंने कहा

"आवाम के पूरी ताकत हासिल करने के बाद नेक इरादे का यह एक मौजूं इशारा होता है कि महाराजा हरी सिंह को रियासत का पहला आईनी सदर मान लिया जाता। लेकिन मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने आवाम के हर तबके का इत्मीनान पूरी तरह खो दिया। बदले हुए हालात के साथ अपने को ढाल पाने में उनकी असमर्थता और अहम मसालों पर उनके दकियानूसी खयालात एक जम्हूरी सदर रियासत के ऊंचे ओहदे पर बैठने के लिए उन्हें यकीनन नाका बिल बना देते हैं।'

लेकिन इसके आगे के दो पैराग्राफों में उन्होंने सदरे रियासत के रूप में मेरे चुने जाने का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने जो कहा वह यह है

"मुझे यकीन है कि हममें से किसी की भी महाराजा के खानदान से जाती झगड़े में दिलचस्पी नहीं है। आवामी मुआमलात को सरंजाम देने के लिए यह जरूरी है कि हर शख्स के कारनामों का बेतफा जायजा लिया जाए। हमारा इम्तियाज़ बदगुमानी या जाती मनमुटाव से बिगड़ना नहीं चाहिए। इन पिछले कुछ सालों में युवराज कर्ण सिंह से मुलाकात में मैं और सरकार में मेरे साथ काम करने वाले उनकी अक्लमंदी आज़ाद ख्याली और मुल्क की खिदमत करने की उनकी दिली ख्वाहिश से मुतअस्सर हुए। युवराज की ये खूबियां उन्हें रियासत का पहला सदर चुने जाने की इज्जत के हकदार की हैसियत से औरों से जुदा करती हैं।

"इसमें कोई शक नहीं कि युवराज कर्ण सिंह रियासत के एक शहरी की हैसियत से जम्हूरी इदारे में तब्दीली की एक अहम निशानी साबित होंगे जिसमें कल का राजा अवाम का पहला खादिम बन जाता है उनकी हुकूमत में, और उनकी तरफ से काम करते हुए।'

स्पष्टतया जवाहरलाल जी और भारत सरकार के अन्य प्रतिनिधियों से जो लंबी चर्चाएं हुई उनके दौरान यह समझौता खोज निकाला गया था। डोगरा लोग ऐसे न बिगड़ जाएं कि फिर हाथ न आएं इसे बचाने के लिए और दूसरे हमारे परिवार में ही संवैधानिक सत्ता को बड़े सूक्ष्म तरीके से बनाए रखने के उद्देश्य से यह एक चतुराई भरा कदम था। आखिर जम्मू और कश्मीर के भारत में अधिमिलन की कानूनी संवैधानिक वैधता तो अधिमिलन के अभिलेख पर ही आधारित थी जिस पर पिताजी के हस्ताक्षर थे और अब उसी व्यक्ति को उसके पुत्र और रीजेंट द्वारा हस्ताक्षर की गई एक उद्घोषणा के जरिए बुलाई गई सभा के द्वारा

बिना किसी औपचारिकता से निकाल बाहर किया जा रहा था। इसीलिए राज-नतिक दशपटल से पिताजी को बिलकुल ही हटा देने के निणय से, जो शेख अब्दुल्ला और जवाहरलाल जी दानो के ही विचार म एक सबसे बडी राजनैतिक अनिवायता थी, एक दिलचस्प सवधानिक गतिराध उत्पन्न हो गया था। ऐसी असाधारण परिस्थिति मे मैं तस्वीर मे बडी सफाई से फिट हो गया और सभी सबद्ध लोगा को अपना चेहरा छुपाने की कोई न कोई युक्ति उपलब्ध करा दी।

लेकिन हल कितना ही साफ क्यो न रहा हो, बात दरअसल यह थी कि काम तो वह तभी करेगा जब मैं उसके लिए राजी होऊ। और इस बात से उस इक्कीस स कुछ ही कम उम्र मे मेरे अब तक के छोटे किंतु उद्दीप्त राजनैतिक जीवन मे जिन अनेक द्विविधाओ का मुझे सामना करना पडा है उनमे सबसे कठिन द्विविधा को ला खडा किया। बाद मे अनेक अवसरो पर बाध्य होकर मुझे कठिन और महत्वपूर्ण निर्णय लेने पडे हैं, लेकिन यह निणय मेरी स्मृति म उन सभी से अत्य-धिक कष्टप्रद रहा है।

इस प्रकार मेरे सामने एक भयानक द्विविधा थी, कि स्वीकार करू या न करू । ऐसी परिस्थिति म मेरी अत प्रेरणा हुई कि प्रयत्न करके कुछ समय और प्राप्त कर लो और इस मैं एक वहुत ही सुदढ आधार लेकर करने के लिए अग्रसर हुआ । शेख अब्दुल्ला की सरकार भारत सरकार के साथ नई सवधानिक व्यवस्था के बारे म, जिसमे न केवल राज्य की अध्यक्षता, बल्कि और महत्त्वपूण बातें जसे नागरिकता, मूल अधिकार, सुप्रीम कोट वित्तीय समाकलन, ध्वज, राष्ट्रपति का प्राणदड स्थगित करने का अधिकार और अय सबद्ध विषय शामिल थे, ब्यौरे से मोल-तोल करने म लगी हुइ थी । जवाहरलाल जी ने इन मामला के सम्बध म 26 जुलाई, 1952 को मुझे लिखा जिसमे और बातो के साथ साथ उहोन कहा

'मुझे विश्वास है कि जो मैं लिख रहा हू उस तुम सराहोगे । मुझे तुम्ह यह बताने की जरूरत नही कि जब और आगे तुम दिमाग म रहोगे और तुम हमेशा सलाह या कोई और मदद के लिए जो मैं तुम्ह द सकता हू, मेर पास आ सकते हो । सबसे अच्छी सलाह तो यह है कि जो बदलाव सुझाए गए है उह खुशी और मर्जी स मजूर कर लो और इस तरह अपने को उनके अगले हिस्से मे रख लो, बजाय यह जाहिर करने के कि तुम किसी ऐसी बात के लिए बेमन से राजी हो गए हो जो तुम्ह नापसद थी । अगर हमे कोई बात करनी है तो उसे सलीके स करना चाहिए और इस तरह दूसरा का सदभाव और सम्मान प्राप्त करना चाहिए ।'

उत्तर म मुझे एक ऐसा तक सूझ गया जो मेरे विचार म बहुत अच्छा था । मैंने कहा

"इसके पहले कि मैं आगे बढू, मैं आपके प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहूगा जो पिछले लगभग तीन वर्षों से, जब से मैं रीजेंट बना, आप मेरे मामलो मे अनुग्रह और सहानुभूतिपूण रुचि ले रहे हैं । मुझे यह कहने की आव श्यकता नही कि मेरे लिए आपके मागदशन और सलाह का कितना अधिक मूल्य है ।

'जहा तक इस प्रश्न का सम्बध है कि सदरे रियासत के रूप म पाच साल के निर्वाचन सम्र का स्वीकार करू या न करू तो जब स करीब दस दिन पहले आपका ससद मे भाषण हुआ, तभी स मैं इस बात पर उसके सभी विभिन्न पहलुओ को लेकर अधिक से अधिक गहराई स विचार कर रहा हू ।

'मेरी सबस ऊची आकाक्षा तो यह है कि मैं अपने देश के लोगो की प्रभावी रूप स सेवा कर सकू और ऐसी किसी भी स्थिति का स्वभावतया मैं स्वागत

करूगा जो मुझे इसका अवसर प्रदान करेगी। लेकिन वर्तमान परिस्थितियो म, मैं यह महसूस करता हू कि मेरे लिए तब तक किसी निणय पर पहुचना सभव नही है जब तक सविधान सभा मे कश्मीर का नया सविधान अपने अतिम रूप म निकल कर नही आता और भारत सरकार का अनुमादन प्राप्त नही कर लेता। मुझे विश्वास है कि आप यह मानेंगे कि मेरे लिए एक ऐसे पद को स्वीकार करना, बिना ठीक ठीक और स्पष्ट रूप से यह जाने कि उसके साथ क्या कत्तव्य और काय सलग्न हैं, किन जिम्मेदारियो का भार मेरे कधो पर हागा, किन शर्तों और स्थितियो के अधीन मुझे काम करना होगा, मेरे लिए शायद सभव नही है।"

उसके शीघ्र बाद शेख अब्दुल्ला मेरे पास आए और जार दिया कि मुझे जल्दी इस बात का फैसला करना चाहिए कि सदरे रियासत बनना मुझे मजूर है या नही। मैंने जोर से अपने तक रखने चाहे लेकिन उन्होने यह कहकर उन्हें एक तरफ हटा दिया कि सविधान का मसौदा तैयार करने म काफी वक्त लगेगा और वे तब तक इतजार करने को तयार नही है। मैंने फिर जवाहरलाल जी को लिखा जिसमे मैंने उनके रवैये के खिलाफ अपना विरोध प्रकट किया। कुछ दिना बाद उन्होने एक तीन पृष्ठो के पत्र द्वारा 8 अगस्त को अपना उत्तर भेजा। मेरे तब तक इतजार करने के बारे मे जब तक सविधान का मसौदा न बन जाए, उन्होने लिखा

'मैं तुमसे बिलकुल सहमत हू कि सविधान के एक हिस्से को बनाने मे इस तरह की जल्दबाजी न तो बदस्तूर है और न आमतौर पर सही है। सही रास्ता तो यह होना है कि पूरा सविधान पास कर लिया जाता और फिर उसे अमल म लाया जाता। लेकिन जब कश्मीर का डेलीगेशन यहा आया तो इस बात पर हमने काफी विस्तार से चर्चा की थी और आखिर म हम जिन नतीजो पर पहुच उनको समझौते की मदो मे शामिल कर लिया गया था। अब उन पर फिर म लौटन और पुरानी दलीलो को ताजा करने से कोई मकसद हासिल नही होने का। काफी कुछ किया जा चुका है जो अब मौजूदा हालत म अनकिया नही हो सकता और ऐसा करने की कोई कोशिश, और पेचीदगिया पैदा करेगी। इसलिए हम सूरत हाल को, जसी है वसी ही स्वीकार करना होगा। कहने का मतलब यह है कि सविधान का एक हिस्सा जो सदरे रियासत से ताल्लुक रखता है और जिस रूप में उस पर समझौता हो चुका है, उसे पहले अपना लिया जाए।'

और अत मे उन्होने सलाह दी

'तुम्हारे इसे स्वीकार न करने का जो विकल्प होगा वह न केवल राज्य क

लिए खराब होगा बल्कि तुम्हारे लिए भी इस मौके पर फायदेमंद नहीं होगा। तुमने विदेश म तालीम हासिल करने की अपनी ख्वाहिश का जिक्र मुझसे किया था। इसम कोई शक नहीं कि एक या तो दो बरस बाहर रहना तुम्हारे लिए मुफीद होगा। लेकिन जिंदगी और उसके ममला के बारे म हम उनका सामना करके ज्यादा सीखत हैं, बनिस्बत महज भौगोलिक आबोहवा की तब्दीली से। तुम्हें पढने के लिए अपने मुभोत का काफी वक्त मिलेगा, ऐसी उम्मीद है। तुम्हें उसके प्रति आकर्षण भी है और इस तरह तुम अपने का राज्य म रहकर ही कई सरता म बेहतर तयार कर सकत हो बनिस्बत इसके कि विदेश जाओ। बाहर के कई देश आज महायद्ध क कोलाहल और उसकी तयारिया स भर हुए हैं और जाने लायक कोई बहुत दिलकश जगहें नहीं हैं, सिवाय थोड वक्त की सैर के लिए।

'इसलिए मैं यह महसूस करता हू कि तुम्हारे लिए यह ज्यादा मुनासिब होगा कि इस तजवीज को उसी तरीके से मजूर कर लो जैसा मैंने सुझाव दिया है और इस तरह खुद को ठीक अपने लोगा के साथ रख लो व कई तरह स उनकी पूरी खिदमत करो जो जाहिर न भी हो लेकिन फिर भी अहम हो। और फिर आखिर कार बाद के किसी लमहे पर भी, यदि मौके की ऐसी माग हुई तो तुम अपने मन की आजादी को बरकरार रखते हो।"

मैंने दिल्ली जाकर व्यक्तिगत रूप से चर्चा करने का फसला किया। जवाहर लाल जी ने हमेशा की तरह तीन मूर्ति भवन के अपने भव्य ड्राइग रूम मे बडे स्नेह के साथ मेरा स्वागत किया। तब व अपनी शक्ति के शिखर पर थे और उन्होंने बडी कोमलता से लेकिन बडे विश्वास के साथ बात की। उन्होंने मुझे समझाया कि क्या वे तथा उनक साथी इस बात के लिए उत्सुक थे कि मैं अपनी स्वीकृति दे दू। ऐसा प्रतीत होता है कि शेख के सवधानिक वार्ता दल ने, जिसम स्वय वे, मिर्जा अफजल बग, डी० पी० धर और एम०ए० शाहमीरी, उनके सवधानिक सलाहकार थ, कठोर स्थितिया अपनाई थी क्योंकि मैंने पहली बार शेख अब्दुल्ला के सम्बन्ध म कही गई जवाहरलाल जी की टिप्पणिया म थोडी-सी अप्रसन्नता का आभास लक्षित किया। यद्यपि उन्होंने इन शब्दो म नही कहा तो भी मुझे यह स्पष्ट सकेत मिला कि व दृश्य पटल पर मेरी उपस्थिति चाहते हैं ताकि यदि भविष्य म कोई कठिनाई उठ खडी हुई तो मेरी मदद ली जा सके। जब मैंने उन्ह जम्मू के मन के बारे म अपनी कठिनाइ समझाई तो व इस बात पर राजी हो गए कि मैं जम्मू के कुछ नताओ को परामर्श क लिए श्रीनगर आमत्रित करू। प्रजा परिषद के प्रति उनकी सर्वविदित आशकाओ को देखत हुए यह स्वय अपने आप म एक बडा परिवर्तन था और प्रदर्शित करता था कि वे मेरी कठिनाई समझते थे।

इस बार की यात्रा म तीन मूर्ति के लान पर जवाहरलाल जी द्वारा दी गई

एक चाय पार्टी मे मैं श्री०सी० राजगोपालाचारी से मिला जब मद्रास के मुख्य मत्री थे। कई बरस पहले, जब वे गवर्नर जनरल थे, मैं उनसे मिल चुका था। मैं उनके पास गया और उनका अभिवादन किया। मैंने कहा "आपको शायद मेरा स्मरण नही होगा, मैं कण सिह हू।" वे मेरी ओर घमे, मुझे देखा और फिर बोले, "हा हा मुझे बखूबी तुम्हारी याद है। तुम्हारी आखें इतनी सुदर हैं।" ऐसा प्राय नही होता कि मैं अपने को शब्दहीन पाऊ, लेकिन उस क्षण मैं एकदम निर्वाक रह गया। मैं मौलाना आज़ाद से भी मिलने गया, जो तहज़ीब और विद्वत्ता की जीती जागती तस्वीर थे और जिनके साथ बातचीत करना हमेशा हर्षदायी होता था।

श्रीनगर लौटने पर मैंने जम्मू के नेताओ से परामर्श करने की प्रक्रिया आरभ की, जिनमे प्रजा परिषद के अध्यक्ष पडित प्रेमनाथ डोगरा भी शामिल थे। बैठक के बाद उन्होने एक वक्तव्य जारी किया जिसमे उन्होने सपूर्ण अधिमिलन की माग को दोहराया और यह निष्कर्ष निकाला कि "जब तक राज्य का सविधान मूर्त रूप ग्रहण न कर ले, तब तक श्री युवराज बहादुर के सदरे रियासत के पद को स्वीकार करने के एक अकेले मुद्दे पर कोई निश्चित राय देना असामयिक होगा। वस्तुत वे मेरे स्वीकार करने के सख्त विरोध म थे, लेकिन तीन दिन की बातचीत म मैंने कम से कम उन्हें इस बीच की स्थिति म ला दिया था। इस दौरान मुझे मालूम हुआ कि पिताजी ने राष्ट्रपति को एक लबा ज्ञापन भेजा है और प्रेस म इस आशय की रिपोर्ट निकली थी कि उन्होने वश का बरकरार रखने या समाप्त करने के मुद्दे पर राज्य म जनमत सग्रह की माग की है

सितबर के शुरू मे मैंने जम्मू के नेताओ से अपनी बैठक की रिपोर्ट देते हुए जवाहरलाल जी को लिखा जिसमे मैंने उनके द्वारा व्यक्त वास्तविक शिकायतो और आशकाओ की ओर उनका ध्यान दिलाया। मैंने यह अनुरोध किया कि वरिष्ठ भारतीय नेता—विशेषकर मौलाना आज़ाद, डा० के० एन० काटजू जो तब गृह मत्री थे और गोपालस्वामी आयगर, कश्मीर मामला के मत्री, जम्मू के नेताओ से मिलें और सहानुभूतिपूर्वक उनकी बात सुनें। अत म मैंने पिताजी के ज्ञापन का जिक्र किया जिसकी रिपोर्ट अखबारो म छपी थी और, यद्यपि मैं जानता था कि जवाहरलाल जी खुश नही होंगे, तो भी अत प्रेरणा से मैंने अत इस तरह स किया

'मैं नही जानता कि इस सबध म आपके क्या विचार होंगे। यदि जनमत सग्रह सभव हो—और मैं नही समझता कि क्या ऐसा नही होना चाहिए—तो मैं महसूस करता हू कि यह अच्छी बात होगी, क्योकि इससे राज्य म लोगो को अपने निर्णय को व्यक्त करने के लिए एक पूरी तरह प्रजातात्रिक तरीका मिल जाएगा कि वे वश के किसी सदस्य का अपना सवैधानिक अध्यक्ष बनना पसद करेंगे अथवा अवधि अवधि पर किसी और को चुनना अधिक पसद करेंगे। इस प्रकार कोई भी

तबका अथवा दल यह महसूस नहीं करेगा कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने मे उसकी राय की अवहेलना की गई। मैं यह भी कह दू कि जम्मू और घाटी दोनो म जो सकेत मिले हैं उनसे मैं यह अनुभव करता हू कि इस प्रकार के जनमत सग्रह के परिणाम के सबध मे पहले से कोई निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता।'

जवाहरलाल जी ने दूसरे ही दिन उत्तर भेज दिया। यह स्वीकार करत हुए कि जम्मू के लोगा की भी अनेक शिकायतें हैं जिनमे से कुछ उचित भी होगी, उन्होने प्रजा परिषद को उनकी काय प्रणाली के सबध मे आडे हाथा लिया। ज्ञापन के सबध मे उन्होने लिखा "मैंने वह लबा ज्ञापन देखा जो तुम्हारे पिताजी ने राष्ट्रपति को भेजा है। उसम जनमत सग्रह का कोई जिक्र नहीं है। ज्ञापन तो एक गुस्से और तरफदारी से भरा दस्तावेज है। लगता है कि तुम्हारे पिताजी को यह बिल्कुल अदाज नहीं हो रहा कि दुनिया बदल गई है और बहुत तेजी से बदलती जा रही है।'

इसके बाद उन्होने मेरे जनमत सग्रह के जिक्र के बारे म अपनी टिप्पणी देते हुए पत्र समाप्त किया। उन्होने लिखा "तुम्हारे जनमत सग्रह का जिक्र करने पर मुझे थोडा आश्चय हुआ। न तो स्थानीय और न अतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही यह किसी भी तरह मुमकिन है। हम दूसरे मुद्दा के ऊपर रायशुमारी की बात करत रहे हैं लेकिन वह भी नहीं हो सकती क्योकि कोई समझौता नहीं हो पाया है। यदि इस सीमित मुद्दे पर जनमतसग्रह के सवाल को उठाया जाता है तो फौरन तरह-तरह की अतर्राष्ट्रीय पेचीदगिया पदा हागी और एक विस्तत क्षेत्र म तुरत रायशुमारी की माग उठेगी। कहा जाएगा कि यह जनमतसग्रह भी, अगर हो तो विस्तृत क्षेत्र म होना चाहिए जिसम पाकिस्तान द्वारा अधिकृत क्षेत्र भी शामिल हो। राज्य की वतमान सीमाओ मे, जो हमारे नियत्रण मे हैं जनमत सग्रह का मुद्दा स्वभावतया कडुवाहट और झगडे पदा करेगा और आखिरी नतीजा जो भी हो उसका असर यह हो सकता है कि राज्य के टुकडे हो जाए। वस्तुत मैं यह सोचता हू कि ऐसा प्रस्ताव मौजूदा परिस्थितिया मे बिल्कुल बेमानी है। पाकिस्तान बेशक इससे फायदा उठाएगा, कोई और नहीं।

लगभग इसी समय पूर्वी लद्दाख म चुशूल म नवनिर्मित हवाई अडडे को जात समय मुझे जवाहरलाल की ममता का एक नाटकीय अनुभव हुआ। वह समुद्री सतह से 14,270 फीट की ऊचाइ पर स्थित विश्व का सबसे ऊचा हवाई अड्डा माना जाता था। हवाई जहाज म इन्दिरा गाधी, शेख अब्दुल्ला और अन्य बहुत लोग थे और हवाई जहाज उत्कृष्ट उडाका एयर मार्शल मेहर सिंह चला रहे थे। हम एक डी सी 3 म 20,000 फीट की ऊचाई पर उड रहे थे और रास्त भर

अधिकतर आक्सीजन मास्क पहने रहे। ऊपर से विशाल हिमालय का दृश्य भव्य था और पर्वत ऐसे लग रहे थे जैसे किसी महासागर मे अनंत बर्फ जमकर सभी दिशाओ मे फैली हो। शानदार और एकाकी, विश्व के उच्चतम शिखरो मे से एक, हिममंडित नंगा पर्वत का दृश्य भुलाए नही भूलता। चुशूल मे उतरने के ठीक पहले हम एक विशाल फीरोजी नीली झील पर से उडे और जब नीचे उतरे तो मुझे दृष्टि विरूपण का एक अजीब सा अनुभव हुआ। रनवे के पास पर्वत इतने नजदीक दिखलाई पडे कि इंदिरा गांधी उन तक पैदल जाना चाहती थी। लेकिन जब हम यह बताया गया कि वे कम से कम दस मील दूर हैं तो हमे बडा ताज्जुब हुआ। उस झीनी हवा मे पदार्थ वास्तव मे जितनी दूर थे उससे कही अधिक नजदीक जान पडते थे। हम हवाई अड्डे पर करीब नब्बे मिनट रुके तब तक जवाहरलाल जी वायु सेना के अफसरो से गप शप करते रहे। जहा तक निगाह जाती थी वहा तक कोई बस्ती या पेड पौधा नजर नही आता था और धरती ऐसे नग्न सौंदर्य से परिपूर्ण थी कि लगता था मानो पृथ्वी नही, किसी और ग्रह की धरती हो।

चुशूल की इस हवाई यात्रा ने मेरी लद्दाख की अपने तई यात्रा करने की इच्छा को और बलवती बना दिया और उसके शीघ्र बाद ही मैंने 36,000 वर्ग मील मे उस सुदूर स्थित क्षेत्र की यात्रा करने का फैसला किया जिसे महाराजा गुलाब सिंह के गुजरे हुए जमाने मे जनरल जोरावर सिंह और उनकी शूरवीर फौज ने राज्य मे मिलाया था। राज्य के पूरे क्षेत्र का, जो अब हमारे कब्जे मे रह गया था, यह दो तिहाई भाग था। हमारे परिवार का कोई सदस्य कभी लद्दाख नही गया था, जिसका प्रशासन डोगरा शासन काल मे एक वजीर वजारत (डिप्टी कमिश्नर के समकक्ष) चलाता था। 1947 मे यह पाकिस्तानी आक्रमणकारियो के हाथो मे पडने से बाल-बाल बच गया था और जवाहरलाल जी की विदेश नीति की कम सफल कवायदो मे से एक के परिणामस्वरूप तिब्बत के चीनी शासन मे चले जाने के बाद लामाई बौद्धो का यह सबसे बडा अन्य क्षेत्र रह गया है।

आशा और मैं जब लेह मे उतरे तो हमारा भव्य स्वागत हुआ। पूरा शहर का शहर और आसपास के गावो के लोग हमारा स्वागत करने उमड पडे जिनका नेतृत्व प्रमुख लामा कुशक बाकुला कर रहे थे। हवाई जहाज से बाहर आना एक दूसरी मित्रतापूर्ण दुनिया मे कदम रखने जैसा था—गहरा नीला आकाश साफ, झीनी हवा, अपने परंपरागत लबादे पहने लद्दाखी लोग और भड़कीले फीरोजी गिरावस्त्रो मे महिलाए। हम लेह मे तीन दिन रहे जिस अवधि मे हम प्रमुख बौद्ध गुफाओ मे गए और वहा हमने भेंटें चढाई और प्रार्थना की। बुद्ध और बोधिसत्वो की कुछ मूर्तिया इतनी सुंदर थी कि देखकर हम अवाक रह जाते थे और लामाओ के आश्रम नए रंगे हुए लकडी के फर्नीचर से तथा दीवारो पर टंगे बेशकीमती

चित्रपट्टियों से, जिन्हें "थगका" कहा जाता है, सुसज्जित थे, जिनमें बौद्ध देवी देवताओं को चित्रित किया गया था। कांसे के बने सैकड़ों कटोरों में तेल भरकर बत्तियां जलाई गई थीं जिनसे प्रतिमाओं को एक सुकोमल, धीमी आभा प्राप्त होती थी और लामाओं के गहरे स्वर में अनवरत मन्त्रोच्चार के साथ मिलकर मन पर इसका एक विचित्र मोहिनी प्रभाव पड़ता था। विशेष रूप से मुझे शाय गुम्पा में खोखली धातु की बनी बुद्ध की मूर्ति का स्मरण है जो तीन मंजिल ऊंचा था और इतना विशाल था कि पहले के जमाने में उसे पूरे लेह शहर के लिए अनाज के भंडार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था।

हम अपने साथ बांटने के लिए कई हजार गज कपड़ा ले गए थे जिससे हर लद्दाख-वासी को एक कोट के लिए काफी कपड़ा मिल सके। दूर दराज के गांवों में भी लोगों ने डोगरा शासक परिवार की भेंट जानकर इन टुकड़ों को बड़ी श्रद्धा और स्नेह के साथ ग्रहण किया, यह जानकर हृदय छू गया। यह स्पष्ट था कि काल ने कटुता के रहे सहे चिह्न को भी मिटा दिया और उसके स्थान पर लद्दाखियों के मन में हमारे परिवार के प्रति वास्तविक आदर की भावना भर दी थी। हम बहुत से रंग बिरंगे उपहार मिले जिनमें एक लद्दाखी पोशाक भी थी, जिसे पहनाकर मेरी तस्वीर खींची गई। कई सालों बाद जब मैं इन लामा आश्रमों में फिर से गया तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि करीब-करीब सभी में मेरी यह तस्वीर मौजूद थी। आशा को लद्दाखी महिलाओं द्वारा बालों में पहने गए फीरोजा जड़े आभूषण बहुत अच्छे लगे। लेह से हम लद्दाख के दूसरे शहर कारगिल गए जो शिया मुसलमानों का केन्द्र है। युद्धबन्दी रेखा कारगिल के बहुत पास से गुजरती थी और सेना की मौजूदगी यहां ज्यादा जाहिर हो रही थी। ब्रिगेड का प्रधान कार्यालय जहां हम ठहरे थे सिंधु के तट पर स्थित था। मुझे अजीब सा लगा कि यद्यपि हमारे देश का और यहां के प्रमुख धर्म का नाम ही सिंधु से निकला है तो भी भारतीय सीमा के भीतर केवल एक ही स्थान पर जब यह नदी बहती है और वह लद्दाख है।

लद्दाख में अपने निवास के दौरान मेरी कुशक बाकुला तथा उनके साथियों से कुछ गम्भीर चर्चाएं भी हुईं। जम्मू से भी ज्यादा लद्दाख के लोग शेख के प्रशासन में अपने को अनस्थिर और असुरक्षित महसूस कर रहे थे। चूंकि उनका सांस्कृतिक जीवन भिन्न था इसलिए उन्हें लग रहा था कि नए विधान में उनकी स्थिति जिसमें राज्य की विधान सभा में जनसंख्या के आधार पर उनके केवल दो ही सदस्य थे अत्यन्त नगण्य थी और उन्हें पूरी तरह कश्मीरियों का आश्रित बना दिया गया था। उन्होंने सुझाव दिया कि एक सांविधिक सलाहकार समिति बनाई जानी चाहिए और राज्य विधान सभा के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि लद्दाख को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करने वाले सभी विधान कार्य के बारे में

पहले उससे राय ली जाए। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि उन्हें शेख की सरकार के रहम पर छोड देने की बजाय केन्द्र से एक प्रशासक भेजना चाहिए।

श्रीनगर मे लौटने पर मैंने जवाहरलाल जी को लिखा और साथ में लद्दाख के बारे में अपनी प्रतिक्रियाओं पर एक टिप्पणी सलग्न करते हुए स्थिति को सुधारने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते है, इस सम्बन्ध में अपने सुझाव दिए। इस विषय में जल्दी कार्य करने का अनुरोध करते हुए मैंने सकेत किया कि, "लद्दाख सामरिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है, सपूर्ण भारत के लिए राज्य की अपेक्षा कही ज्यादा, और यह दुख की बात होगी कि सहानुभूतिपूर्ण रवये के अभाव में लद्दाख के लोग अप्रसन्न और असतुष्ट बने रहे और इस तरह आसानी से साप्रदायिकता और साम्यवाद दोनो के हर प्रकार के शोषण के शिकार बनें।" सदैव की भाति जवाहरलाल जी ने एक सप्ताह के भीतर उत्तर दिया। उन्होने कहा कि 'लद्दाख की असली मुश्किल उसका बेहद आर्थिक पिछडापन है,' और पत्र का अत करते करते हुए यह टिप्पणी दी, "हम कूलू घाटी से लेह तक एक सडक बनाना चाहेगे, लेकिन यह एक बडा खर्चीला काम है और इस वक्त इसे हाथ में लेना मुश्किल है। उस सडक से लद्दाख के खनिज पदार्थों को निकासी मिल जाएगी और उस क्षेत्र में थोडी बहुत समृद्धि आएगी।"

मेरा यह अनुभव रहा है कि बाह्य सक्रांति की प्रायः एक आतरिक प्रतिक्रिया होती है, जो घटनाओं की प्रत्यक्ष प्रवृत्ति से बिल्कुल असबद्ध सी जान पडती है। जब ये सारी राजनैतिक घटनाएं घटित हो रही थी, आतरिक विकास की एक प्रक्रिया भी चल रही थी। इस अवसर पर मेरे मन में आध्यात्मिक विचारो के प्रति तीव्र अनुराग विकसित होने लगा। एडविन अर्नाल्ड की बुद्ध के जीवन और शिक्षाओं पर लिखी गई महान कविता "द लाइट आफ एशिया' का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पडा। लगभग इसी समय मे डचिगाम गया और वृक्ष पर फल खाते हुए एक रीछ को मैंने गोली मारी। वह भूमि पर गिर पडा और बच्चे की तरह करुणा भरे स्वर मे चिल्लाते हुए बहुत देर तक, जब तक उसके प्राण पखेरू उड नही गए वहा पडा रहा। उसकी वह चिल्लाहट मेरे कानो मे हफ्ता तक गूजती रही और परिणामस्वरूप मैंने शिकार और मछली मारना त्याग देने का निश्चय किया। बचपन से ही इन क्रीडाओं के साथ मेरा सम्बन्ध होने के बावजूद, उसके बाद से फिर कभी मैंने इनमें से किसी को भी हाथ नही लगाया। स्पष्टतया इसी प्रभाव से प्रभावित होकर मैंने निजी रूप से। जनवरी, 1952 को एक टिप्पणी लिखकर उस पर हस्ताक्षर किए, जिसमे मैंने लिखा कि मेरा सर्वोपरि उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञानोदय और शांति प्राप्त करना और सारे विश्व में इस सदेश का सफलतापूर्वक प्रसारित करना है ताकि इस विश्व को, जो घृणा, ईर्ष्या, क्रूरता और कटुता के राग पर चलता हुआ अधकार और भयकर विनाश के गर्त में गिरने के बस कगार

गिरता चला जा रहा है, उसे शांति, सुख, स्नेह और सार्वभौम समृद्धि के चौड़े और और साफ सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित पथ पर ला खड़ा किया जाए।" मैंने जब इसे लिखा था, उस समय इक्कीस से कुछ ही कम था, और यद्यपि यह प्रेरणा अब भी मेरे मन में बनी हुई है, तो भी जैसे-जैसे वर्ष गुजरते गए, मुझे यह अनुभव होने लगा कि दुनिया को बचाना उतना आसान काम नहीं है जितना उस समय लगता रहा होगा।

इस बीच मेरा परीक्षाफल घोषित हो चुका था। मैं बी० ए० में उत्तीर्ण हो गया था (प्रथम श्रेणी केवल छह अंकों से रह गई थी) और इस प्रकार शायद विश्व के इतिहास में मैं पहला चांसलर था जो अपनी ही यूनिवर्सिटी से स्नातक बना हो। उस वर्ष प्रख्यात दार्शनिक राजनेता डा० राधाकृष्णन दीक्षांत भाषण देने के लिए आए। मैं उनकी रचनाओं का और जिस प्रभावोत्पादक ढंग से वे अपने विचारों को स्फूर्तिदायक, संक्षिप्त और व्यंजक वाक्यों में अभिव्यक्त करते थे और बीच-बीच में संस्कृत शास्त्रों से उद्धरण देते थे उसका बड़ा प्रशंसक रहा हूं। वस्तुतः मैंने अपनी सार्वजनिक भाषण शैली को उन्हीं की शैली पर ढालने का निश्चय किया। उस साल उन्होंने दीक्षांत समारोह में, जो झेलम पर स्थित पुराने सिटी पैलेस के बगीचे में भव्य चिनार के पेड़ों तले हुआ था बिना तैयारी के एक शानदार भाषण दिया जिसका वातावरण किसी आडिटोरियम की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली था। चांसलर की हैसियत से उस वर्ष के स्नातकों को प्रमाण पत्र देना मेरा काम था, किंतु यह स्पष्ट था कि मैं स्वयं अपने को प्रमाण पत्र नहीं दे सकता था। इसलिए जब और प्रमाण पत्र दिए जा चुके, तब मैं नीचे उतर आया और डा० राधाकृष्णन के हाथों में अपना प्रमाण पत्र ग्रहण किया।

इस अवधि में जो अनेक पुस्तकें मैंने पढ़ीं उनमें से एक विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि उसने दो ऐसे व्यक्तियों से मेरा परिचय कराया जिनका आगे आने वाले वर्षों में मेरे आंतरिक जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ने को था। "एमंग द ग्रेट" दिलीपकुमार राय की पांच उत्कृष्ट विश्वविचारकों से हुई भेंटों और साक्षात्कारों का लेखा-जोखा है। वे विचारक थे—बर्ट्रेंड रसेल, रोमां रोलां, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और श्री अरविंद। श्री अरविंद पर जो लेख था, वह विशेष रूप से रोचक था, और यद्यपि मैं व्यक्तिगत रूप में उनसे कभी नहीं मिला, तो भी आध्यात्मिकता से परिपूर्ण मानव चेतना की उनकी भव्य संकल्पना के प्रति मेरा आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस लेख में रोनाल्ड निक्सन नामक एक अंग्रेज का उल्लेख किया गया था जो श्री कृष्ण प्रेम नाम धारण करके एक वैष्णव संन्यासी बन गया था। अंत में जाकर यह मुझे एक ऐसे व्यक्ति के चरणों में ले गया जो अब तक जितने व्यक्तियों से मुझे मिलने का सौभाग्य मिला है उन सबसे विलक्षण था। इस प्रकार मैं दिलीप दा का और

नियति का दोहरा ऋणी हू कि मेरे जीवन के एक नगीन मोके पर उनकी पुस्तक मेरे हाथ मे पडी। श्री अरविंद और श्री कृष्ण प्रेम आतरिक खोज के लिए दो माग दशक सितारे बन गए, जिसकी परिणति चिरतन मुरली मनोहर के स्वर्णिम स्वरो मे हुई।

सवैधानिक परिवतनो का प्रश्न अदम्य रूप से आगे बढता चला। पिताजी राज्यो के मत्रालय से लम्बा पत्राचार करते रहे लेकिन उनके और भारत सरकार के दृष्टिकोणा मे इतना वषम्य था कि यह कवायद निरर्थक थी। पिताजी अपने अधिकारो और समय समय पर उनको निष्ठापूवक दिए गए वायदो पर जोर देत रहे जबकि राज्यों के मत्री, डा० के० एन० काटजू राज्य की परिवर्तित परिस्थितिया और अतर्राष्ट्रीय राजनीति के व्यापक दबावा की बात दोहराते रहे। राज्या के मत्रालय के सचिव सी० एस० वेंकटाचार सितम्बर म पूना म पिताजी से मिलने गए जिसके बाद पिताजी ने डा० काटजू को सताप से भरा एक पत्र लिखा। राष्ट्रपति को भेजे गए अपने ज्ञापन का हवाला देते हुए उन्होंने मेरे अधिकारो और उनकी रक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा किए गए वायदो की निरतर अवहेलना से उत्पन्न सकटो की याद दिलाई, 'जिसमे मेरी स्थिति कम जोर पड गई और मुझे सतानेवाला को अनुचित लाभ मिल गया। उन्होंने आग लिखा, "मैं आपसे पूछना हू कि क्या मुझे इतना भी हक नही कि आप मुझे यह बताए कि या तो मैं गलत हू या कि भारत सरकार शेख अब्दुल्ला की बताई गई किसी नीति को अमल मे लाने के लिए वचनबद्ध है चाह उसका अथ मरा मेर वश का और न्याय तथा नतिकता के कुछ पोषित सिद्धाता का बलिदान ही क्या न हो? क्या एक ऐसे व्यक्ति के प्राथमिक अधिकार भी मैंन खो दिए जो अपने को पीडित महसूस करता हो और न्याय की माग कर रहा हो?" यूनान की किसी दु खान्त कहानी की भाति पिताजी को यह जान पडा कि परिस्थितिया अदम्य रूप स उनके विपरीत आगे बढती जा रही हैं। राज परित्याग के लिए उनके ऊपर बहुत अधिक दबाव पड रहा था, लेकिन उन्होंने दृढतापूवक ऐसा करने से इकार कर दिया। अन्त म उनकी प्रिवी पस और विशेषाधिकारो स सम्बन्धित कुछ मोटी मोटी बातों पर चर्चा की गई और कुछ अस्थायी व्यवस्था निश्चित की गई। इस विषय म निणय का राय रखने के मेरे अपने प्रयत्न भी अब टूटने को आ गए थ, और मेरी यह आशा कि भारत सरकार और पिताजी के बीच समझौता का कोई हल निकाल लिया जाएगा और इस प्रकार मेर आग के काय के लिए रास्ता साफ हो जाएगा, प्रवचना ही सिद्ध हुई। सत्य का क्षण तजी स समीप आ रहा था और मुझे लगा कि शीघ्र ही अब मुझे अपनी जिम्मदारी पर कोई निणय लेना होगा और जो भी परिणाम आगे आए उनका सामना करने क लिए तयार होना होगा।

मेरे लिए कोई नरम विकल्प नहीं थे और मुझे यह स्पष्ट होता जा रहा था कि मुझे दो म से कोई एक रास्ता चुनना होगा—या तो सार्वजनिक जीवन से मैं बिल्कुल बाहर निकल आऊं और उन भूतपूर्व नरेशों की कतार में शामिल हो जाऊं जिन्होंने बम्बई के रेस क्लबों को अपना लिया है या फिर संघर्ष के बीच बने रह कर लडाई जारी रखूं चाहे उसका अथ अन्तिम पराजय ही हो। यह दो व्यक्तियों की सलाह और उनके प्रभाव के बीच का विकल्प भी था, दोनों ही का व्यक्तित्व शक्तिशाली था दोनों ही मन शक्ति सम्पन्न।

30 अक्टूबर 1952 को जवाहरलाल जी ने मुझे एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने कहा कि राज्य के अध्यक्ष के सम्बन्ध में शेख अब्दुल्ला से लम्बी बातचीत आखिर में इस समझौते के साथ समाप्त हो गई है कि राष्ट्रपति को सविधान के अनुच्छेद 370 के अधीन कार्यवाही करनी चाहिए और इस पद के सम्बन्ध में वहां दी गई व्याख्या को बदल देना चाहिए, कि मामले को अब और अधिक लटकाए रखना वांछनीय नहीं है, और यह कि नवम्बर के मध्य के आसपास आवश्यक कदम उठाए जाएंगे। 'मुझे उम्मीद है कि जिन कदमों का हमने सुझाव दिया है उनसे तुम इत्तिफाक करोगे,' उन्होंने लिखा। यही एक रास्ता है जो अब हमारे लिए खुला है और उस अख्तियार करने में हमें हिचकना नहीं चाहिए। कोई भी दूसरा रास्ता या टालने की कोशिश मुश्किल और जहमत ही पैदा करेगी।' अर्थ गर्भित रूप से उन्होंने आगे लिखा, "मुझे अफसोस है कि तुम्हारे पिताजी, महाराजा बहुत सहयोगी साबित नहीं हुए। हमने उन्हें बातों को समझाने की और उनकी मदद करने की जहां तक मुमकिन था कोशिश की। लेकिन ऐसा मालूम होता है कि दुनिया में जो तब्दीलियां हो चुकी हैं या हो रही हैं उनसे वे बिल्कुल बेखबर हैं और कुछ ऐसी दलीलें पेश करते हैं जो आज लागू ही नहीं होतीं।"

यह पत्र इधर आया और उधर डा० काटजू को मैंने एक पत्र लिखा। जिसमें मैंने 'सदरे रियासत' (नए सविधान में राज्य के अध्यक्ष के पद के लिए दिया गया नाम) के प्रस्तावित पद की स्थिति और कार्यों के सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण मांगे। इसकी एक प्रति मैंने जवाहरलाल जी को भेजी। यह कश्मीर के मामले में उनकी गहरी दिलचस्पी का परिचायक है कि उन्होंने मेरे पत्र का तुरन्त उत्तर भेजा, डा० काटजू के जवाब देने से भी पहले। मेरे द्वारा उठाए गए बिन्दुओं के विषय में संक्षेप में लिखने के बाद उन्होंने निष्कर्ष निकाला, 'अगर तुम्हें एक नया रिश्ता शुरू करना है तो यह हर मुमकिन माकूल रवये के तहत और भाईचारे के साथ होना चाहिए। यह किसी और चीज़ की बनिस्बत ज्यादा मजबूत गारंटी होगी।' दो दिन बाद डा० काटजू ने भी विभिन्न बिन्दुओं के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए उत्तर भेजा जिसमें प्रिवी पर्स (28 लाख से घटाकर 10 लाख कर दी गई और पिताजी, मां और मेरे बीच बांटी गई), सदरे रियासत की परि

लब्धिया, ध्वज, पद की अवधि इत्यादि इत्यादि बातें शामिल थी।

अन्तिम रूप से छलाग लगाने से पहले मैंने तय किया कि एक बार और दिल्ली हो आऊ। सदा की भाति वहा मैं जवाहरलाल जी से मिलने गया। वे मेरी कठिनाई से गहराई से परिचित थे और मेरे निणय के राष्ट्रीय प्रभावो के सम्बन्ध में उन्होने मुझे विस्तार से बताया और किस प्रकार एक व्यक्ति को सगीन मौको पर दबावो और हिचकिचाहटो की परवाह किए बिना स्पष्ट निणय लेना होता है। उन्होंने अपनी उस थोडी उलझन की बात को दोहराया जो शेख अब्दुल्ला के साथ व्यवहार करने मे उन्हे महसूस होने लगी थी, और कहा कि इससे यह और भी जरूरी हो जाता है कि दृश्य पटल पर मैं मौजूद रहू ताकि भविष्य म यदि कोई समस्या उठ खडी हुई तो मैं मदद कर सकू। इस अन्तिम बात ने, जहा तक मेरा सम्बन्ध था, मामला तय कर दिया। तीन मूर्ति स जब मैं चला तो स्वीकार करने का निर्णय अपने मन म कर चुका था।

मैं 12 नवम्बर के आसपास श्रीनगर लौटा। 15 को सविधान सभा की बैठक हुई जिसमे मुझे पाच वर्ष की अवधि के लिए सदरे रियासत चुन लिया गया। मैं कुछ ही महीनो पहले इक्कीस का पूरा हुआ था, इसलिए राज्य के अध्यक्ष के लिए सामान्य सवैधानिक आयु की सीमा को 35 स घटाकर 21 वष कर दिया गया था। जवाहरलाल जी न मुझे एक अध औपचारिक पत्र लिखा जो इस प्रकार था

"प्रिय युवराज,

मैं तुम्हारे सदरे रियासत चुने जाने पर उस ऊचे सम्मान के लिए जो जम्मू और कश्मीर राज्य के लोगो न तुम्हे दिया है, बधाई देना चाहता हू। मैं राज्य के लोगो को भी उनकी अक्लमन्दी के लिए मुबारकबाद देना चाहता हू। यह तुम्हारे ऊपर एक बडी जिम्मेदारी डाल देती है, क्योकि न सिर्फ तुम्हें एक स्थापित परम्परा का पालन करना है, बल्कि भविष्य के लिए नई परम्पराओ को बनाने म भी मदद देनी है। तुम्हें यह मालूम है कि राज्य का भविष्य मुझे किस कदर प्रिय है। यह मुझे इसलिए प्रिय है कि मेरा अपना रिश्ता कश्मीर के साथ बहुत नजदीक का है और यह मुझे इसलिए भी प्रिय है कि बहुत से बधन राज्य को भारत स जोडते हैं। हमारा भविष्य साथ जुडा हुआ है और हम सौभाग्य का और दुर्भाग्य का साथ मिलकर सामना करना है।

जम्मू और कश्मीर राज्य मे एक नया अध्याय शुरू होता है। और फिर भी हालाकि वह नया है, तो भी यह पुराने का ही सिलसिला है, लेकिन दूसरे रूप में। जिन्दगी की तरतीबें चाहे वह एक व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र दोनो ही हैं एक सिलसिला भी और बराबर तब्दीली भी।

मैं तहेदिल से उम्मीद करता हू कि जम्मू और कश्मीर राज्य के संविधान में जो तब्दीलिया की गई हैं वे राज्य के लोगो के लिए और ज्यादा खुशहाली और खुशिया पैदा करेंगी और उन्हें भारत के, जिसके वे इतने नजदीकी हिस्सा रहे हैं, और करीब लाएगी।

तुम्हें जिसको इतनी कम उम्र में ही इस बोझ और जिम्मेदारी को अपने कधों पर झेलना होगा, मैं अपनी शुभ कामनाए और प्यार भेजता हू।

तुम्हारा,
जवाहरलाल नेहरू"

अपनी विशेषता के अनुरूप उन्होने एक छोटी टिप्पणी सलग्न की

"प्रिय टाइगर,

मैं तुम्हें अलग से बधाइ और शुभकामना का एक अध औपचारिक पत्र भेज रहा हू। मुझे यह ठीक मालूम नही था कि इस प्रकार के पत्र को कैसे सबोधित करना चाहिए। तुम यह जानते हो कि मैं तुम्हारे बारे मे अक्सर सोचा करूगा और जो भी मदद और मार्गदर्शन मैं दे सकता हू, उसके लिए तुम हमेशा मुझ पर भरोसा कर सकते हो।

तुम्हारा,
जवाहरलाल नेहरू"

सोलहवी की रात को आशा और मैंने बैठे-बठे भोर कर दी। मैं जानता था कि मैंने सामती व्यवस्था से अपने नाते हमेशा के लिए तोड लिए हैं और यह भी कि ऊपरी तौर से हमारे सबध चाहे जितने स्नेहपूर्ण दिखलाई पड़े, पिताजी इस नए पद को स्वीकार करने के लिए मुझे आसानी से माफ नही करेंगे। मैंने यह महसूस किया कि शेख हमारे वश का जानी दुश्मन है और उसे स्वीकार करके एक तरह से मैं अपने को उसके रहमो-करम पर छोड रहा हू। मैं यह भी जानता था कि मेरी अपनी बिरादरी मे, जम्मू के डोगरा मे, इसकी प्रतिक्रिया कम से कम शुरू मे, विपरीत होगी। और फिर भी मे अपने मन मे आश्वस्त था कि पुरानी व्यवस्था अब गुजर चुकी है और फिर कभी लौटने की नहीं, कि भविष्य के गर्भ मे जो भी हो, यदि मैंने अपने भाग्य को जवाहरलाल नेहरू और नए भारत के साथ नही मिलाया, जिसका सृजन करने के लिए उन्होंने इतना कुछ किया और जिसका मार्गदर्शन वे इतने साहस और दूरदर्शिता से कर रहे थे, तो मेरे और मेरे लोगो के लिए कोई भविष्य नहीं रह जाएगा। एक ओर जहा मैं पुरानी सामती परम्परा से अपने को काटकर जुदा कर रहा था, वहा मैं यह महसूस कर रहा था कि नई

चुनौती को स्वीकार करके मैं एक ऐसे राष्ट्र के भविष्य का निर्माण करने और उसे स्वरूप देने के अधिक व्यापक साहसिक काय म सम्मिलित हो रहा था जो मानव जाति के सातवें हिस्से का प्रतिनिधित्व करता है। पासा फेंका जा चुका था और अगले दिन मैं अपनी जिंदगी और भाग्य की एक नई मजिल पर कदम रखूगा।

अगली सुबह, 17 नवम्बर, 1952 को मैं झेलम पर स्थित पुराने राजगढ पलेस मोटर पर गया जो तब तक पिछले नरेशो का निवास-स्थान रहा, जब तक पिताजी उठकर डलझील नही चले आए। दरबार हाल का, जिसकी भव्य छत पेपियर मेशी की बनी थी और जो पुरानी व्यवस्था का उत्कृष्ट प्रतीक था, सविधान सभा के लिए विधान सदन मे बदल दिया गया था। जहा पहले सभी दरबारी कालीन पर बठते थे और केवल पिताजी अपने स्वण सिंहासन पर बठते थे, वहा अब बर्चे बना दी गई थी और स्पीकर इस खूबसूरत हाल के दूसरे छोर पर बने चबूतरे पर बैठे। प्रवेश द्वार पर शेख अब्दुल्ला, बख्शी गुलाम मोहम्मद और स्पीकर जी० एम० सादिक ने मेरा स्वागत किया और उसके बाद मुझे उसी चबूतरे पर ले जाया गया। जैसे ही मैंने हाल म प्रवेश किया, सविधान सभा क जो सदस्य वहा जमा हुए थे, उन्होने खूब जोर स तालिया बजाइ। मैं एक साथ ही प्राचीन व्यवस्था का अंतिम प्रतिनिधि था जो लोगो की रजामन्दी स नई व्यवस्था का प्रथम सेवक बन रहा था।

जब मैंने मच पर अपना आसन ग्रहण कर लिया, जहा मेरे दोना ओर शेख और उनके सहयोगी बठे, तब चीफ जस्टिस वजीर जानकी नाथ खडे हुए और उन्होंने पद की शपथ दिलाई जिस मैंने उनके बाद दोहराया। तब मैंन एक सक्षिप्त भाषण पढा जिस पर मैंने कई दिन काम किया था। उसमे और बातो के साथ मैंने कहा

"मुझे इसका एहसास है कि एकता के केन्द्र के रूप म सदरे रियासत के काम महत्वपूण भी हैं और जिम्मेदारी से भरे हुए भी। विशेषकर ऐसे राज्य म, जहां परिस्थितिया असाधारण रही हो, जसी कि यहा थी यह और भी सच हो जाता है। मैं यह स्वीकार करता हू कि इस पद के साथ जो जिम्मेदारिया सलग्न हैं, उन्हें ग्रहण करने मे मुझे थोडा सकोच हो रहा था, यह जानते हुए कि इस पद को भरने के लिए योग्यता और अनुभव दोना ही मे मुझसे कहीं अधिक उपयुक्त बहुत से लोग होंगे। लेकिन अब जो आस्था और विश्वास मुझम रखा गया है उसने मुझे इन कई जिम्मेदारियो को स्वीकार करने के लिए आशा और साहस प्रदान किया है और मैं विश्वास दिला सकता हू कि मेरे पास जो भी गुण और क्षमताए हैं, व राज्य और उसके लोगो की सेवा म पूरी तरह अर्पित रहेंगे।

'हमारा राज्य, जसा कि मैंने कहा है, बहुत ही असाधारण समय म गुजर

रहा है और पिछले कुछ वर्षों म असामान्य तनावो और दवावो का शिकार बना रहा है। हमारे सुन्दर देश पर जा निदय और क्रूर हमला हुआ उसके परिणाम स्वरूप अकथनीय क्लेश और दु ख उठाने पडे। सैकडो कत्ल हुए, हजारो बेघर होकर आतक और दुर्भाग्य की विभीषिका मे जा गिरे। हमारी भूमि के लम्ब और उतार चढाव भरे इतिहास म यह सभवत सबसे भीषण सक्राति थी, जिसका हमारे लोगा को सामना और उससे सघप करना पडा। यह उनकी और उनके नेताओ की तारीफ है, कि व मौके के मुकाबिले के लिए उठ खडे हुए और परिस्थिति का सामना धीरज और साहस के साथ किया। इस वीरतापूण प्रयत्न से अकेले कोई मतलब नही निकलता यदि, एक तो हमारी फौजो ने, अलग पड जाने और दुश्मन की फौजो की सख्या उनसे बहुत अधिक होने क बावजूद, बहादुरी के साथ मुकाबिला न किया होता, और दूसर सख्त जरूरत की घडी मे भारत ने समय पर शीघ्र सहायता न भेजी होती।'

मैंने निम्नलिखित शब्दो से अपना वक्तव्य समाप्त किया

"हमारा राज्य इन सब महत्वपूण मुद्दा का सामना करने की स्थिति मे हमारे लोगा की सम्मिलित शक्ति के बल पर ही हो सकता है। रग और खूबसूरती स भरी इस जमीन म विभिन्न मतो और पथो को मानन वाले लोग एक महान अतीत और सस्कृति के सम्मिलित उत्तराधिकारियो की तरह रहते हैं। अब यह हमारा काम है कि अपने भविष्य के साझे निर्माताओ के रूप मे उनम और अधिक एकता लाए। ऐसी टिकाऊ एकता ऊपर से नही थोपी जा सकती बल्कि राज्य के सभी भागो म आम आदमी के हितो पर आधारित करनी होगी। राज्य के सभी लोगो की और सभी क्षेत्रो की बराबर की हिस्सदारी का निर्माण करने के लिए हमसे म प्रत्येक का यह सत्यनिष्ठ कर्तव्य हो जाता है कि हमसे जितना भी हो सक, अपना व्यक्तिगत योगदान दें। आपके आशीर्वाद और शुभकामनाओ म मैं आशा करता हू कि इस उद्देश्य के लिए मैं अपना योगदान प्रभावकारी रूप म दे पाऊगा।'

बारह

मेरे सदरे रियासत का कार्यभार सम्हालने के एक हफ्ते बाद सरकार सर्दी के दिनों मे जम्मू चली आई। इस पद को स्वीकार करने के कारण प्रजा परिषद घोर अपमानित महसूस कर रही थी, और उसने मेरे जम्मू पहुचने के दिन काले झडो का प्रदर्शन करने की धमकी दी थी। 24 नवबर को मैं इडियन एयरलाइस के हवाई जहाज से जम्मू आया। पहले के अवसरो के विपरीत, जब मैं अमरिका से और अपनी शादी के बाद लौटा था और जम्मू के लोगो ने मेरा उल्लास और स्नेह से साथ स्वागत किया था, इस बार कटाक्ष और विरोध से भरे नारे थे, और हवाई अड्डे से लेकर महल के दरवाजो तक पूरा शहर काले झडो से भरा समुद्र लग रहा था। बख्शी गुलाम मोहम्मद मेरे साथ खुली जीप मे थे, और यद्यपि नेशनल कान्फ्रेंस ने एक तरह के स्वागत की तैयारी कर रखी थी, लेकिन डोगरो का समूह के गहरे विरोध मे वह विलीन हो गया।

मुझे यह मानना पडेगा कि वह एक आघातकारी अनुभव था लेकिन मैं ऊपर से अपने को बहादुर बनाए रखा और मुस्कराना और लोगो का अभिवादन करना जारी। रखा मैंने यह लक्ष्य किया कि इच्छा के विपरीत बहुत लोगो ने उत्तर मे हाथ हिलाया। प्रदर्शन वास्तव मे मेरे विरुद्ध उतना नही था, जितना पिताजी के प्रति वफादारी और उनके साथ समवय के प्रतीक के रूप मे था। यह प्रजा परिषद द्वारा 14 नवबर को शेख अब्दुल्ला के विरुद्ध छेडे गए व्यापक आदोलन को अभिव्यक्त करता था। उनका भारत के साथ राज्य के सपूर्ण अधिमिलन का नारा था, जिस के एक साथ मिलकर ऊचे स्वर मे लगाते थे, (एक विधान, एक निशान, एक प्रधान)। इस आदोलन ने अगले कुछ महीनो मे काफी जोर पकड लिया, क्योंकि उसने डोगरो के उस अपमान की भावना का फायदा उठाया, जो उन्हें न केवल राज्य मे अपनी महत्वपूर्ण स्थिति खो देने पर महसूस हुई बल्कि एक ही झटके मे अपने को अपने जानी दुश्मन शेख अब्दुल्ला की दया का पात्र पाकर हुई। जहा तक शेख का ताल्लुक था, उसने न केवल जम्मू के लोगो की भावनाओं का हरण करने का कोई प्रयत्न नही किया, बल्कि अपना विरोधी और आक्रामक रवया

जारी रखा। इसका एक उदाहरण यह सवाल था कि जम्मू सेक्रेटेरिएट पर कौन-सा झंडा फहराया जाएगा। चूंकि पुराना रियासती झंडा उतार दिया गया था, इसलिए मैंने सरकार को सुझाव दिया कि नए झंडे के साथ साथ राष्ट्रीय ध्वज भी फहराया जाना चाहिए। इसे शेख ने बड़े तैश के साथ नामंजूर कर दिया, और इसलिए जब मेरी बारी आई तो मैंने भी इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया कि मैं व्यक्तिगत रूप से नए झंडे को फहराऊं।

जम्मू में सुस्थिर हो जाने के बाद मैं स्थिति का जायजा लेने लगा, और शीघ्र ही मुझे यह महसूस हुआ कि प्रजा परिषद का आंदोलन पूरे जम्मू क्षेत्र में गहराई और व्यापक रूप से फैल चुका है। यद्यपि मैं परिषद के प्रति जवाहरलाल जी की विमुखता को जानता था, तो भी मैंने सही वस्तु स्थिति के बारे में उन्हें सूचित करना अपना कर्तव्य समझा। मैंने एक ब्यौरेवार टिप्पणी तैयार की जिसमें पूरी स्थिति का विश्लेषण किया गया था और ऐसे राजनैतिक और आर्थिक कदम उठाने के बारे में कुछ ठोस सिफारिशें की गई थीं, जिनसे जम्मू और लद्दाख के लोगों की वास्तविक आकांक्षाएं पूरी करने में मदद मिलेगी। जैसा कि उसमें मैंने लिखा, 'सभी अनावश्यक बातों को अलग कर देखा जाए तो परिस्थिति यह है कि जहां जम्मू और लद्दाख की यह तीव्र इच्छा है कि भारत से संपूर्ण अधिमिलन हो जाए, वहां शेख साहब और उनके साथी सीमित किस्म के अधिमिलन पर बहुत अधिक जोर दे रहे थे और संपूर्ण अधिमिलन मानने को तैयार न थे।" इसे मैंने एक सहपत्र के साथ 22 दिसम्बर को जवाहरलाल जी को भेज दिया जो पहले। दिसम्बर, 1952 को भेजे गए एक पत्र के क्रम में था। मैंने खरी बात कह दी थी। 'परिस्थिति गंभीर है," मैंने लिखा, "किसी नैतिक अर्थ में नहीं, किंतु इस अर्थ में कि जम्मू प्रांत का अत्यधिक बहुमत बड़ी जोरदारी से आंदोलन का समर्थन कर रहा है। मैं महसूस करता हूं कि इसके लिए मूल रूप से जिम्मेदार गहराई में पैठे और वास्तविक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक अनेक कारण हैं, और मैं नहीं समझता कि इस पूरे मामले को केवल एक प्रतिक्रियावादी गुट की सृष्टि मानना स्थिति की सही व्याख्या होगा।'

इसकी अनुवर्ती कार्यवाही के रूप में मैं दिल्ली गया, जहां मैंने जवाहरलाल जी, गृह मंत्री डा० काटजू और डा० राजेन्द्र प्रसाद से बातचीत की और उन्हें परिस्थिति के अपने जायजे से अवगत कराया। मैंने अनुरोध किया कि भारत सरकार को हस्तक्षेप करना चाहिए, जिससे जम्मू आंदोलन के प्रति राज्य सरकार की प्रतिक्रिया न केवल पुलिस द्वारा दमन के रूप में हो वरन राजनैतिक, आर्थिक और प्रशासनिक कदम उठाए जाएं। जवाहरलाल जी ने शेख अब्दुल्ला को उसी महीने लिखा जिसके उत्तर में शेख ने एक लम्बा खत भेजा। उसमें उन्होंने अपनी सरकार के पहलू की हिमायत की और जम्मू के पूरे मसले को फिरकापरस्त

इदारा का कारनामा और "जम्मू के जमीदारा और दूसरे ऊचे तबके के लोगो की तीव्र प्रतिक्रिया' करार देकर उसे रद्द कर दिया। जवाहरलाल जी ने भी मेरे पत्र का उत्तर यह कहकर दिया "जम्मू की घटनाओ के बारे में तुम्हारी गहरी फिक्र को मैं बखूबी समझ सकता हू। मुझे भी स्वभावतया बहुत फिक्र है और मैंने बारीकी से उन्हे समझा है। मैं तुमसे बिल्कुल हमराय हू कि हालाकि पुलिस कारवाई भी जरूरी है लेकिन वह सूरतेहाल से निपटने का एक नकारात्मक तरीका है जम्मू की हालत इतनी ज्यादा नाजुक है कि हमें उस पर पूरा विचार करना चाहिए और जसी जरूरी हो वसी कारवाई करनी चाहिए। लेकिन इसी के साथ इन मामला पर, जैसे कि और सभी अहम मामलो पर गौर करते वक्त ठडे दिमाग से और अपने को जुदा रखकर सोचना चाहिए।'

उसी महीने मुझे जवाहरलाल जी का एक सदेश मिला कि राष्ट्रपति ने मुझे गवनरा और राजप्रमुखो के सम्मेलन मे आमत्रित किया है, जो फरवरी के प्रारम्भ म होने जा रहा है और वे चाहते हैं कि मैं उसम शामिल होऊ। राष्ट्रीय स्तर पर किसी बठक में उपस्थित होने का यह मेरे लिए पहला अवसर था, क्याकि पहले जो भी मेरा अनुभव था उस सबका सम्बध केवल जम्मू और कश्मीर से ही था। इसलिए जब मैंने आमत्रण स्वीकार किया ता मन म थोडा कौतूहल था। मैं 3 फरवरी को दिल्ली पहुचा और राष्ट्रपति भवन क विशाल द्वारिका सुइट मे जो बाहर से आने वाले विशिष्ट व्यक्तिया के लिए आरक्षित रखा गया था मेरे ठहरन की व्यवस्था की गई। डा० राजेन्द्र प्रसाद से औपचारिक भेंट करन क बाद मैं वापस आ गया और काफी जल्दी साने चला गया। उस रात मुझे बडा विचित्र और सजीव स्वप्न दिखलाई पडा। मैं एक बडे कमरे म खडा था और महात्मा गाधी अन्दर आए। मुझे उनकी हुबहू याद है उनका सारा नाक-नक्शा और कपडे मेरी स्मृति मे उससे भी ज्यादा स्पष्ट है जब मैंने उन्हे श्रीनगर म कई वष पहले सचमुच देखा था। वे चलकर मेरे पास आए अपना बाया हाथ मेरे कध पर रखा और मेरी दाहिनी हथेली को अपने दूसरे हाथ म लिया। एक क्षण उनकी तरफ देखा और तब अग्रेजी मे बोले, 'यू विल बी ए वेरी वाइज मन' (तुम बहुत समझदार आदमी होगे)।

मुझे दो दिन का वह सम्मेलन स्वय बहुत रोचक लगा, जो तब क बाद एक एसे पन्द्रह सम्मेलना की लबी शृखला में पहला था, जिनम मुझे भविष्य म सम्मिलित होना था। उसका उद्घाटन राष्ट्रपति न एक औपचारिक वक्तव्य पढकर किया, जिसके बाद जवाहरलाल जी न एक घट तक भाषण दिया जिसम राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय दृश्य पटल का व्यापक सर्वेक्षण करत हुए उन्होंने आर्थिक विकास क विभिन्न पहलुआ पर विवेचन किया। पश्चिम उप राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन दूसरे दिन बोले, शिक्षा और राष्ट्रीय विकास क सम्बध म अपन

विचारों की प्रतिभाशाली रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए। उन दिनों देशी रियासतों का गणतंत्र में पूरी तरह समावेश नहीं हो पाया था और उन्हें अनेक भौगोलिक क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया था और प्रत्येक क्षेत्र का अध्यक्ष एक वरिष्ठ नरेश था जो राजप्रमुख कहलाता था। इस प्रकार सम्मेलन में गवर्नरों के अतिरिक्त, जिनमें चंद्रलाल त्रिवेदी, के० एम० मुंशी, आर० आर० दिवाकर, जैरामदास दौलतराम, फजल अली और पट्टाभि सीतारमैया शामिल थे, मैसूर, भावनगर, पटियाला, त्रावणकोर, ग्वालियर और जयपुर के भूतपूर्व नरेश भी उपस्थित थे।

मैं कुल बाईस वर्ष का था और भाग लेने वालों में अधिकांश की केवल एक तिहाई उम्र का था। सामान्य भाषणों के पश्चात प्रत्येक भाग लेने वाले ने अपने अपने राज्य की स्थिति के बारे में संक्षिप्त रिपोर्ट दी जिनमें उन्होंने जिन प्रमुख समस्याओं का उन्हें सामना करना पड़ रहा था, उन पर बल दिया। अपनी टिप्पणी में मैंने पिछले वर्ष की महत्वपूर्ण घटनाओं का पुनरीक्षण किया और जम्मू में जारी आंदोलन का भी जिक्र किया। राष्ट्रपति द्वारा दिए गए भोज के अतिरिक्त, जिसमें मंत्रिमंडल के सदस्य उपस्थित थे, जवाहरलाल जी ने भी भाग लेने वालों के लिए एक डिनर दिया। उन्होंने मुझे एक छोटे निजी लंच पर भी बुलाया, जिसमें इंदिरा गांधी मेज़बान थीं और पद्मजा नायडू पार्टी की आत्मा।

इस बीच जम्मू का आन्दोलन शांत होने के कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे और वस्तुतः उसका समर्थन दिल्ली में समान विचार वाली पार्टियों द्वारा किया जाने लगा था, विशेष रूप से नए गठित भारतीय जनसंघ द्वारा, जिसके अध्यक्ष डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी और एन० सी० चटर्जी थे, जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर एक सत्याग्रह छेड़ने का निश्चय किया। मैं अनुरोध करता रहा कि राज्य सरकार और आंदोलन के नेताओं के बीच बातचीत होनी चाहिए, लेकिन शेख अब्दुल्ला ऐसी किसी बातचीत के पक्ष में नहीं थे और जवाहरलाल जी भी उसके विरुद्ध थे। जैसा कि उन्होंने अपने एक पत्र (22 मार्च, 1953) में मुझे लिखा, 'मेरे खयाल में जो कुछ इन लोगों ने किया है वह देश के गद्दारी से कम नहीं है और लोगों को इसे समझना चाहिए।' शेख अब्दुल्ला को दिया गया मेरा सुझाव कि 25 मार्च को विधान सभा का सत्र के लिए जाने वाले मेरे औपचारिक भाषण को समझौते का संकेत देने के लिए एक अच्छे मौके के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है, उन्होंने रद्द कर दिया।

हालांकि शेख अब्दुल्ला ने पूरे मामले को 'प्रतिक्रियावादी तत्वों' की साजिश कहकर रद्द करने की कोशिश की और भारत सरकार भी शुरू में उसी मत का समर्थन करती जान पड़ी, लेकिन मैं गहरी परेशानी में था क्योंकि मैंने यह महसूस किया कि राज्य की स्थिरता और हिंसा की संपुष्टि का जो एक ही रास्ता था—एक नया डोगरा कश्मीरी सहयोग—उसके निर्माण का अंतिम मौका हाथ से खो

दिया जा रहा है। मैंने जवाहरलाल जी को लिखे अपने पत्रों में इस विषय की चर्चा जारी रखी, यह जानते हुए भी कि उन्हें जनसंघ और प्रजा परिषद के नेताओं से चिढ़ है। 27 मार्च के एक पत्र में मैंने लिखा, "जिस बात से सचमुच चिंतित हूं, वह यह है कि पिछले कुछ महीनों में जम्मू और कश्मीर के बीच की खाई काफी बढ़ गई है और दरार पटने की बजाय उत्तरोत्तर चौड़ी होती जान पड़ती है। दोनों पक्षों में से कोई भी इसके निहितार्थों को ठीक से समझ नहीं रहा है और मुझे भय है कि आगे आने वाले वर्षों में हम इसकी कड़वी फसल काटनी पड़ेगी।"

लगभग इसी समय बख्शी गुलाम मोहम्मद, जो उप प्रधान मंत्री थे, और गिरधारी लाल डोगरा, वित्त मंत्री और मंत्रिमंडल में जम्मू के अकेले प्रतिनिधि, संपूर्ण परिस्थिति पर चर्चा करने के लिए दिल्ली में जवाहरलाल जी से मिले। बख्शी शेख से बहुत भिन्न थे, ज्यादा व्यावहारिक, उत्कृष्ट संयोजक, और सभी तबकों के लोगों के साथ, जिसमें जम्मू के भी बहुत लोग शामिल थे, उत्तम सार्वजनिक सम्बन्ध-वाले आदमी। यद्यपि वे शेख अब्दुल्ला और नेशनल कांग्रेस के साथ निकट से सम्बद्ध थे तो भी उन्होंने शेख और एम०ए० बेग जैसी आक्रामक डोगरा विरोधी प्रवृत्ति का प्रदर्शन कभी नहीं किया। अधिमिलन के प्रति उनका पूरा रवैया भी साफ तौर पर राज्य और केंद्र के बीच परस्पर सम्बन्ध को मजबूत बनाने की ओर अधिक झुका हुआ था और शेख अब्दुल्ला द्वारा अध्यवसाय पूर्वक पोषित कश्मीरी उग्र राष्ट्रवादिता से कम अनुप्राणित।

जम्मू आन्दोलन के अलावा राज्य और केंद्र के बीच संवैधानिक सम्बन्ध के विषय में दिल्ली समझौता का कार्यान्वित करने का व्यापक प्रश्न था जिसे शेख अब्दुल्ला के दल और भारत सरकार के प्रतिनिधियों के बीच लम्बी तनदार की बातचीत के बाद पहले तैयार कर लिया गया था। जहां राजशाही को समाप्त करने के निर्णय को तुरन्त अमल में ले आया गया था, क्योंकि शेख का वह मकसद पड़ता था, वहां दूसरे मुद्दों के मामले में उन्होंने अपने पर पलीटन शुरू कर दिए थे। मुझे शुरू से ही यह स्पष्ट हो गया था कि वे जो कुछ घोषित करते हैं उस के प्रति उतने ईमानदार नहीं रहते और वह सिर्फ प्रादेशिक सरकार के मुखातिब अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए ही वचन व युक्ति निकाल रहे हैं। यदि वे ईमानदार होते तो समझौते के शेष भाग को कार्यान्वित करने में फिर इतनी देरी क्यों?

दरअसल शेख ने नेशनल कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में, भारत में कैसा सम्बन्ध हो इस विषय पर वाद विवाद शुरू कराकर अपना एक रवैया खड़ा किया हुआ इसका इस्तेमाल किया। एक दिन जिसके नेता एम० ए० बेग थे उसने मन में सुगर थे कि अधिमिलन अधिनियम में जिन तीन विषयों का उल्लेख है उनसे

परे यह सम्बन्ध नही जाना चाहिए, जबकि दूसरा दल, जिसके नेता बख्शी गुलाम मोहम्मद थ और जिसमे जी० एल० डोगरा और डी० पी० धर शामिल थे, कुछ और व्यापक सम्बन्ध के लिए सहमत था, जिसमे अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र जसे न्याय पालिका वित्तीय व्यवस्था आदि भी शामिल हो। नेशनल कान्फ्रेंस के इस अन्दरूनी झगडे ने धीरे धीरे भीषण रूप धारण कर लिया। शेख ने कुछ समय तक तो ऊपरी तौर पर अपने को इस विवाद से ऊपर रखने की कोशिश की पर धीरे धीरे उनका कट्टरवादियो के पक्ष का समथन उत्तरोत्तर बढने लगा। जवाहरलाल जी को यह घटना जम्मू के आन्दोलन स भी ज्यादा चिंतित करने लगी।

मेरी उनके साथ 21 अप्रैल और 23 मई को दो लम्बी मुलाकातें हुईं। दूसरी मुलाकात म व पहली बार खुले और राज्य म जिस तरह स्थिति आगे बढ रही थी, उसके प्रति अपना गहरा खेद प्रकट किया। उन्होने यह स्वीकार किया कि जब उनसे ससद म और बाहर पूछा गया कि दिल्ली समझौते को कार्यान्वित क्यो नही किया गया तो उनके पास इसका कोई उत्तर नही था। उन्होन बताया कि उन्होने शेख को एक लम्बा पत्र लिखा है जिसमे यह सकेत किया है कि मामले म बहुत देरी हो गई है और यह कि चूकि व कुछ ही हफ्ता म विदेश जा रहे थे वे चाहते कि जाने स पहले प्रश्न को अतिम रूप दे दिया जाए। जब मैंने उनसे पूछा कि उन्हे क्या उत्तर मिला तो वे मेरी ओर मुडे और सदेहशील आहत स्वर म बोले, "मुझे कोई जवाब ही नही मिला।" उन्होन कहा कि शेख बिल्कुल भ्रमित हो गए हैं और जाहिरा तौर पर मुझसे मिलन से कतरा रहे है।

मैंने बताया कि अगर राज्य सरकार ने कोई ऐसा कदम उठाया जिससे लगे कि वे भारत सरकार के साथ निष्ठापूर्वक किए गए अपने समझौते से मुकर रहे हैं तो मेरी स्थिति असम्भव हो जाएगी। मेरे लिए अपने को उनके साथ मिलाए रखना बहुत मुश्किल हो जाएगा क्योकि भारत के साथ गद्दारी मे मैं कभी सहयोग नही दे सकता। उन्होने कुछ देर इस पर विचार किया लेकिन शीघ्र कोई उत्तर नही दिया। जब मैं जाने के लिए उठा तो मेरी तरफ मुडे और बोले, "देखो, एक बात जो मैं बिल्कुल मानता हू वह यह है कि अगर हमारे समझौते तोड दिए जाते हैं या ऐसा कुछ होना है तो, तुम्हारी स्थिति बिल्कुल नामुमकिन हो जाती है।" यह स्पष्ट था कि व बहुत परेशान हो गए थे, लेकिन तय नही कर पाए थे कि समस्या से कसे निपटा जाए। उनका पुराना चेला और दोस्त शेख अब्दुल्ला जिस विरोधी तरीके से बर्ताव कर रहा था उसस व विशेष रूप स आहत, यहा तक कि हक्का बक्का हो गए थे और जब मैंने कहा कि जान पडता है हद स ज्यादा ताकत ने शेख की अधमतम और सत्तावादी प्रवृत्तियो को बाहर ला दिया है तो वे मुझसे सह मत प्रतीत हुए।

शेख का रवया उत्तरोत्तर दुराग्रही होता चला गया। उन्होन जम्मू के निकट

एक सीमावर्ती शहर रणबीरसिंगपुरा मे एक भाषण दिया, जिसमे उन्होंने जम्मू आन्दोलन के विरुद्ध उग्र प्रतिक्रिया दर्शाई, आग जाकर भारत पर साम्प्रदायिक होने का आरोप लगाया और एक तरह से धमकी दी कि पहले से यह मान नही लिया जाना चाहिए कि राज्य का अधिमिलन हो चुका है। मैं यूरोप जाने का विचार कर रहा था, और औपचारिक रूप से राष्ट्रपति और जवाहरलाल जी को इसके बारे म लिख भी चुका था, लेकिन जम्मू आन्दोलन के परिणामस्वरूप बढते हुए तनाव को और नेशनल कान्फ्रेंस की गहरी होती हुइ अदरूनी फूट का ध्यान म रखते हुए मैंने जाने का विचार छोड दिया।

श्रीनगर को वापिस प्रस्थान के समय हालत और बिगड गई। डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी को, जिन्होने राज्य मे अपने प्रवेश पर लगाए गए प्रतिबन्ध को तोडा था, बन्दी बनाकर हवालात म रखा गया था। 10 जून को मैंने जवाहरलाल जी को, जो उस समय काफी लम्बी यात्रा पर लन्दन गए हुए थे, एक रिपोर्ट भेजी, जिसम मैंने कहा

'यहा घाटी मे राजनैतिक स्थिति अत्यन्त अस्थिर बनी हुई है। पार्टी के भीतर की फूट काफी तनाव पैदा कर रही है। भारत समर्थक गुट दृढ-सकल्प बना हुआ है और दावा करता है कि वह शक्तिशाली है और वर्किंग कमेटी और सभा दोनो ही मे उसका बहुमत है। वर्किंग कमेटी की बैठकें बार-बार होना जारी है।

"पिछले हफ्ते शेख अब्दुल्ला से हुई एक निजी मुलाकात म मुझे यह जानकर धक्का लगा और मैं स्तब्ध रह गया कि मालूम होता है उन्होंने उस समझौते से, जो उन्होंने निष्ठापूर्वक भारत के साथ किया है, और जो स्पष्ट वायदे किए हैं, उनसे मुकर जाने का निश्चय किया है। इसकी इजाजत नही दी जा सकती, क्या कि इससे हमारी स्थिति एकदम असभव बन जाएगी और हमारे राष्ट्रीय हितों को और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को गभीर आघात लगेगा। इस घटना के परिणामस्वरूप जो गम्भीर और विस्तृत प्रतिक्रियाए होगी उनका उल्लेख करने की आवश्यकता नही है। आपके लौटते ही इस समस्या पर आपका तुरन्त ध्यान जाना चाहिए ताकि उसका अन्तिम और निर्णयात्मक हल निकल सके।"

इसके शीघ्र बाद ही हवालात मे डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मृत्यु की दुखद खबर आई। मुझे उनकी बीमारी की या अस्पताल से जाए जाने की कोई सूचना नहीं दी गई और मृत्यु की जानकारी केवल गैर-सरकारी सूत्रो स उस वक्त पहुंची जब उनका शव श्रीनगर से बाहर हवाई जहाज म ले जाया जा रहा था। जिन परिस्थितियों म राज्य सरकार की हिरासत म उनकी मृत्यु हुई

थी व गम्भीर क्षोभ और सन्देह का कारण थी। जम्मू तो रोष से पागल था क्योंकि वे प्रजा परिषद के हितों की लड़ाई लड़ते हुए शहीद हुए थे और खुले तौर पर यह कहा जा रहा था कि उनकी मृत्यु प्राकृतिक कारणों से नहीं हुई। इस घटना से सारे भारत को आघात पहुंचा था विशेष रूप से बंगाल के लोगों को, जो डा० मुखर्जी को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

अब तक शेख स्पष्ट रूप से युद्ध पथ पर उतर आए थे। दिल्ली जाने के अनेक सुझावों और 3 जुलाई को ऐसा करने के लिए जवाहरलाल जी से भी आमंत्रण प्राप्त होने के बावजूद उन्होंने राजधानी जाकर संपूर्ण परिस्थिति के बारे में बातचीत करने से इनकार कर दिया। मौलाना आजाद कुछ दिनों के लिए श्रीनगर आए थे लेकिन मतभेदों को दूर करने के लिए मौके का फायदा उठाने की बजाय शेख अब्दुल्ला ने जान बूझकर उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। एक तरह से नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यकर्ताओं द्वारा वे अपमानित किए गए। शेख के भाषण ज्यादा से ज्यादा तीखे होते चले गए और उत्तरोत्तर यह स्पष्ट होता चला गया कि वे कश्मीर के लिए एक प्रकार से स्वतन्त्र दरजा दिलाने के विचार पर गम्भीर रूप से कार्य कर रहे थे जिसका अपरिहार्य अर्थ होता—वस्तुतः भारत से अधिमिलन को नकारना। करीब इसी वक्त एडलाई स्टीवेन्सन श्रीनगर आए और शेख से उन्होंने लम्बी बातचीत की। उनके बीच क्या गुफ्तगू हुई यह तो ठीक ठीक ज्ञात नहीं है। लेकिन सामान्य रूप से ऐसा आभास मिला था कि शेख को इस बातचीत से अपने स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के लिए एक तरह का प्रोत्साहन मिला था।

इस बीच नेशनल कान्फ्रेंस के भीतर की फूट अब बाहर उजागर हो गई थी। यह सभी को मालूम था कि शेख कट्टरवादियों के पक्ष का समर्थन कर रहे थे, जिनके नेता एम० ए० बेग थे, जबकि अन्य अधिकांश वरिष्ठ नेता जिनमें दो कैबिनेट मंत्री श्री जी० एल० डोगरा और शामलाल सराफ तथा डी० पी० धर उपमंत्री शामिल थे, बख्शी गुलाम मोहम्मद के पीछे जुट गए थे। बख्शी जी कुछ मौकों पर स्टेट सोल्जर्स बोर्ड की बैठकों के सिलसिले में, जिसका मैं चेयरमैन था मेरे घर आते थे और जब दूसरे लोग चले जाते थे, तब कुछ मिनटों के वास्ते रुक जाते थे। जहां मैं इस बात से सतर्क था कि किसी को ऐसी धारणा न हो कि मैं भी झगड़े में उलझा हूं, वहां मुझे भारत समर्थक गुट से निकट संपर्क बनाए रखना भी जरूरी था। डी० पी० धर अक्सर आया करते थे, और जो नाटक अनावृत होने जा रहा था उसके मूल पात्रों में वे एक थे। मधुर परन्तु न फुसलाए जा सकने वाले, डी० पी० की बुद्धि बड़ा तीक्ष्ण थी और वे एक उत्कृष्ट संयोजक थे। नई दिल्ली को नेशनल कान्फ्रेंस की अन्दरूनी कशमकश से वाकिफ रखकर उन्होंने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जवाहरलाल जी उन्हें चाहते थे और उनकी राजनैतिक समझदारी की कद्र करते थे।

लगभग इसी समय हमें यह महसूस होने लगा कि शेख अब्दुल्ला को नियन्त्रित करने के लिए अगर कोई सख्त कदम नहीं उठाया गया तो हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती चली जाएगी और आखिर में एकदम हाथ से बेहाथ हो जाएगी, जिसके नतीजे पूरे देश के लिए गम्भीर और बेअन्दाज होंगे। कश्मीर का मसला सुरक्षा समिति की कार्यसूची पर अभी भी एक प्रमुख मुद्दा था और अगर शेख, जो भारतीय प्रतिनिधिमंडल के सदस्य की हैसियत से दो बार लेक सक्सेस जा चुके थे, राज्य के प्रधान मन्त्री रहते हुए, बिल्कुल पलट जाएं तो सर्वनाश हो जाएगा। मैं घटनाओं के क्रम पर उत्तरोत्तर भय और आशंका के साथ निगाह रखे रहा और निश्चय किया कि मुझे एक बार फिर दिल्ली जाकर जवाहरलाल जी के साथ परिस्थिति के बारे में विचार विमर्श करना चाहिए। यह मैंने जुलाई के तीसरे हफ्ते में किया।

जब मैं जवाहरलाल जी से मिला तो मैंने उनके रवैये में काफी परिवर्तन पाया। न केवल उन्होंने शेख अब्दुल्ला को बचाने की कोई कोशिश नहीं की। बल्कि जिस तरह परिस्थिति करवट ले रही थी, उससे वे भी उतने ही परेशान नजर आ रहे थे, जितना मैं। लगता है कि मेरे अपने पत्रों के अलावा उन्हें राज्य में इंटेलिजेंस ब्यूरो (जिसके अध्यक्ष उस समय बी० एन० मलिक थे) डी० पी० धर और दूसरों से भी ब्यौरेवार रिपोर्टें और मौलाना आजाद तथा जवाहरलाल जी के नजदीकी राजनैतिक विश्वासपात्र रफी अहमद किदवई से निजी अनुभव प्राप्त हुए थे। मैंने जो कुछ ब्यौरे से उनके सामने प्रस्तुत किया उसे उन्होंने गम्भीर शांति के साथ सुना, कभी गुस्से से भौंह टेढ़ी करते और कभी सहमत होकर सिर हिलाते। मैंने कोई ठोस प्रस्ताव उनके सामने नहीं रखा लेकिन यह स्पष्ट कर दिया कि यदि शेख अब्दुल्ला ने अपना विरोधी रवैया ऐसे ही जारी रखा तो हमारे रास्ते जुदा होना लाजिमी है। जब मैं जाने लगा तो वे उठे और दरवाजे तक छोड़ने आए। जब हाथ मैंने उनसे विदा ली, उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखा और बोले, 'फिक्र मत करो, जो अच्छे से अच्छा कर सकते हो, करो।'

श्रीनगर लौटने पर शीघ्र ही मैंने उस समस्या से, जो हाथ से भी छूट जाना ... और अमरनाथ की तीर्थ यात्रा पर जाना निश्चय किया, जो भगवान शिव से सम्बद्ध प्रसिद्ध तीर्थस्थान है और समुद्र की सतह से 13,000 फीट की ऊंचाई पर एक हिमाच्छादित गुफा में स्थित है। मेरे हृदय में वहां जाने की इच्छा थी और मुझे लगा कि अब वह शुभ घड़ी आ गई है। उससे मुझे (ऐसी आशा थी) आगामी संघर्ष में स्थिति से निपटने के लिए नई शक्ति प्राप्त होगी। और भी, चूंकि इस यात्रा का व्यापक प्रचार होगा इसलिए जो आशंकाएं मेरी दिल्ली की हवाई दौड़ से पैदा हो गई होंगी उनका शमन हो जाएगा। अमरनाथ की प्रमुख तीर्थयात्रा इस पवित्र स्थान पर श्रावण की पूर्णिमा के दिन पड़ती है जो अगस्त में किसी समय पड़ता है। लेकिन

कुछ भक्तजन वहा एक महीने पहले ही चले जाते हैं। जुलाई की पूर्णिमा 26 तारीख को थी, इसलिए श्रीनगर से हम 23 तारीख को चल दिए।

यह यात्रा उन सभी यात्राओं में सबसे अधिक स्मरणीय थी, जो मैंने अब तक की थीं। चूकि मेरा पर अभी इतना अच्छा नही हुआ था कि ऊची चढाई सम्हाल सकू पहलगाम से मैं डाडी पर ले जाया गया लेकिन आशा ने सारे रास्ते पैदल चलने की ठानी। प्रसिद्ध गुफा पहुचने से पहले हमने तीन रातों में पडाव किया, चदनवाडी शेषनाग और पचतरणी पर। मार्ग का दृश्य स्तब्धकारी था, विशेषकर तिहरे शिखरो से मडित विशाल हिमनद की पृष्ठभूमि मे स्थित दुग्ध हरित अनोखी शेषनाग झील। एक बार फिर मैं प्राकृतिक सौंदर्य की उत्थानकारी शक्ति से अभिभूत हो गया, विशेषकर उत्तुग ऊचाइयो पर। जैसा कि मैंने "हिंदुस्तान टाइम्स" के रविवासरीय परिशिष्टो म प्रकाशित लेख माला म लिखा

"व्यक्ति को स्पष्टतया एक ऐसी शक्ति के अस्तित्व का एहसास होता है जो उसकी अपनी क्षुद्र आत्मा स कही अधिक विशाल, शक्तिशाली और पवित्र है। क्षण भर को मैं प्रकृति के मनोहर मुख को उसकी पवित्र अप्रदूषित भव्यता म निहारता हू। समय का प्रचड वेग शिथिल पड जाता है, जीवन की समस्याए और सघर्ष गौण होकर नगण्य बन जाते हैं और मैं गहरे चिंतन मे निमग्न हो जाता हू। मेरे अतरतम म यह आकाक्षा है कि किसी दिन मैं ऐसे ही परिवेश म अपना एक छोटा सा आश्रम बनाऊगा जहा शरीर और मन को पवित्र और इच्छा, भय अहकार और आसक्ति के बधनो से मुक्त करके व्यक्ति प्रकृति की निर्मल पवित्रता पर ध्यान केंद्रित कर सके और इस प्रकार सभवत आध्यात्मिक आलोक उपलब्ध कर सकें।'

ये लेख बाद म एक छोटी पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हुए जिसका शीर्षक था, "ग्लोरी आफ अमरनाथ" (अमरनाथ की महिमा) जो मेरा पहला साहित्यिक प्रयास था।

गुफा स्वय उससे काफी अधिक बडी थी, जितनी कि मैंने कल्पना की थी और एक कोने मे लगभग पाच फीट ऊची जगमगाती हिम आकृति खडी थी, जो भगवान शिव की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक थी। यह तीर्थ इस बात म अनोखा है कि यहा प्रतिवर्ष हिम का यह 'लिंग' अपने-आप बन जाता है और विश्वास किया जाता है कि यह चद्रमा के साथ ही निर्मित और विलीन होता रहता है। यात्रा के दौरान मैं पाल ब्रटन की 'सर्च इन सीक्रेट इंडिया' पढ़ता रहा और पूरे अनुभव का मेरे ऊपर गहरा प्रभाव पडा। मैंने बार-बार यह पाया कि बाह्य सप्राति प्राप्ति के लिए अपनी आतरिक आकाक्षा को गहरी बनाने का एक उत्तम अवसर है, कि

लड़ाई का दबाव जितना घना होगा, अंतरतम के सारथी के आवाज उतनी ही अधिक साधक होगी।

मैं 28 जुलाई को श्रीनगर लौटा। मेरी अनुपस्थिति में नेशनल कांफ्रेंस की वर्किंग कमेटी की बैठकें हुईं जिनमें दोनों पक्षों में झड़प हुई—शेख अब्दुल्ला विवाद में अब खुलकर पक्षपात कर रहे थे, पर उनके मंत्रिमंडल के केवल एक और सदस्य, एम० ए० बेग उनका समर्थन कर रहे थे। मंत्रिमंडल की फूट 7 अगस्त को अपने शिखर पर पहुंच गई, जब शेख ने एक थोथे बहाने का इस्तेमाल करके विरोधी दल के खिलाफ कार्रवाई करने का फैसला किया और पंडित शामलाल सराफ का इस्तीफा मांगा। 8 तारीख की सुबह सराफ ने मुझे शेख को लिखे गए एक लम्बे पत्र की प्रतिलिपि भेजी जिसमें उन्होंने उन पर आरोप लगाया कि उन्होंने राज्य के भारत सरकार के साथ सम्बन्ध के मामले में नेशनल कांफ्रेंस की घोषित नीतियों का खंडन किया है। उन्होंने इस्तीफा देने से यह कहकर इनकार कर दिया, कि, "जिस तरीके से आपने जनता के सामने अत्यधिक भड़काने वाले भाषण देकर देश में एक भयानक स्थिति पैदा कर दी है, और उसके साथ ही मंत्रिमंडल में आपके सत्तावादी रवैये से अब मुझे विश्वास हो गया है कि इस कठिन परिस्थिति को सुधारने के स्थान पर मेरा इस्तीफा आपको अपनी नीतियों को बेलगाम आगे बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित ही करेगा। ऐसा रास्ता देने के लिए आत्मघाती होगा।"

कुछ घण्टों के बाद मुझे उप प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद, वित्तमंत्री, जी० एल० डोगरा और स्वास्थ्य मंत्री पंडित शामलाल सराफ द्वारा शेख अब्दुल्ला को भेजे गए ज्ञापन की हस्ताक्षर की हुई एक प्रतिलिपि प्राप्त हुई। पांच पृष्ठों के इस दस्तावेज में शेख और एम० ए० बेग पर पार्टी की स्वीकृत नीतियों की खुली अवज्ञा करने का सीधा आरोप लगाया गया था। उसमें कहा गया था

"संविधान सभा का संयोजन करने के पश्चात दिल्ली समझौते में राज्य के भारत के साथ सम्बन्ध के कुछ अपरिहार्य विस्तारों की व्याख्या की गई थी जिसके हमारी ओर से आप प्रमुख निर्माता थे। आपकी धारणा की सरकार, नेशनल कांफ्रेंस, भारतीय संसद और राज्य की संविधान सभा ने सर्वसम्मति से पुष्टि की थी। लेकिन आपने इन मामलों पर हुए समझौते का, जो हमारी नीति का आधार है, न केवल कार्यान्वित करने में जानबूझ कर देरी की है बल्कि साभिप्राय और खुले तौर पर सार्वजनिक रूप से उनका खंडन भी किया है। आप इस तरह मनमाने ढंग से राज्य के भारत के साथ सम्बन्ध में दरार डालने की कोशिश कर रहे हैं।'

उन्होंने आगे लिखा

'श्री एम०ए० बेग हठपूर्वक संकुचित फिरकापरस्ती और साम्प्रदायिकता की नीति का अनुसरण करते रहे हैं जिससे राज्य में एकता की जड़ें कमजोर हुई हैं। दुर्भाग्य से आप उनकी नीतियों का मन्त्रिमंडल में और उनकी गतिविधियों का सार्वजनिक रूप से समर्थन करते रहे हैं। इसने राज्य के विभिन्न घटक इकाइयों के लोगों के मन में आशंका और सन्देह की कटु भावनाएं उत्पन्न कर दी हैं। इन सभी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में आपकी मौन सहमति रही है और इस प्रकार विघटन की ताकतों को बल और प्रोत्साहन मिला है। नतीजा यह है कि एकता और धर्मनिरपेक्षता का गुण जो हमारे राज्य के दो मूल पहलू हैं, आज खतरे में पड़ गए हैं।"

अंत में तीनों मन्त्रियों ने कहा

"हम आपसे बराबर अनुरोध करते रहे हैं कि इन अस्वास्थ्यकर प्रवृत्तियों को समाप्त कर दें और लोगों के मनोबल को फिर से ऊंचा उठाने के लिए सब मिलकर कदम उठाएं। अपने बेहतरीन इरादों के बावजूद हम अपनी कोशिशों में नाकामयाब रहे। इसलिए बड़े क्लेश के साथ हम आपको अपने निष्कर्ष की सूचना दे रहे हैं कि मन्त्रिमंडल, जिस तरह वह आज संगठित है, और उद्देश्य और कार्य की एकता की जिस तरह उसमें कमी है उसे वह लोगों को एक स्वच्छ, कुशल और स्वास्थ्यकर प्रशासन देने की क्षमता में उनका विश्वास खो बैठा है।"

जैसे ही मुझे यह सूचना प्राप्त हुई जो बिल्कुल अप्रत्याशित नहीं थी, तो गेंद सीधी मेरी पाली में आ गई। कानून मन्त्रिपरिषद् तब तक कार्यभार सम्भाल रहेगी जब तक सदरे रियासत की मरजी हो, और नियुक्ति करने वाले अधिकारी के रूप में मुझे बर्खास्त करने का भी अधिकार था, चाहे विशेष रूप से उसका उल्लेख न किया गया हो। फिर भी कोई सख्त कदम उठाने के पहले मैंने सोचा, यह उचित ही होगा कि मैं शेख अब्दुल्ला से बात करूं। मैंने तुरन्त उन्हें आमन्त्रित किया कि जितनी जल्दी हो सके, वे मुझसे मिलने चले आएं। वे उसी दिन दोपहर बाद गुलमर्ग जा रहे थे और दोपहर के आसपास मेरे निवास पर आए। जब मैंने परिस्थिति के बारे में उनसे पूछा तो उन्होंने शामलाल के बारे में तीन लम्बी किन्तु गौण घटनाओं का वर्णन किया और व्यक्त किया कि उन्होंने उनसे इस्तीफा देने को कहा है। उन्होंने बताया कि दिल्ली में कश्मीर के ट्रेड कमिश्नर ने उन्हें सुबह टेलीफोन किया था और इत्तिला दी थी कि अखबारों में कश्मीर में 'संवैधानिक संकट' के बारे में बड़े-बड़े शीर्षक दिए गए हैं और इस तरह अन्दर की बातों के बाहर पता लग जाने पर ताज्जुब का इजहार किया।

मैंने कहा कि मुझे हाल की घटनाओं के रवैये से गहरा अफसोस और फिक्र है, खास तौर पर कैबिनेट में मेल की कमी की वजह से। मैंने कहा कि यह उपयोगी होगा अगर वे और उनके कैबिनेट के साथी उस शाम को मेरे घर आ जाएं जिससे पूरे मामले पर गहराई से विचार विमर्श हो सके। उन्होंने भारत के अखबारों के खिलाफ गुस्से में जहर उगलना शुरू किया जिन पर उन्होंने कैबिनेट के मतभेदों की बिल्कुल गलत व्याख्या करने और बढ़ा चढ़ाकर बताने का आरोप लगाया और इस तरह इस सुझाव को टाल गए। उन्होंने यह आश्चर्यजनक दावा किया कि यद्यपि विचारों में कुछ मतभेद है। लेकिन उनके कैबिनेट के भीतर कोई मूल राजनैतिक या प्रशासनिक मतभेद नहीं है। जब मैंने फिर स्थिति को सुधारने के लिए कुछ न कुछ करने की जरूरत पर जोर दिया तो उन्होंने साफ तौर पर कहा कि कोई अंदरूनी हल मुमकिन नहीं है जब तक कि कोई ऐसा बाहरी हल न हो जो भारत और पाकिस्तान दोनों को मंजूर हो।

इससे उनकी असली मनोदशा का पता चल गया। जहां वे भारत में अधिमिलन को साफ तौर पर 'अन्तिम और अटल' मानकर पुष्टि कर रहे थे पिछले कुछ महीनों उन्होंने एक बिल्कुल ही भिन्न स्थिति अख्तियार कर ली थी। जाहिरा तौर पर वे कश्मीर को एक तरह का आजाद दरजा दिलाने के लिए भारत पर किसी अंतर्राष्ट्रीय दबाव का इंतजार कर रहे थे और यही वह वजह मालूम देती थी जिससे वे दिल्ली समझौते को अमल में लाना रोके बैठे थे, क्योंकि उसमें राज्य और केन्द्र के बीच के ताल्लुकात और मजबूत हो जाते। हमारी मुलाकात में वे न केवल अपनी कैबिनेट के अंदरूनी संकट को सुलझाने का कोई इत्मीनान नहीं दिला सके बल्कि उन्होंने 'बाहरी दबाव' का जिक्र करके अस्थिरता का एक और नया आयाम जोड़ दिया।

हमारी मुलाकात करीब पैंतालीस मिनट चली जिसके बाद वे यह कहकर चले गए कि सप्ताहांत के लिए वे गुलमर्ग जा रहे हैं। मुझे यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि यदि और अधिक गिरावट को रोकना है तो तत्काल कुछ न कुछ करना होगा। मैंने अपने राजनीतिक और कानूनी सलाहकारों को बुलवाया जिनमें डी० पी० धर और ब्रिगेडियर (बाद में जनरल) बी० एम० कौल जो हमारे और दिल्ली के बीच एक तरह के संदेशवाहक के रूप में काम कर रहे थे शामिल थे। शेख का व्यक्तित्व घाटी में अब भी लोकप्रिय था, बावजूद इस बात के कि भ्रष्टाचार और प्रशासनिक कुव्यवस्था ने उनकी कृपा का दायरा कम कर दिया था। यदि हमने उन्हें अपना मामला सड़कों पर ले जाने का मौका दिया तो वे आसानी से कश्मीरी की जनता में साम्प्रदायिक और उग्र भावनाएं उभार देंगे जिसके परिणामस्वरूप कश्मीर और हिन्दुस्तान के रिश्तों पर आंच आ सकती थी। राष्ट्रविरोधी तत्त्व और एजेंट घाटी में अब भी क्रियाशील थे और मौका मिलते ही वे राज्य में

प्रशासन की प्रक्रिया ही अ यवहाथ बन गई है,

और चूकि अत म सयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर मौजूदा कबिनेट का काय करना असम्भव हा गया है और परिणामस्वरूप जो झगडे प"ा हुए हैं उनसे राज्य की एक्ता समद्धि और स्थिरता को गम्भीर खतरा है,

म, क्ण सिह सदरे रियासत राज्य की जनता के हित मे, जिसने राज्य के अध्यक्ष की जिम्मेदारी और सत्ता मुझमे सौपी है, इसके द्वारा शख अब्दुल्ला को जम्मू और कश्मीर के प्रधान म त्री के पद से बर्खास्त करता हू और परिणाम स्वरूप वह मत्रि परिषद भी, जिसके वे अध्यक्ष है तत्काल भग की जाती है।

श्रीनगर — सदरे रियासत

अगस्त 8, 1953 — जम्मू और कश्मीर

जब तक ये दस्तावेज तयार हुए, शाम देर हो चूकी थी। मौसम का मिजाज भी बिगडा हुआ था मूसलाधार बारिश हो रही थी, बादल गरज रह थे और बिजली के दातदार भाग बादलो को चीरत चले जा रहे थे। मैंने अपने ए० डी० सी०, मजर बा० एस० बजरा को तनात किया कि वे गुलमग जाए और पत्र शेख अब्दुल्ला को सौप दें। एक पुलिस पार्टी भी उनक साथ गई, लेकिन टगमग के आगे भीषण वर्षा और खराब सडक के कारण उन्हें देर हो गई। दस्तावेजो को रवाना कर हम सब क्ण महल म इम समाचार का इन्तिजार करत रहे कि व दे दिए गए हैं। चूकि इसम विलम्ब हुआ इसलिए तनाव बढ गया। हमारा जुआ खतरे स भरा था, क्योकि यदि शेख को जरा भी इसका सुराग मिल गया कि क्या हो रहा है तो उनकी प्रतिक्रिया उग्र हागी और हमारी अपनी जानें खतरें म पड सकती थी। जो हो, अब पासा तो फेंका ही जा चुका था, और हम केवल इश्वर स प्रार्थना ही कर सकत थे कि सारी कायवाही कुशलता स सप"न हो जाए।

हमारी प्राथनाए सुन ली गइ। शेख घटनाओ से बिल्कुल बखबर थे, और उनके पास जो ताकत थी उसस उन्ह इतना गुरूर था कि वे यह सप"ा म भी नही साच सकत थे कि कोई उन्ह चुनौती देने की हिमाकत कर सकता है। जब ए० डी० सी० और पुलिस दल अ"तत गुलमग पहुचा ता रात देर हा चुकी थी, और शेख और बगम अब्दुल्ला गाढ़ी नीद म थे। काफी खटखटाने के बाद कुछ मुश्किल स ही उन्ह जगाया गया और खत तथा गिरफ्तारी का वारट तामील कर दिए गए। उस पढ़कर उनका पारा आसमान पर चढ गया और व गरजे, 'यह सदर रियासत कौन होता है मुझे बर्खास्त करन वाला ? उस पिद्दी लौंड को मैंने सदरे रियासत बनाया।' लेकिन तब तक उनका घर पूरी तरह पुलिस द्वारा घेरा जा चुका था। उन्ह नमाज पढन और समान बाधने के लिए दो घटे का वक्त दिया गया जिसम उन्होने, जसा कि हम बाद म पता चला, अनेक दस्तावेज, जो उनके पास थे, जला

डाले। इसे टाला जा सकता था, लेकिन हमने पुलिस को सख्त हिदायत दे दी थी कि उनके और बेगम के साथ अदब व साथ पेश आया जाए और किसी तरह की जोर जबरदस्ती न की जाए। 9 वीं की अलस्सुबह उन्हें कार में बैठाकर घाटी से बाहर ऊधमपुर में तारा निवास गेस्ट हाउस पहुचाया गया, जहां उन्हें हिरासत में रखा गया। एम० ए० बेग और दूसरे और लोग भी उस रात श्रीनगर में और घाटी के दूसरे हिस्सो में गिरफ्तार कर लिए गए।

इस बीच यह देखना मेरी जिम्मेदारी थी कि राज्य के प्रशासन में कोई संवैधानिक अंतराल न पड़ पाए। शेख की बर्खास्तगी के साथ मैंने बख्शी गुलाम मोहम्मद को लिखा कि वे आकर मुझसे मिलें और नई सरकार बनाने के बारे में बातचीत करें। पत्र खत्म करते हुए मैंने लिखा "नई कैबिनेट का अपने पद पर बने रहना विधान सभा में उसके अगले सत्र में विश्वास का मत प्राप्त करने पर निर्भर होगा। बख्शी आ गए और हमने परिस्थिति के बारे में चर्चा की। मैंने महसूस किया कि नई सरकार को शपथ दिलाने में समय नष्ट नहीं करना चाहिए। हमने चीफ सेक्रेटरी, एम० के० किदवई को बुलवाया जिन्हें खबर ही न थी कि क्या हो रहा है। जब उन्हें मालूम हुआ कि शेख को बर्खास्त कर गिरफ्तार कर लिया गया है तो वे सिर पकड़कर वहीं सीढ़ी पर धप्प से बैठ गए और तभी होश में आए जब हिस्की के दो करार पेग उन्हें पिलाए गए।

9 अगस्त को सवेरे-सवेरे मैंने बख्शी गुलाम मोहम्मद और जी० एम० डोगरा को पद की शपथ दिलाई, ताकि वे उस तनावपूर्ण परिस्थिति का सामना करने की स्थिति में हों, जो बर्खास्तगी और गिरफ्तारी की खबर घाटी में फैलते ही अनिवार्य रूप से पैदा होगी। तब मैंने राष्ट्रपति को एक रिपोर्ट लिखी जिसमें पूरी घटनाओं के बारे में उन्हें सूचित किया और एक सहपत्र के साथ उसकी एक प्रतिलिपि जवाहरलाल जी को भेजी, जिसमें ये दो पैरा शामिल थे

"हम मजबूर होकर जो कदम उठाना पड़ा है उसकी गंभीरता से हम सब बखूबी वाकिफ हैं, और राज्य के भीतर और बाहर दोनों तरफ कहीं तक इसका असर फैल सकता है, उससे भी। इस सारे मामले में पिछली बार अपनी मुलाकात में आपने जो कहा था उस सलाह और परामर्श को नजर रखते हुए मैंने एक प्रजातांत्रिक और संवैधानिक तरीके से काम करने की कोशिश की है। सब मिलाकर मैं समझता हूं कि हमने परिस्थितियों में जो बेहतर से बेहतर मुमकिन हो सकता था वह किया है।

शेख अब्दुल्ला के साथ उनकी बर्खास्तगी के बाद क्या किया जाए इसके बारे में निर्णय लेना निश्चय ही नई सरकार का काम था। जहां तक मेरा ताल्लुक था,

मैंने तो वर्खास्तगी के तुरंत बाद उन्हें गिरफ्तार करने से इन्हें बहुत जोरदारी से मना किया था लेकिन इन लोगों को बडा अंदेशा था कि ऐसे मौके पर घाटी में उनकी मौजूदगी से प्रतिक्रियाएं बहुत उभड़ जाएंगी और गम्भीर खतरा था कि स्थिति काबू से बिल्कुल बाहर हो जाए, यहां तक कि हिंसा और खून-खराबा हो। परिणामस्वरूप आज सुबह गुलमर्ग में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया है और ऊधमपुर ले जाया जा रहा है, जहां वे राजकीय गेस्ट हाऊस में रखे जाएंगे। मैंने जोर देकर यह कह दिया है कि उन्हें और उनके परिवार को पूरा सम्मान दिया जाए।'

जब तक यह सारी कार्यवाही पूरी हुई, पौ फट चुकी थी। पिछले दो दिनों के बादल और उनकी गड़गड़ाहट गायब हो चुकी थी और आसमान फिर साफ हो गया था। मैंने आठ बजे से ठीक पहले जवाहरलाल जी को टेलीफोन मिलाया लेकिन लाइन साफ नहीं थी। सवेरे की बुलेटिन में आल इंडिया रेडियो ने अपने पन्द्रह मिनट के समय में से तेरह मिनट कश्मीर की घटनाओं की ब्यौरे से रिपोर्ट देने में बिताए। उस रात मैंने एक पलक भी नहीं झपकाया और अपने को एक विचित्र तटस्थ और हल्के दिमाग के मूड में पाया। मैं यह जानता था कि जो कुछ मैंने किया है वह राष्ट्र के भले के लिए है और अगर उससे देश की सेवा होती है, तो सारे खतरे और जोखिम उठाने लायक हैं। आशा ने भी सारी रात अपने कमरे में चिंता में बैठे बैठे गुजार दी। जब धीरे धीरे मैं सीढ़ियों पर चढ़ा और चलकर उसके कमरे में गया। सब काम पूरा हो गया," मैंने कहा और हम दोनों मुस्कराए, वह सोलह की पूरी, सत्रहवें में दाखिल, मैं बाईस का, तेईसवें में दाखिल। बिस्तर पर पड़ते न पड़ते मैं नींद में था।

□

हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली 1100032 5821